नेहरू जी का भारत

तीसरा भाग

अलबेरूनी का भारत

तीसरा भाग

अनुवादक

सन्तराम, बी० ए०

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

प्रथम बार] १९२८ [मूल्य ३॥)

निवेदन

जगदीश्वर का धन्यवाद है, जिस काम को मैंने आज से १३ वर्ष पूर्व आरम्भ किया था आज वह सम्पूर्ण हो गया। इस पुस्तक का पहला भाग सन् १९१६ में लिखा गया था। साहित्य-संसार को इस बृहत् पुस्तक की केवल बानगी दिखलाने के लिए ही उसके अस्सी अध्यायों में से केवल ग्यारह का अनुवाद उसमें दिया गया था। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि विद्वानों ने उसे पसन्द करके मेरे उत्साह को बढ़ाया। उन्हीं से प्रोत्साहन पाकर मैं आज इस बृहद् ग्रन्थ को समाप्त कर सका हूँ। पञ्जाब टेक्स्टबुक कमेटी की सिफ़ारिश पर पञ्जाब-सरकार ने मेरी इस साहित्य-सेवा के लिए ७००) प्रदान कर मुझे अनुगृहीत किया है।

जिस समय मैंने इस पुस्तक को आरम्भ किया था, वह मेरे पारिवारिक जीवन का प्रभात था। पर आज उसकी सन्ध्या है। इस बीच में काल-चक्र बड़ी शीघ्रता से घूम गया। जीवन-यात्रा में जिस देवी से मुझे सदा सहायता मिला करती थी, जून सन् १९२४ में उसका लोकान्तर हो गया। इसके बाद मई सन् १९२८ में मेरा एकलौता पुत्र, वेदव्रत, भी मुझे इस संसारारण्य में अकेला छोड़कर अपनी स्नेहमयी माता के पास चला गया। दोनों दिवंगत आत्माओं को इस पुस्तक में बड़ी रुचि थी। यदि आज वे इस लोक में होतीं तो उन्हें कितनी प्रसन्नता होती! परन्तु विधाता का विधान ऐसा न था।

मेरा यह काम कितना कठिन था, इसका अनुमान केवल वही विद्वान् कर सकते हैं जिन्हें कभी 'अलबेरूनी का भारत' ऐसी जटिल

और कठिन पुस्तक का ठीक-ठीक अनुवाद करने का अवसर पड़ा है। उपन्यास और कहानी लिखते समय लेखक को अपने ही विचारों को प्रकट करना होता है। इसके लिए उसे गढ़े-गढ़ाये शब्द अपने आप मिलते चले जाते हैं। परन्तु अनुवाद में दूसरे के भावों को अपनी भाषा में प्रकट करने के लिए उपयुक्त शब्द ढूँढ़ने पड़ते हैं। इसलिए यह कार्य अपेक्षाकृत कठिन होता है। जो लोग अनुवाद का नाम सुनकर ही छिः छिः करने लगते हैं उन्हें इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। फिर "अलबेरूनी का भारत" जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ का महत्त्व उपन्यासों और क़िस्से-कहानियों की "मौलिक" कहलानेवाली पुस्तकों से कहीं अधिक है। केवल अनुवाद होने के कारण इसे तुच्छ समझना भारी भूल है।

इस भाग के अनुवाद में भी मुझे लाहौर मिशन कालेज के प्रोफ़ेसर श्रीयुत स० न० दास गुप्त, एम० ए० और पञ्जाब-विश्वविद्यालय के डीन श्रीयुत ए० सी० वूलनर से बड़ी सहायता मिली है। इसलिए मैं इन दोनों सज्जनों का बहुत कृतज्ञ हूँ।

पुरानी बसी—होशियारपुर
२६ अगस्त १९२८

सन्तराम

द्रष्टव्य—अनुक्रमणिका में जो पृष्ठाङ्क दिये गये हैं वे तीनों भागों के प्रथम संस्करणों के अनुसार हैं। दूसरे संस्करण की प्रतियों में यत्र-तत्र पृष्ठाङ्कों में अन्तर मिलना सम्भव है।

विषय-सूची

उनचासवाँ परिच्छेद

संवतों का संक्षिप्त वर्णन।

हिन्दुओं के कुछ संवतों की गिनती—यज़दजिर्द के संवत् ४०० को ग्रन्थकर्ता मान-वर्ष के रूप में ग्रहण करता है—विष्णु-धर्म्म के अनुसार ब्रह्मा का कितना जीवन व्यतीत हो चुका है—विष्णु-धर्म्म के अनुसार राम का काल—पुलिस और ब्रह्मगुप्त के अनुसार वर्तमान कल्प के ० के पहले कितना समय व्यतीत हो चुका है—प्रचलित कलियुग का कितना समय व्यतीत हो चुका है—कालयवन संवत्—श्रीहर्ष का संवत्—विक्रमादित्य का संवत्—शक-काल—वलभ का संवत्—गुप्तकाल—ज्योतिषियों का संवत्—मान-वर्ष के साथ भारतीय संवतों के आरम्भों की तुलना—संवत्सरों से तिथि लिखने की लोक-प्रिय रीति पर—वर्ष के भिन्न भिन्न आरम्भ—हिन्दुओं में प्रचलित तिथि लिखने की लोकप्रिय रीति और उसकी आलोचना—काबुल के शाहों के वंश का मूल—कनिक की कथा—तिब्बती वंश का अन्त और ब्राह्मण वंश की उत्पत्ति। पृष्ठ १—१७।

पचासवाँ परिच्छेद

एक कल्प में और एक चतुर्युगी में तारागण कितने चक्कर लगाते हैं।

अलफ़ज़ारी तथा याकूब इब्नतारिक का ऐतिह्य—ब्रह्मगुप्त आर्यभट का प्रमाण देता है—एक कल्प में ग्रहों के भ्रमणों की संख्या—

चतुर्युग और कलियुग में ग्रहों के चक्र—पुलिस के अनुसार एक कल्प और चतुर्युग में ग्रहों के चक्र—अरब लोगों में आर्यभट शब्द का रूपान्तर—अल-अहवाज़ के अबुलहसन के अनुसार ग्रहों के काल-चक्र। पृष्ठ १८—२५।

इक्यावनवाँ परिच्छेद

'अधिमास', 'ऊनरात्र', और 'अहर्गण' का वर्णन—जो कि दिनों की भिन्न-भिन्न संख्याओं को प्रकट करते हैं।

अधिमास पर—विष्णु-धर्म्म से अवतरण—वेद का अवतरण—उसकी आलोचना—वेद-वचन प्रस्तावित समाधान—सार्वत्रिक या आंशिक मासों और दिनों की व्याख्या—सार्वत्रिक अधिमास—अधिमास के बनने के लिये कितने सौर, चान्द्र और नागरिक दिन चाहिएँ—पुलिस के अनुसार अधिमास का परिसंख्यान—ऊनरात्र की व्याख्या—पुलिस के अनुसार ऊनरात्र का लेखा—याकूब इब्न तारिक पर आलोचना। पृष्ठ २६—३४।

बावनवाँ परिच्छेद

अहर्गण की स्थूल रूप से गिनती, अर्थात् वर्षों और मासों के दिन, और दिनों के वर्ष और मास बनाना।

सावनाहर्गण निकालने का साधारण नियम—उसी कार्य के लिए अधिक सविस्तर नियम—शेषोक्त विधि शककाल ९५३ के लिए काम में लाई गई—पुलिस के सिद्धान्तानुसार वही गणना चतुर्युग पर लगाई जाती है—पुलिस-सिद्धान्त से ली हुई परिसंख्यान की एक वैसी ही विधि—आर्यभट की काम में लाई हुई अहर्गण की विधि—याकूब की दी हुई एक दूसरी विधि—शेषोक्त विधि की व्याख्या—हिन्दुओं के अहर्गण की एक और विधि—शेषोक्त विधि

तिरपनवाँ परिच्छेद

की रीति—मान-तिथि पर इस रीति का प्रयोग—इस रीति का संशोधन—मुलतान के दुर्लभ की रीति। पृष्ठ ६१—७४।

चौवनवाँ परिच्छेद

नक्षत्रों के मध्यम स्थानों की गिनती पर।

किसी दिये हुए समय में किसी नक्षत्र के मध्यम स्थान का निश्चय करने की साधारण रीति—इसी प्रयोजन के लिए पुलिस की रीति—इसका स्पष्टीकरण—अल्पतर संख्याएँ प्राप्त करने के लिए ब्रह्मगुप्त इस रीति का प्रयोग कलियुग पर करता है—खण्डखाद्यक, करणतिलक और करणसार की रीतियाँ। पृष्ठ ७५—८०।

पचपनवाँ परिच्छेद

नक्षत्रों के क्रम, उनकी दूरियों और परिमाण पर।

सूर्य्य के चन्द्रमा के नीचे होने पर परम्परागत मत—ज्योतिष की प्रचलित भावनाएँ—वायुपुराण के अवतरण—तारकाओं के स्वरूप पर—विष्णु-धर्म के अवतरण—लोकों के व्यासों पर—स्थिर तारकाओं की परिधि पर—इन्हीं विषयों पर हिन्दू ज्योतिषियों के मत—वराहमिहिर-संहिता अध्याय चार श्लोक १—३ से अवतरण—तारकाओं के अन्तरों पर याकूब इब्न तारिक की सम्मति—उसी विषय पर पुलिस और ब्रह्मगुप्त का मत—याकूब इब्न तारिक के अनुसार, पृथ्वी के मध्य से लोकों के अन्तर और उनके व्यास—ग्रहों के अन्तरों पर टाल्मी—समागम और स्थानभेदांश पर—ग्रहों के अन्तरों के परिसंख्यान की हिन्दू-रीति—बलभद्र का अवतरण—ब्रह्मगुप्त के मतानुसार ग्रहों की त्रिज्याओं या पृथ्वी के मध्य से उनके अन्तरों का परिसंख्यान—पुलिस के सिद्धान्तानुसार, यही परिसंख्यान—ग्रहों के व्यास—किसी निर्दिष्ट समय में सूर्य और

चन्द्र के पिण्डों के परिसंख्यान की रीति—पुलिस, ब्रह्मगुप्त और बलभद्र से अवतरण—छाया के व्यास के परिसंख्यान के लिए ब्रह्मगुप्त की रीति—ब्रह्मगुप्त की हस्तलिखित प्रति में दीमक का चाटा हुआ स्थल—ब्रह्मगुप्त की रीति की आलोचना—छाया के परिसंख्यान के लिए ब्रह्मगुप्त की एक दूसरी रीति—ग्रन्थकार के पास जो ब्रह्मगुप्त का हस्तलेख था उसकी भ्रष्ट दशा की वह आलोचना करता है—अन्य स्रोतों के अनुसार सूर्य और चन्द्र के व्यासों का परिसंख्यान—करणतिलक के अनुसार सूर्य और छाया का व्यास। पृष्ठ ८१—१०६।

छप्पनवाँ परिच्छेद

चन्द्रमा के स्थानों पर।

सत्ताईस नक्षत्रों पर—अरबों के नक्षत्र—क्या हिन्दुओं के सत्ताईस नक्षत्र हैं या अट्ठाईस—ब्रह्मगुप्त से एक वैदिक ऐतिह्य—नक्षत्र के किसी निर्दिष्ट अंश का स्थान गिनने की रीति—खण्डखाद्यक से ली हुई नक्षत्रों की तालिका—विषुवों का अयन-चलन—वराहमिहिर, अध्याय ४, श्लोक ७ से अवतरण—ग्रन्थकार वराहमिहिर के वचन की आलोचना करता है—क्रान्तिमण्डल पर प्रत्येक नक्षत्र तुल्य स्थान घेरता है—ब्रह्मगुप्त से अवतरण—वराहमिहिर-संहिता, तीसरा अध्याय १—३, से अवतरण—विषुवों के अयन-चलन का कर्त्ता। पृष्ठ १०७—११७।

सत्तावनवाँ परिच्छेद

नक्षत्रों के सौर-रश्मियों के नीचे से प्रकट होने पर, और उन प्रक्रियाओं और अनुष्ठानों पर जो कि हिन्दू लोग इन अवसरों पर करते हैं।

दृश्यमान होने के लिए तारे का सूर्य से कितनी दूर पर होना आवश्यक है—विजयनन्दन से अवतरण—अगस्त्य के सौर उदय पर—ब्रह्मगुप्त से अवतरण—विशेष तारों के सौर उदयों पर की जाने-वाली प्रक्रियाओं पर—वराहमिहिर-संहिता अ० १२ भूमिका, और श्लोक १—१८ से अगस्त्य और उसके लिए यज्ञ पर अवतरण—रोहिणी पर वराहमिहिर संहिता अध्याय २४ श्लोक १—३७—स्वाती और श्रवण पर संहिता अध्याय २५, श्लोक १—संहिता, अध्याय २६, श्लोक ८। पृष्ठ ११८—१३१।

अट्ठावनवाँ परिच्छेद

सागर में जुआर-भाटा कैसे आता है।

मत्स्यपुराण से अवतरण—राजा और्व की कथा—चन्द्रमा में मनुष्य—चन्द्रमा के कोढ़ की कथा—लिङ्ग की उत्पत्ति—वराह-मिहिर के अनुसार लिङ्ग की रचना। बृहत्संहिता अ० ५८ श्लोक ५३—सोमनाथ की मूर्त्ति की पूजा—जुआर-भाटा के कारण के विषय में लोगों का विश्वास—सोमनाथ की पवित्रता का मूल—विष्णुपुराण से अवतरण—बारोई का स्वर्ण-दुर्ग। मालद्वीप और लकाद्वीप के समान्तर। पृष्ठ १३२—१३९।

उनसठवाँ परिच्छेद

सूर्य और चन्द्र के ग्रहणों पर।

वराहमिहिर की संहिता, अध्याय ५ से अवतरण—वराहमिहिर की प्रशंसा—ब्रह्मगुप्त में सरलता के अभाव पर आक्षेप—ब्रह्म-सिद्धान्त से अवतरण—ब्रह्मगुप्त के लिए सम्भाव्य बहाने—वराह-मिहिर-संहिता अध्याय ५, श्लोक १०, १६, ६३ के अवतरण—ग्रहणों के रङ्गों पर। पृष्ठ १४०—१४९।

साठवाँ परिच्छेद

इकसठवाँ परिच्छेद

बासठवाँ परिच्छेद

तिरसठवाँ परिच्छेद

अड़सठवाँ परिच्छेद

उनहत्तरवाँ परिच्छेद

सत्तरवाँ परिच्छेद

इकहत्तरवाँ परिच्छेद

बहत्तरवाँ परिच्छेद

तिहत्तरवाँ परिच्छेद

निर्जीव तथा सजीव व्यक्तियों के शरीरों के अधिकारों के विषय में (अर्थात् अन्त्येष्टि-संस्कार और आत्महत्या के विषय में) ।

शव को गाड़ने की प्राक्कालीन रीतियाँ—यूनानी तुल्यता—अग्नि और रवि की रश्मि ईश्वर के पास जानेवाले निकटतम मार्गों के रूप में—मानी से अवतरण—अन्त्येष्टि-क्रिया की हिन्दू-विधि—आत्महत्या के प्रकार—प्रयाग का वृक्ष—यूनानी समताएँ । पृष्ठ २१३—२१९ ।

चौहत्तरवाँ परिच्छेद

उपवास, और इसके नाना प्रकारों पर ।

लङ्घन करने की विविध रीतियाँ—इकहरे मासों में लङ्घन करने का फल । पृष्ठ २२०—२२३ ।

पचहत्तरवाँ परिच्छेद

उपवास के लिए दिन निश्चय करना ।

मास के प्रत्येक पक्ष के आठवें और दसवें दिन उपवास-दिवस हैं—वर्ष भर के, अकेले-अकेले उपवास-दिवसों पर । पृष्ठ २२४—२२७ ।

छिहत्तरवाँ परिच्छेद

त्योहारों और आमोद-प्रमोद के दिनों पर ।

चैत्र की दूसरी तिथि —११ वीं चैत्र—पूर्णिमा का दिन—२२ वीं चैत्र—३ री वैशाख—महा विषुव—१म ज्येष्ठ—पूर्णिमा—आषाढ़—१५ वीं श्रावण—८ वीं आश्वयुज—१५ वीं आश्वयुज—१६ वीं आश्वयुज—२३ वीं आश्वयुज—भाद्रपदा, अमावस्या—३ री भाद्रपदा—६ वीं भाद्रपदा—८ वीं भाद्रपदा—११ वीं भाद्रपदा—१६ वीं भाद्रपदा—२६ वीं, २७ वीं भाद्रपदा—१ ली कार्त्तिक—

सतहत्तरवाँ परिच्छेद

अठहत्तरवाँ परिच्छेद

उन्नासीवाँ परिच्छेद

योगों पर।

व्यतीपात और वैधृत की व्याख्या—मध्यकाल पर—व्यतीपात और वैधृत के परिसंख्यान की रीति पुलिस की एक दूसरी रीति—करण तिलक के रचयिता की एक दूसरी रीति—इस विषय पर ग्रन्थकार की पुस्तक—योगों के अशुभ होने के विषय में—अशुभ-कालों पर भट्टिल (?) का अवतरण—करण तिलक के अनुसार सत्ताईस योग। पृष्ठ २६१–२६९।

अस्सीवाँ परिच्छेद

हिन्दुओं के फलित-ज्योतिष के प्रास्ताविक नियमों पर, और मुहूर्त्त-ज्योतिष-सम्बन्धी गणनाओं के विषय में उनकी रीतियों का संक्षिप्त वर्णन।

भारतीय फलित ज्योतिष मुसलमानों को अज्ञात है—ग्रहों पर—पूर्ववर्ती तालिका पर व्याख्यात्मक टिप्पणी—गर्भ के मास—ग्रहों की मित्रता और शत्रुता—राशियाँ—फलित-ज्योतिष की कुछ परिभाषाओं की व्याख्या—भवन—एक राशि के नीमबहरों में विभाग पर—२ द्रेष्काणों में—३ नुहबहरों में—४ बारहवें भागों में—५.३० अंशों में दृष्टियों के भिन्न-भिन्न प्रकारों पर—एक दूसरे के सम्बन्ध में विशेष ग्रहों की मित्रता और शत्रुता—प्रत्येक ग्रह की चार शक्तियाँ—लघुजातकम्, अ० २, श्लो० ८—लघुजातकम, अ० २, श्लो० ११—लघुजातकम्, अ० २, श्लो० ५ · लघुजातकम्, अ० २, श्लो० ६—लघुजातकम्, अ० २, श्लो० ७—जीवन के वर्ष जो अकेले-अकेले ग्रह देते हैं—इन वर्षों के तीन प्रकार—पहला प्रकार—लघुजातकम्,

---

अलबेरूनी का भारत

तीसरा भाग

उनचासवाँ परिच्छेद

संवतों का संक्षिप्त वर्णन।

संवत् उन विशेष मुहूर्त्तों को स्थिर करने का काम देते हैं जिनका उल्लेख किसी ऐतिहासिक अथवा नाक्षत्रिक सम्बन्ध में हुआ है। हिन्दू बड़ी-बड़ी लम्बी-चौड़ी संख्याओं का लेखा करने में कष्ट नहीं मानते, उलटा उन्हें इसमें आनन्द आता है। फिर भी, व्यवहार में, उन्हें इनकी जगह छोटी संख्याएँ रखनी पड़ती हैं।

पृष्ठ २०३
हिन्दुओं के कुछ संवतों की गिनती।

उनके संवतों में से हम इनका उल्लेख करते हैं—

१. ब्रह्मा के अस्तित्व का आरम्भ।
२. ब्रह्मा के वर्तमान अहोरात्र के दिन का आरम्भ, अर्थात् कल्प का आरम्भ।
३. जिस सातवें मन्वन्तर में हम इस समय हैं उसका आरम्भ।
४. जिस अट्ठाईसवें चतुर्युग में हम इस समय हैं उसका आरम्भ।

५. वर्तमान चतुर्युग के चौथे युग का, जो कलिकाल अर्थात् कलि का समय कहलाता है, आरम्भ। सारा युग उसी के नाम पर कहलाता है, यद्यपि ठीक-ठीक कहें तो उसका समय उस युग के केवल अन्तिम भाग में ही आता है। इस पर भी, कलिकाल से हिन्दुओं का तात्पर्य कलियुग के आरम्भ से है।

६. पाण्डव-काल, अर्थात् भारत के जीवन तथा युद्धों का काल।

ये सब संवत् प्राचीनता में एक दूसरे से बढ़ने का यत्न करते हैं। एक संवत् दूसरे की अपेक्षा अपना आरम्भ और भी दूर ठहराता है, और उनसे मिलनेवाले वर्षों की संख्या सैकड़ों, सहस्रों और अङ्कों के उच्चतर क्रमों से भी परे तक पहुँचती है। इसलिए न केवल ज्योतिषी ही, प्रत्युत दूसरे लोग भी इनका उपयोग करना कष्टदायक और अव्यवहार्य समझते हैं।

इन संवतों की कल्पना का कुछ ज्ञान कराने के लिए हम प्रथम नाप या तुलना के विषय के रूप में उस हिन्दू वर्ष का उपयोग करेंगे जिसका एक बड़ा भाग यज़्दजिर्द के संवत् ४०० से मिलता है। इस अङ्क में केवल सैकड़े ही हैं, इकाइयाँ और दहाइयाँ बिलकुल नहीं, इसलिए अपनी इस विशेषता के कारण यह उन सब बाक़ी वर्षों से पहचाना जाता है जो सम्भवतः चुने जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, यह स्मरणीय काल है; क्योंकि धर्म्म के दृढ़तम स्तम्भ के टूटने की घटना—आदर्श राजा, संसार-केसरी, अपने समय के चमत्कार, महमूद का देहावसान (भगवान् उस पर अपनी दया करें!) इसके थोड़ा ही समय, एक वर्ष से भी कम, पहले हुई थी। हिन्दुओं का वर्ष इस वर्ष के नौरोज़, अथवा वर्ष के पहले दिन, के केवल बारह दिन पहले आरम्भ होता है, और इस राजा की मृत्यु इसके ठीक पूरे दस फ़ारसी मास पहले हुई थी।

यज़्दजिर्द के संवत् ४०० को ग्रंथकर्त्ता मान-वर्ष के रूप में ग्रहण करता है।

अब अपने इस नाप को पहले ही ज्ञात मानकर हम संयोग के इस स्थान के वर्षों की गिनती करेंगे। यह स्थान अनुरूप हिन्दू-वर्ष का आरम्भ है, क्योंकि विचारार्थ उपस्थित होनेवाले सभी वर्षों का अन्त इसके साथ मिलता है, और यज़्दजिर्द के संवत् ४०० का नौरोज़ इसके थोड़ा ही (अर्थात् बारह दिन) पीछे आता है।

पृष्ठ २०४

विष्णु-धर्म्म नामक पुस्तक कहती है—"वज्र ने मार्कण्डेय से पूछा कि ब्रह्मा की आयु कितनी व्यतीत हो चुकी है; इस पर ऋषि ने उत्तर दिया—जो बीत चुका है वह तेरे अश्वमेध के करने तक ८ वर्ष, ५ मास, ४ दिन, ६ मन्वन्तर, ७ सन्धि, २७ चतुर्युग, और अट्ठाईसवें चतुर्युग के ३ युग और १० दिव्य वर्ष हैं। जो मनुष्य इस कथन के ब्योरे को जानता और उसे यथोचित रीति से समझता है वह ऋषि है; और ऋषि वह है जो केवल परब्रह्म की ही सेवा करता और उसके स्थान के, जो परमपद कहलाता है, पड़ोस में पहुँचने का यत्न करता है।"

विष्णु-धर्म्म के अनुसार ब्रह्मा का कितना जीवन व्यतीत हो चुका है।

इस कथन को पहले से ही अवगत मानकर, और अपने पाठकों का ध्यान काल के विविध भावों की उस व्याख्या की ओर फेरकर,—जो हम पहले परिच्छेदों में दे आये हैं—हम निम्नलिखित विश्लेषण उपस्थित करते हैं;—

हमारे माप के पहले ब्रह्मा की आयु के हमारे २६२१५७३२९४८१३२ वर्ष बीत चुके हैं। ब्रह्मा के अहोरात्र, अर्थात् दिन के कल्प के १,९७२, ९४८,१३२, और सातवें मन्वन्तर के १२०,५३२,१३२, बीत चुके हैं।

शेषोक्त तिथि राजा बलि के क़ैद किये जाने की भी तिथि है, क्योंकि यह घटना सातवें मन्वन्तर के पहले चतुर्युग में हुई थी।

उन सब कालगणना-सम्बन्धी तिथियों में जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं और अभी करेंगे, हम केवल पूर्ण वर्षों को ही गिनते हैं, क्योंकि हिन्दुओं का स्वभाव वर्ष के अपूर्णाङ्कों को छोड़ देने का है।

फिर, विष्णु-धर्म्म और कहता है—"वज्र के एक प्रश्न के उत्तर में मार्कण्डेय कहते हैं—'मैं अब तक ६ कल्प और सातवें कल्प के ६ मन्वन्तर, सातवें मन्वन्तर के २३ त्रेतायुग जी चुका हूँ। चौबीसवें त्रेतायुग में राम ने रावण को, और राम के भाई लक्ष्मण ने रावण के भाई कुम्भकर्ण को मारा था। दोनों ने सभी राक्षसों का पराजय किया। उस समय वाल्मीकि ऋषि ने राम और रामायण की कथा रची और उसे अपनी पुस्तकों में अमर कर दिया। मैंने ही यह कथा पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर को काम्यक वन में सुनाई थी'।"

विष्णु-धर्म्म के अनुसार राम का काल।

विष्णु-धर्म्म का रचयिता यहाँ त्रेतायुग से गिनना आरम्भ करता है। इसका कारण यह है कि एक तो जिन घटनाओं का वह उल्लेख करता है वे किसी विशेष त्रेतायुग में हुई थीं, और दूसरे एक ऐसी इकाई के साथ गिनने की अपेक्षा जिसकी व्याख्या के लिए उसके एक एक चतुर्थांश की ओर संकेत करना पड़ता है, किसी सरल इकाई के साथ गिनना अधिक सुखदायक होता है। इसके अतिरिक्त, त्रेतायुग का पिछला भाग इसके आरम्भ की अपेक्षा उल्लिखित घटनाओं के लिए अधिक अनुरूप है, क्योंकि यह पाप-कर्मों के युग के बहुत समीप है। इसमें सन्देह नहीं कि राम और रामायण की तिथि हिन्दुओं को मालूम है पर मैं इसे नहीं जाँच सका।

तेईस चतुर्युग ९९३६०००० वर्ष हैं, और एक चतुर्युग के आरम्भ से लेकर त्रेतायुग के अन्त तक जितना समय होता है उसको मिलाकर

१०२३८४००० वर्ष होते हैं। यदि हम वर्षों की इस संख्या को सातवें मन्वन्तर के वर्षों की उस संख्या में से, जो हमारे मान-वर्ष के पहले व्यतीत हो चुकी है अर्थात् १२०,५३२,१३२ में से, निकाल दें तो हमारे पास १८,१४८,१३२ वर्ष, अर्थात् राम की आनुमानिक तिथि पर हमारे मान-वर्ष से इतने वर्ष पहले, बच रहते हैं। और जब तक पुष्टि में कोई विश्वास्य ऐतिह्य न हो, यही पर्याप्त होगा। अत्रोल्लिखित वर्ष २८ वें चतुर्युग के ३,८९२,१३२ वें वर्ष के अनुरूप है।

इन सब लेखों का आधार ब्रह्मगुप्त द्वारा ग्रहण किये हुए मान हैं। वह और पुलिस इस बात में सहमत हैं कि वर्तमान कल्प के पहले ब्रह्मा की आयु के जितने कल्प व्यतीत हो चुके हैं उनकी संख्या ६०६८ है (जो ब्रह्मा के ८ वर्ष, ५ मास, ४ दिन के बराबर हैं) परन्तु इस संख्या को चतुर्युगों में बदलने में उनका एक दूसरे से मत-भेद है। पुलिस के अनुसार, यह ६,११६,५४४ के बराबर है; ब्रह्मगुप्त के अनुसार इसके केवल ६,०६८,००० ही चतुर्युग बनते हैं। इसलिए यदि हम पुलिस की पद्धति ग्रहण करके १ मन्वन्तर को सन्धि के बिना ७२ चतुर्युगों के बराबर, १ कल्प को १००८ चतुर्युगों के बराबर, और प्रत्येक युग को चतुर्युग के चतुर्थांश के बराबर गिनें, तो हमारे मान-वर्ष के पूर्व ब्रह्मा के जीवन का जो भाग व्यतीत हो चुका है उसकी संख्या २६,४२५,४५६,२०४,१३२ (!) वर्ष है और कल्प के १,९८६,१२४,१३२ वर्ष, मन्वन्तर के ११९,८८४,१३२ पृष्ठ २०५ वर्ष, और चतुर्युग के ३,२४४,१३२ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

पुलिस और ब्रह्मगुप्त के अनुसार वर्तमान कल्प के ० के पहले कितना समय व्यतीत हो चुका है।

कलियुग के आरम्भ से लेकर जो समय व्यतीत हो चुका है उसके विषय में पूर्ण वर्षों तक पहुँचनेवाला कोई भी भेद नहीं पाया जाता।

ब्रह्मगुप्त और पुलिस दोनों के अनुसार, हमारे मान-वर्ष के पूर्व कलियुग के ४१३२ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, और भारत के युद्धों तथा हमारे मान-वर्ष के बीच ३४७९ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। मान-वर्ष के पहले ४१३२ वाँ वर्ष कलिकाल का गणनारम्भ है, और मान-वर्ष के पहले ३५७९ वाँ वर्ष पाण्डवकाल का गणनारम्भ है।

प्रचलित कलियुग का कितना समय व्यतीत हो चुका है।

हिन्दुओं का कालयवन नाम का एक संवत् है। इसके विषय में मैं पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं कर सका। वे इसका गणनारम्भ अन्तिम द्वापरयुग के अन्त में रखते हैं। अत्रोल्लिखित यवन (ज म न) ने उनके देश तथा धर्म्म दोनों को घोर रूप से कष्ट दिया था।

कालयवन संवत्

अत्रोल्लिखित संवतों के अनुसार तिथि लिखने के लिए हर सूरत में बड़ी-बड़ी संख्याएँ चाहिएँ, क्योंकि उनका गणनारम्भ बहुत ही दूर के प्राचीनकाल में होता है। इस कारण लोगों ने उनका व्यवहार छोड़ दिया है, और उनके स्थान में इनके संवत् ग्रहण कर लिये हैं :—

(१) श्रीहर्ष।

(२) विक्रमादित्य।

(३) शक।

(४) वलभ, और

(५) गुप्त।

श्रीहर्ष के विषय में हिन्दू मानते हैं कि वह पृथ्वी के पेट में छिपे हुए ख़ज़ाने ढूँढ़ने के लिए, सातवीं पृथ्वी तक नीचे की ओर, भूमि की परीक्षा किया करता था; वास्तव में, उसे ऐसे ख़ज़ाने मिले भी थे; और, इसके परिणाम से, उसे (कर आदि से) प्रजा को दबाने की आवश्यकता न रही थी।

श्रीहर्ष का संवत्।

उसके संवत् का व्यवहार मथुरा और कन्नौज के देश में किया जाता है। उस प्रदेश के कुछ अधिवासियों से मुझे मालूम हुआ है कि श्रीहर्ष और विक्रमादित्य के बीच ४०० वर्ष का अन्तर है। परन्तु काश्मीरी पञ्चाङ्ग में मैंने पढ़ा है कि श्रीहर्ष विक्रमादित्य से ६६४ वर्ष पीछे हुआ था। इस असंगति के होते हुए मैं पूर्ण अनिश्चय में हूँ, और मेरे अनिश्चय को अब तक किसी विश्वास्य जानकारी ने स्पष्ट नहीं किया।

जो लोग विक्रमादित्य के संवत् का उपयोग करते हैं वे भारत के दक्षिणी और पश्चिमी भागों में बसते हैं। इसका इस प्रकार उपयोग किया जाता है—३४२ को ३ से गुणा किया जाता है, जिससे १०२६ गुणनफल निकलता है। इस संख्या में आप वे वर्ष जोड़ते हैं जो वर्तमान षष्ठ्यब्द या साठवें संवत्सर के व्यतीत हो चुके हैं, और दोनों का ज़ोड़ विक्रमादित्य संवत् का अनुरूप वर्ष होता है। महादेव-कृत स्रूधव नामक पुस्तक में मैं उसका नाम चन्द्रवीज पाता हूँ।

विक्रमादित्य का संवत्।

गणना की इस रीति के विषय में हम पहले ही कह देना चाहते हैं कि यह भद्दी और अस्वाभाविक है, क्योंकि यदि वे १०२६ को गणना का आधार मानकर आरम्भ करते, जैसा कि वे—बिना किसी अभिव्यक्त आवश्यकता के—३४२ से आरम्भ करते हैं, तो इससे भी वही प्रयोजन सिद्ध हो जाता। और दूसरे, यदि यह मान लिया जाय कि जब तक तिथि में एक ही षष्ठ्यब्द हो यह रीति ठीक है, तो अनेक षष्ठ्यब्द होने पर हम फिर कैसे लेखा करें?

शक के संवत् या शक-काल का गणनारम्भ विक्रमादित्य के संवत् से १३५ वर्ष पीछे होता है। अत्रोल्लिखित शक ने, इस देश के बीच में आर्यावर्त को अपना निवास बनाने के बाद, सिन्धु नदी और सागर के बीच उनके देश

शक-काल

पर अत्याचार किये। उसने हिन्दुओं के लिए आज्ञा कर दी कि वे अपने आप को शकों के सिवा न कुछ और समझें और न कुछ और प्रकट करें। कुछ लोगों का मत है कि वह अलमनसूरा नगर का एक शूद्र था; कुछ लोगों की धारणा है कि वह हिन्दू बिलकुल न था, और वह पश्चिम से भारत में आया था। हिन्दुओं ने उसके हाथ से बहुत दुःख पाया, परन्तु अन्त को पूर्व से उनके पास सहायता आ पहुँची। विक्रमादित्य ने उसके विरुद्ध चढ़ाई की, और उसे भगाकर, मुलतान और लोनी के दुर्ग के बीच, करूर के प्रदेश में मार डाला। अब यह तिथि विख्यात हो गई, क्योंकि अत्याचारी की मृत्यु का समाचार सुनकर प्रजा को बड़ा आनन्द हुआ, और लोग, विशेषतः ज्योतिषी, इस तिथि का एक संवत् के आरम्भ के रूप में प्रयोग करने लगे। वे विजेता के नाम के साथ श्री लगाकर उसका सम्मान करते हैं, और उसे श्री विक्रमादित्य कहते हैं। जो संवत् विक्रमादित्य का संवत् कहलाता है उसके और शक के मारने के बीच एक लम्बा अन्तर है, इसलिए हम समझते हैं कि वह विक्रमादित्य, जिससे संवत् का यह नाम पड़ा है, वही व्यक्ति नहीं जिसने शक को मारा था, वरन् केवल उसका समनामधारी है।

वलभ का संवत्। पृष्ठ २०६

वलभ का संवत् वलभी नगरी के शासक वलभ के नाम पर पड़ा है। वलभी अनहिलवाड़ा से दक्षिण की ओर लगभग ३० योजन की दूरी पर थी। इस संवत् का आरम्भ शक-संवत् के आरम्भ से २४१ वर्ष पश्चात् है। लोग इसका प्रयोग इस प्रकार करते हैं। वे पहले शककाल का वर्ष लिखकर उसमें से ६ का घन और ५ (२१६ + २५ = २४१) का वर्ग घटा देते हैं। अवशेष वलभ-संवत् का वर्ष रह जाता है। वलभ का इतिहास इसके उपयुक्त स्थान में दिया गया है (देखिए परिच्छेद १७)

गुप्तकाल के विषय में लोग कहते हैं कि गुप्त दुष्ट और बलवान् लोग थे। जब उनका अस्तित्व नष्ट हो गया तब यह तिथि एक संवत् के आरम्भ के रूप में प्रयुक्त हो गई। जान पड़ता है कि वलभ उनमें से अन्तिम था, क्योंकि, वलभ-संवत् के सदृश, गुप्तों के संवत् का आरम्भ शककाल के २४१ वर्ष पश्चात् होता है।

गुप्तकाल।

ज्योतिषियों का संवत् शककाल के ५८७ वर्ष पश्चात् आरम्भ होता है। ब्रह्मगुप्त-कृत खण्डखाद्यक, जो मुसलमानों में अल-अर्कन्द नाम से प्रसिद्ध है, इसी संवत् पर अवलम्बित है।

ज्योतिषियों का संवत्।

मान-वर्ष के साथ भारतीय संवतों के आरम्भों की तुलना।

अब, यज्दजिर्द का वत्सर ४००, जिसे हमने माप के रूप में चुना है, भारतीय संवतों के निम्नलिखित वर्षों के अनुरूप है :—

(१) श्रीहर्ष के संवत् के वर्ष १४८८ के,
(२) विक्रमादित्य के संवत् के वर्ष १०८८ के,
(३) शककाल के वर्ष ९५३ के,
(४) वलभ संवत् के, जो गुप्तकाल से अभिन्न है, वर्ष ७१२ के,
(५) खण्डखाद्यक के संवत् के वर्ष ३६६ के,
(६) वराहमिहिर की पञ्चसिद्धान्तिका के संवत् के वर्ष ५२६ के,
(७) करणसार के संवत् के वर्ष १३२ के; और
(८) करणतिलक के संवत् के वर्ष ६५ के।

यहाँ-लिखी पुस्तकों के संवत् ऐसे हैं जिनका उनके रचयिता, ज्योतिष-सम्बन्धी तथा अन्य गणनाओं में प्रधान सीमाओं के रूप में, प्रयोग करना बहुत योग्य समझते थे अर्थात् जहाँ से बड़े सुभीते के

साथ आगे और पीछे की ओर गणना हो सकती है। कदाचित् इन संवतों का आरम्भ उसी काल के अन्दर होता है जब कि प्रस्तुत ग्रन्थकार स्वयं जीवित थे, परन्तु यह भी सम्भव है कि उनका आरम्भ ऐसे काल में होता हो जो उनके जीवन-काल के पूर्व था।

संवत्सरों से तिथि लिखने की लोकप्रिय रीति पर।

भारत में साधारण लोग शताब्दी के, जिसे वे संवत्सर कहते हैं, वर्षों से तिथि लिखते हैं। यदि एक संवत्सर समाप्त हो जाय तो वे उसे छोड़ देते हैं, और केवल नये संवत्सर से तिथि लिखना आरम्भ कर देते हैं। यह संवत् लोककाल अर्थात् समस्त जाति का संवत् कहलाता है। परन्तु इस संवत् के विषय में लोग ऐसे सम्पूर्ण रूप से विभिन्न वृत्तान्त सुनाते हैं कि मेरे पास सत्य को जानने का कोई उपाय नहीं। इसी प्रकार वर्ष के आरम्भ के विषय में भी उनका आपस में मत-भेद है। इस शेषोक्त विषय पर जो कुछ मैंने स्वयं सुना है, लिखूँगा। इस बीच में, मुझे आशा है कि, एक दिन, हम इस प्रकट गड़बड़ में कोई नियम मालूम कर सकेंगे।

वर्ष के भिन्न भिन्न आरम्भ।

जो लोग शक-संवत् का प्रयोग करते हैं, अर्थात् ज्योतिषी, वे चैत्र मास से वर्ष आरम्भ करते हैं, परन्तु कनीर के अधिवासी, जो कश्मीर का उपान्तवर्ती प्रदेश है, भाद्रपद से आरम्भ करते हैं। वही लोग हमारे मान-वर्ष (४०० यज़्दजिर्द) को अपने एक संवत् का चौरासीवाँ वर्ष गिनते हैं।

जो लोग बर्दरी और मारीगल के बीच के देश में बसते हैं वे सब कार्त्तिक से वर्ष आरम्भ करते हैं, और मान-वर्ष को अपने एक संवत् का ११०वाँ वर्ष गिनते हैं। काश्मीरी पञ्चाङ्ग का रचयिता कहता है कि शेषोक्त वर्ष एक नये शतक के छठवें वर्ष के अनुरूप है, और वास्तव में काश्मीर के लोगों का ऐसा ही व्यवहार है।

मारीगल के पिछली ओर, ताकेशर और लोहावर के नितान्त उपान्तों तक, नीरहर का देश है। उसमें बसनेवाले लोग मार्गशीर्ष मास से वर्ष आरम्भ करते हैं, और हमारे मान-वर्ष को अपने संवत् का १०८ वाँ वर्ष गिनते हैं। लंबग अर्थात् लमग़ान के लोग उनके उदाहरण का अनुकरण करते हैं। मुझे मुलतान के लोगों ने बताया है कि यह रीति सिंध और कनौज के लोगों में विशेष रूप से है, और वे मार्गशीर्ष की अमावस्या से वर्ष आरम्भ किया करते हैं, परन्तु मुलतानवालों ने थोड़े ही वर्ष से इस रीति को छोड़कर काश्मीर के लोगों की पद्धति को ग्रहण कर लिया है, और उनके उदाहरण का अनुकरण करते हुए वे चैत्र की अमावस्या से वर्ष आरम्भ करते हैं।

इस परिच्छेद में दी हुई जानकारी के अधूरेपन के लिए मैं पहले ही क्षमा-याञ्चा कर चुका हूँ। कारण यह है कि जिन संवतों पर यह परिच्छेद लिखा गया है उनका हम केवल इसलिए ठीक ठीक वैज्ञानिक वर्णन नहीं दे सकते कि उनमें हम को काल के ऐसे ऐसे परिमाणों का लेखा करना पड़ता है जो एक शतक से बहुत अधिक बड़े हैं (और क्योंकि सौ वर्ष से अधिक पीछे की घटनाओं का सारा ऐतिह्य गड़बड़ होता है)। सो मैंने स्वयम् उस गोल-मोल और जटिल रीति को देखा है जिससे वे हिजरी संवत ४१६ या ९४७ शककाल में सोमनाथ के विध्वंस का वर्ष गिनते हैं। पहले वे २४२ अङ्क लिखते हैं, फिर उसके नीचे ६०६, फिर उसके नीचे ९९। इन संख्याओं का जोड़ ९४७, अथवा शककाल का वर्ष होता है।

हिन्दुओं में प्रचलित तिथि लिखने की लोकप्रिय रीति और उसकी आलोचना।

अब मैं समझता हूँ कि उनकी शताब्द-पद्धति के आरम्भ के पूर्व २४२ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, और उन्होंने शेषोक्त को गुप्तकाल सहित ग्रहण कर लिया है; इसके अतिरिक्त ६०६ का अङ्क पूर्ण संवत्सरों या

शताब्दों को दिखलाता है, जिनमें से प्रत्येक को उन्हें अवश्य १०१ वर्ष गिनना होगा। अन्ततः, ९९ वर्ष उस समय को दिखलाते हैं जो वर्तमान शताब्द का व्यतीत हो चुका है।

पृष्ठ २०७

वास्तव में गणना का यही स्वरूप है, इसकी पुष्टि मुलतान के दुर्लभ की बनाई हुई एक पुस्तक के एक पन्ने से होती है। यह पन्ना दैवयोग से मेरे हाथ लग गया है। उसमें ग्रन्थकर्त्ता कहता है :—"पहले ८४८ लिखो और इसमें लौकिक काल, अर्थात् लोगों का संवत्, जोड़ो, और दोनों का जोड़-फल शककाल है।"

यदि हम अपने मान-वर्ष के अनुरूप शककाल का पहला वर्ष अर्थात् ९५३ लिखें और इसमें से ८४८ निकाल दें, तो अवशेष, १०५, लौकिक काल का वर्ष रह जाता है, पर सोमनाथ का विध्वंस-शताब्द या लौकिक काल के अठानवें वर्ष में पड़ता है।

इसके अतिरिक्त, दुर्लभ कहता है कि वर्ष मार्गशीर्ष मास से आरम्भ होता है, परन्तु मुलतान के ज्योतिषी इसे चैत्र से आरम्भ करते हैं।

हिन्दुओं के राजा काबुल में रहते थे। वे तुर्क थे और उनकी उत्पत्ति तिब्बत की बताई जाती थी। उनमें से पहला, बर्हतकीन, उस देश में आकर काबुल में एक ऐसी गुफा में घुस गया जिसमें हाथों और घुटनों के बल रेंगने के बिना कोई व्यक्ति प्रवेश न कर सकता था। उस गुफ़ा में जल था, और इसके अतिरिक्त उसने कुछ दिन के लिए वहाँ अन्न रख लिया था। हमारे समय में भी लोग इसे अब तक जानते हैं; यह वर कहलाती है। जो लोग बर्हतकीन के नाम को एक शुभ शकुन समझते हैं वे गुहा में प्रवेश करके बड़ी कठिनता से कुछ जल बाहर लाते हैं।

काबुल के शाहों के वंश का मूल।

किसानों की कुछ टोलियाँ गुफा के द्वार के सामने काम कर रही थीं। इस प्रकार की ठग-विद्या उसी अवस्था में की जा सकती और

प्रसिद्ध हो सकती है यदि उसके रचयिता ने किसी दूसरे के साथ—वास्तव में, अपने संगियों के साथ—कोई गुप्त व्यवस्था कर रक्खी हो। अब इन्होंने लोगों को वहाँ बारी बारी से दिन-रात निरन्तर कार्य करते रहने के लिए प्रेरित किया था, जिससे वह स्थान कभी सूना नहीं रहता था।

गुफा में प्रवेश करने के कुछ दिन पश्चात्, वह लोगों के सम्मुख रेंग कर उसमें से बाहर निकलने लगा। वे लोग उसे एक नव-जात बालक के समान देखते थे। वह तुर्की वस्त्र पहने हुए था, सामने से खुला एक छोटा अँगरखा, एक ऊँची टोपी, बूट और शस्त्र। अब लोगों ने एक ऐसे प्राणी के रूप में उसका सम्मान किया जो अलौकिक रीति से उत्पन्न हुआ हो और जिसके भाग्य में राजा बनना बदा हो। वास्तव में वह उन देशों को अपने प्रभुत्व के नीचे ले आया और काबुल के शाहिया की उपाधि धारण करके उसने उन पर शासन किया। उसके वंशजों में कई पीढ़ियों तक शासन रहा। इन पीढ़ियों की संख्या साठ के लगभग बताई जाती है।

दुर्भाग्य से हिन्दू लोग बातों के ऐतिहासिक क्रम पर बहुत कम ध्यान देते हैं। अपने राजाओं की कालक्रमानुगत परम्परा का वर्णन करने में वे बड़े असावधान हैं। जब उन्हें जानकारी के लिए जोर दिया जाय और न जानने के कारण वे कुछ बता न सकें तब वे सदा कहानियाँ सुनाने लग जाते हैं। इसको छोड़ कर, हम पाठकों को वे ऐतिह्य सुनायँगे जो हमने उनमें से कुछ लोगों से सुने हैं। मुझे बताया गया है कि इस राज-वंश की वंशावली, रेशम पर लिखी हुई, नगरकोट के दुर्ग में विद्यमान है। मेरी बड़ी कामना थी कि इसका परिचय प्राप्त करूँ, परन्तु अनेक कारणों से यह बात असम्भव थी।

राजाओं की इस परम्परा में एक कनिक था। यह वही है जिसके विषय में कहा जाता है कि उसने पुरुषावर का विहार बनवाया था।

कनिक की कथा।

यह उसके नाम पर कनिक चैत्य कहलाता है। लोग बताते हैं कि कनौज के राजा ने, अन्य उपहारों के अतिरिक्त, उसे एक समुज्ज्वल और अति विलक्षण कपड़े का टुकड़ा दिया था। अब कनिक अपने लिए उसके कपड़े बनवाना चाहता था, परन्तु उसके सौचिक में उनके बनाने का साहस न था, क्योंकि वह कहता था, "(गुलकारी में) मनुष्य के पैर की एक आकृति है, और चाहे मैं कितना ही यत्न क्यों न करूँ वह पैर सदा कन्धों के बीच में आयगा।" उसका अर्थ वही है जो हम पहले ही विरोचन के पुत्र, बलि, की कथा में कह चुके हैं (अर्थात्, वश्यता का चिह्न)। अब कनिक को विश्वास हो गया कि इस कर्म से कनौज के राजा की इच्छा उसे अपमानित और निन्दित ठहराने की थी, इसलिए उसने शीघ्रता से सेना लेकर उस पर चढ़ाई कर दी।

जब राई ने यह सुना तब वह बहुत घबराया, क्योंकि उसमें कनिक का सामना करने की शक्ति न थी। इसलिए उसने अपने मन्त्री से परामर्श लिया। मन्त्री ने कहा, "आपने एक ऐसे मनुष्य को जगा कर, जो पहले शान्त था, बड़ा अनुचित कर्म किया है। अब मेरी नाक और होंठ काट कर मेरा अङ्गच्छेदन कर दीजिए ताकि मैं कोई कपट उपाय ढूँढ़ सकूँ; क्योंकि खुले तौर पर सामना करने की कोई सम्भावना नहीं।" राई ने उसके साथ वैसा ही किया जैसा कि उसने प्रस्ताव किया था, और तब वह मन्त्री राज्य के सीमान्त प्रदेश को चला गया।

वहाँ शत्रु-सेना ने उसे पकड़ लिया, और वह पहचाना जा कर कनिक के सामने लाया गया। कनिक ने उससे उसकी इस दुरवस्था का कारण पूछा। मन्त्री ने कहा—"मैंने उसे आपका विरोध करने से हटाने का बहुतेरा यत्न किया, और उसे आपके आज्ञाधीन होने का

सच्चे हृदय से परामर्श दिया। परन्तु उसे मुझ पर संदेह हो गया, और उसने मेरे अङ्गच्छेदन की आज्ञा दे दी। तब से वह, अपनी इच्छा से, एक ऐसे स्थान को चला गया है जहाँ मनुष्य राज-मार्ग पर चल कर बहुत लंबी यात्रा के बाद ही पहुँच सकता है, परन्तु यदि वह अपने साथ इतने दिन के लिए पानी ले जा सके तो रास्ते में पड़ने वाली मरुस्थली को पार करने का कष्ट सहन करके सुगमता से वहाँ पहुँच सकता है।" इस पर कनिक ने उत्तर दिया—"यह शेषोक्त बात सुगमता से हो जायगी।" उसने साथ पानी ले चलने की आज्ञा दे दी, और रास्ता दिखलाने के लिए मन्त्री को ले लिया। मन्त्री राजा के आगे आगे चल पड़ा और उसे एक असीम मरुस्थली में ले गया। जब उतने दिन बीत गये और मार्ग समाप्त न हुआ, तब राजा ने मन्त्री से पूछा कि अब क्या करना चाहिए। मन्त्री ने कहा—"मैंने अपने स्वामी को बचाने और उसके शत्रु को नष्ट करने का जो यत्न किया है इसके लिए मुझे कोई दोष नहीं लग सकता। इस मरुस्थली से बाहर निकलने का निकटतम मार्ग वही है जिस पर आप आये हैं। अब आप मेरा जो चाहे सो कीजिए, क्योंकि कोई इस मरुस्थली से जीता बाहर न जायगा।" तब कनिक घोड़े पर सवार होकर भूमि में नीचे को दबे हुए एक स्थान के गिर्द घूमा। इसके मध्य में उसने पृथ्वी में अपनी बरछी गाड़ दी। बस, उसमें से इतना जल निकला जो सेना के पीने तथा लौटते हुए साथ ले जाने के लिए पर्याप्त था। इस पर मन्त्री ने कहा—"मैंने अपनी कपट युक्ति प्रबल देवदूतों के विरुद्ध नहीं, बरन् निर्बल मनुष्यों के विरुद्ध, गढ़ी थी। क्योंकि अवस्था ऐसी हो गई है इसलिए मेरे उपकर्ता राजा को, मेरा माध्यस्थ्य स्वीकार करके, क्षमा-दान दीजिए।" कनिक ने उत्तर दिया— "मैं इस स्थान से लौटता हूँ। तेरा मनोरथ पूरा किया जाता है।

पृष्ठ २०८

तेरे स्वामी के लिए जो कुछ उचित था वह उसे पहल ही मिल चुका है।" कनिक मरुस्थली से निकलकर वापस लौट गया, और मन्त्री अपने स्वामी, कनौज के राई: के पास चला गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि जिस दिन कनिक ने पृथ्वी में अपनी बरछी गाड़ दी थी उसी दिन राई के शरीर से दोनों हाथ और पैर अलग होकर गिर पड़े थे।

इस जाति का अन्तिम राजा लगतुर्मान् था। उसका वज़ीर कल्लर नाम का एक ब्राह्मण था। कल्लर बड़ा भाग्यवान् था। अकस्मात् उसे गुप्त ख़ज़ाने मिल गये थे, जिनसे उसकी प्रतिपत्ति और शक्ति बहुत बढ़ गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि इस तिब्बती वंश के हाथ में इतने दीर्घ काल तक राजकीय शक्ति रहने के पश्चात्, इसके अन्तिम राजा ने इसे शनैः शनैः अपने हाथ से छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त, लगतुर्मान् का आचार ख़राब और चरित उससे भी बुरा था। इस कारण लोगों ने वज़ीर से उसकी बड़ी शिकायत की। अब वज़ीर ने उसे बाँधकर कारागार में डाल दिया ताकि वह ठीक हो जाय, परन्तु तब उसे आप शासन करने में मिठास मालूम हुई, उसके धन ने उसकी कल्पनाओं को पूरा करने में उसे समर्थ बना दिया, और इस प्रकार उसने राज-सिंहासन पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् ब्राह्मण राजा सामन्द (सामन्त), कमलू, भीम (भीम), जैपाल (जयपाल) आनन्दपाल, और तरोजनपाल (त्रिलोचनपाल) ने राज्य किया है। शेषोक्त राजा सन् ४१२ हिजरी (सन् १०२१ ई०) में, और उसका पुत्र भीमपाल इसके पाँच वर्ष पश्चात् (सन् १०२६ ई०) में मारा गया था।

तिब्बती वंश का अन्त और ब्राह्मण वंश की उत्पत्ति।

यह हिन्दू शाहिया वंश अब सर्वथा नष्ट हो चुका है, सारे कुल में से कुछ भी अवशिष्टांश मौजूद नहीं। हमें कहना पड़ता है कि, अपने

सारे ऐश्वर्य में, जो बात सत्य और भद्र है उसके करने की व्यग्र कामना को उन्होंने कभी ढीला नहीं होने दिया, और वे श्रेष्ठ वृत्ति और श्रेष्ठ भाव के मनुष्य थे। मैं आनन्दपाल के एक पत्र में आगे दिये वचन की प्रशंसा करता हूँ। यह पत्र उसने राजा महमूद को उस समय लिखा था जब उनका आपस का सम्बन्ध बहुत ज़ियादा बिगड़ चुका था—"मैंने सुना है कि तुर्कों ने आप के विरुद्ध विद्रोह किया है, और वे खुरासान में फैल रहे हैं। यदि आप चाहें तो मैं ५००० अश्वारोहियों, १०००० पदातियों, और १०० हस्तियों के साथ आप के पास आने को तैयार हूँ, या, यदि आप चाहें, तो मैं अपने पुत्र को इससे दुगनी संख्या के साथ आप के पास भेज दूँगा। मैं यह काम इस आशा से नहीं करता कि इससे जो संस्कार आप पर पड़ेगा उससे मुझे कुछ लाभ होगा। मैं आप के द्वारा पराजित हो चुका हूँ, और मैं नहीं चाहता कि कोई दूसरा मनुष्य आप को पराजित कर दे।"

जब से इसी राजा का पुत्र कैद कर लिया गया था तब से उसके मन में मुसलमानों के विरुद्ध अत्यन्त घृणा हो गई थी, परन्तु उसका पुत्र तरोजन पाल (त्रिलोचन पाल) अपने पिता के सर्वथा विपरीत था।

पचासवाँ परिच्छेद

एक कल्प में और एक चतुर्युगी में तारागण कितने चक्कर लगाते हैं।

कल्प की शर्तों में से एक यह है कि इसमें ग्रह, अपने उच्चतम स्थानों और प्रान्तों सहित, मेषराशि के ०° में, अर्थात् महाविषुव के बिन्दु में अवश्य मिलते हैं। इसलिये प्रत्येक ग्रह एक कल्प में पूर्ण परिभ्रमणों या चक्करों की एक विशेष संख्या पूरी करता है।

ग्रहों के ये चक्कर जिनका ज्ञान अलफ़ज़ारी तथा याक़ूब इब्नतारिक़ की ज्योतिष की पुस्तक के द्वारा हुआ है, एक हिन्दू से लिए गये थे जो ख़लीफ़ा अलमन्सूर के पास सिंध भेजे हुए राजनैतिक प्रतिनिधि-समूह के एक सदस्य के रूप में हिजरी संवत् १५४ (=७७१ ई०) में आया था। यदि हम इन गौण कथनों की तुलना हिन्दुओं के प्राथमिक कथनों के साथ करें, तो हमें असंगतियाँ दीख पड़ती हैं, जिनका कारण मुझे मालूम नहीं। क्या इनका कारण अलफ़ज़ारी और याक़ूब का अनुवाद है? या उस हिन्दू के लिखाने से ये उत्पन्न हो गई हैं? या इनका कारण यह है कि पीछे से ब्रह्मगुप्त, या किसी और ने, इन परिसंख्याओं को ठीक किया है? क्योंकि यह बात निश्चित है कि जिस भी विद्वान् को ज्योतिष-संबंधी परिसंख्यानों में

अलफ़ज़ारी तथा याक़ूब इब्नतारिक़ का ऐतिह्य।

भूलों का पता लग जाता है और जिसे इस विषय में रस आता है वह उनको ठीक करने का यत्न करता है, जैसा कि सरख़स के मुहम्मद इब्नइसहाक़ ने किया है। क्योंकि उसने शनि के परिसंख्यान में वास्तविक समय से कुछ पीछे हट जाना मालूम किया था (अर्थात्, शनि जितना वास्तव में घूमता है, इस परिसंख्यान के अनुसार उससे कम घूमता था)। अब उसने इस विषय का यत्नपूर्वक अध्ययन किया, यहाँ तक कि अन्त को उसे विश्वास हो गया कि उसका दोष समीकरण से (अर्थात्, नक्षत्रों के स्थानों की भूल सुधार, उनके मध्य स्थानों के परिसंख्यान से) उत्पन्न नहीं हुआ। तब उसने शनि के काल-चक्रों में एक काल-चक्र और जोड़ दिया, और अपनी गणना की तुलना उस ग्रह की वास्तविक गति के साथ की, यहाँ तक कि अन्त को उसे मालूम हो गया कि काल-चक्रों की गणना ज्योतिष-सम्बन्धी अवलोकन के साथ पूर्ण रूप से मिलती है। इस संशोधन के अनुसार वह अपनी ज्योतिष की पुस्तक में तारों के काल-चक्रों का वर्णन करता है।

सरख़स का मुहम्मद इब्न इसहाक़

ब्रह्मगुप्त, आर्यभट के प्रमाण से, चन्द्रमा के उच्चतम स्थानों तथा पातों के काल-चक्रों के विषय में एक भिन्न कल्पना का वर्णन करता है।

ब्रह्मगुप्त आर्यभट का प्रमाण देता है।

हम ब्रह्मगुप्त के प्रमाण पर ही इसे यहाँ उद्धृत करते हैं, क्योंकि हम आप इसे आर्यभट की मूल पुस्तक में नहीं पढ़ सके। हमने इसे केवल ब्रह्मगुप्त की पुस्तक में एक अवतरण में ही पढ़ा है।

आगे दी हुई तालिका में ये सब ऐतिह्य मौजूद हैं। यदि जगदीश्वर ने चाहा, तो इससे उनके अध्ययन में सुभीता हो जायगा।

पृष्ठ २०९

एक कल्प में ग्रहों के भ्रमणों की संख्या।

ग्रह		एक कल्प में उनके भ्रमणों की संख्या।	उनके उच्चस्थानों के भ्रमणों की संख्या।	उनके पातों (nodes) के भ्रमणों की संख्या।
सूर्य	...	४,३२०,०००,०००	४८०	इसका कोई पता नहीं।
चन्द्रमा।	ब्रह्मगुप्त ...	५७,७५३,३००,०००	४८८,१०५,८५८	२३२,३११,१६८
	अलफ़ज़ारी का अनुवाद ...			२३२,३१२,१३८
	आर्यभट ...		४८८,२१९,०००	२३२,३१६,०००
	ब्रह्मगुप्त के अनुसार चन्द्रमा का कैन्द्रिक भ्रमण		५७,२६५,१९४,१४२	चन्द्रमा के कैन्द्रिक भ्रमण को यहाँ इस प्रकार वर्णन किया गया है मानों यह उच्चस्थान हो, क्योंकि यह चन्द्रमा की गति और उच्चस्थान की गति के वीच का अन्तर है।
मङ्गल	...	२,२९६,८२८,५२२	२९२	२६७
बुध	...	१७,९३६,९९८,९८४	३३२	५२१
वृहस्पति	...	३६४,२२६,४५५	८५५	६३
शुक्र	...	७,०२२,३८९,४९२	६५३	८९३
शनि	ब्रह्मगुप्त ...	१४६,५६७,२९८	४१	५८४
	अलफ़ज़ारी का अनुवाद ...	१४६,५६९,२८४		
	अलसरख़सी का संशोधन ...	१४६,५६९,२३८		
स्थिर तारे		अलफ़ज़ारी के अनुवाद के अनुसार १२०,०००		

इन चक्रों के परिसंख्यान का आधार ग्रहों की मध्यम गति है। क्योंकि ब्रह्मगुप्त के अनुसार चतुर्युगी कल्प का एक-सहस्रवाँ भाग होता है, इसलिए हमें इन चक्रों को केवल १००० पर ही बाँटना है। जो भागफल निकलेगा वही एक चतुर्युग में तारों के चक्करों की संख्या है।

चतुर्युग और कलियुग में ग्रहों के चक्र।

इसी प्रकार, यदि हम तालिका के कालचक्रों को १०,००० पर भाग दें, तो भागफल एक कलियुग में ग्रहों के काल-चक्रों की संख्या होगी, क्योंकि यह एक चतुर्युग का दसवाँ भाग है। उन भागफलों में आने वाले अपूर्णाङ्कों को, एक ऐसे अङ्क के साथ गुणा करने से जो अपूर्णाङ्क के भाजक के बराबर हो, पूर्णाङ्क, चतुर्युग या कलियुग बनाया जाता है।

नीचे की तालिका विशेष रूप से एक चतुर्युग और कलियुग में होने वाले तारों के काल-चक्रों को दिखलाती है, मन्वन्तर में होने वालों को नहीं। यद्यपि मन्वन्तर पूर्ण चतुर्युगों के गुणनों के सिवा और कुछ नहीं, फिर भी उनका लेखा करना कठिन है क्योंकि उनके आदि और अन्त में सन्धि लगी हुई है।

पृष्ठ २१०

ग्रहों के नाम	एक चतुर्युग में उनके परिभ्रमण	एक कलियुग में उनके परिभ्रमण
सूर्य ...	४,३२०,०००	४३२,०००
उसके उच्चनीच स्थान ...	$०\frac{१}{२}\frac{३}{५}$	$०\frac{}{१}\frac{६}{२}\frac{०}{५}\frac{}{०}$
सोम ...	५७,७५३,३००	५,७७५,३३०
उसके उच्च स्थान — ब्रह्मगुप्त ...	$४८८,१०५\frac{४}{५}\frac{३}{०}\frac{६}{०}$	$४८,८१०\frac{३}{५}\frac{६}{०}\frac{३}{०}\frac{६}{०}$
उसके उच्च स्थान — आर्यभट ...	४८८,२१९	$४८,८२१\frac{६}{१}\frac{}{०}$
उसका कैन्द्रिक परिभ्रमण	$५७,२६५,१९४\frac{७}{५}\frac{१}{०}\frac{}{०}$	$५,७२६,५१९\frac{३}{५}\frac{०}{०}\frac{७}{०}\frac{१}{०}$

ग्रहों के नाम	एक चतुर्युग में उनके परिभ्रमण	एक कलियुग में उनके परिभ्रमण
उसका पात — ब्रह्मगुप्त ...	२३२,३११$\frac{२१}{१२५}$	२३,२३१$\frac{२९३}{२५००}$
उसका पात — अलफ़ज़ारी का अनुवाद	२३२,३१२$\frac{६९}{५००}$	२३,२३१$\frac{१०६९}{५०००}$
उसका पात — आर्यभट ...	२३२,३१६	२३,२३१$\frac{३}{५}$
मङ्गल ...	२,२९६,८२८$\frac{२६१}{५००}$	२२९,६८२$\frac{४२६१}{५०००}$
उसका उच्च स्थान ...	०$\frac{७३}{२५०}$	०$\frac{७३}{२५००}$
उसका पात ...	०$\frac{२६७}{१०००}$	०$\frac{२६७}{१००००}$
बुध ...	१७,९३६,९९८$\frac{१२३}{१२५}$	१,७९३,६९९$\frac{११२३}{१२५०}$
उसका उच्च स्थान ...	०$\frac{८३}{२५०}$	०$\frac{८३}{२५००}$
उसका पात ...	०$\frac{४२१}{१०००}$	०$\frac{४२१}{१००००}$
वृहस्पति ...	३६४,२२६$\frac{९१}{२००}$	३६,४२२$\frac{१२९१}{२०००}$
उसका उच्च स्थान ...	०$\frac{१७१}{२००}$	०$\frac{१७१}{२०००}$
उसका पात ...	०$\frac{६३}{१०००}$	०$\frac{६३}{१००००}$
शुक्र ...	७,०२२,३८९$\frac{१२३}{२५०}$	७०२,२३८$\frac{२३७३}{२५००}$
उसका उच्चस्थान (Apsis)	०$\frac{६५३}{१०००}$	०$\frac{६५३}{१००००}$
उसका पात (Node) ...	०$\frac{८९३४}{१०००}$	०$\frac{८९३}{१००००}$
शनि ...	१४६,५६७$\frac{१४९}{५००}$	१४,६५६$\frac{३६४९}{५०००}$
उसका उच्चस्थान ...	०$\frac{४१}{१०००}$	०$\frac{४१}{१००००}$
उसका पात ...	०$\frac{७३}{१२५}$	०$\frac{७३}{१२५०}$
शनि — अलफ़ज़ारी का अनुवाद	१४६,५६९$\frac{७१}{२५०}$	१४,६५६$\frac{२३२१}{२५००}$
शनि — अलसरख़सी का संशोधन ...	१४६,५६९$\frac{११९}{५००}$	१४,६५६$\frac{४६१९}{५०००}$
स्थिर ग्रह ...	१२०	१२

पृष्ठ २११

पुलिस के अनुसार एक कल्प और चतुर्युग में ग्रहों के चक्र।

यह बता देने के उपरान्त कि, ब्रह्मगुप्त के अनुसार, एक चतुर्युग में और एक कलियुग में एक कल्प के कितने ग्रहचक्र होते हैं, अब हम पहले कल्प = १००० चतुर्युग गिनकर, और दूसरे, इसे १००८ चतुर्युग गिनकर, पुलिस के अनुसार एक चतुर्युग के ग्रहचक्रों की संख्या से एक कल्प के ग्रह-चक्रों की संख्या निकालते हैं। ये संख्याएँ नीचे की तालिका में समाई हुई हैं :—

पुलिस के अनुसार युग।

ग्रहों के नाम	एक चतुर्युग में उनके परिभ्रमणों की संख्या	१००० चतुर्युगों के कल्प में उनके परिभ्रमणों की संख्या	१००८ चतुर्युगों के कल्प में उनके परिभ्रमणों की संख्या
सूर्य ...	४,३२ ,०००	४,३२०,०००,०००	४,३५४,५६०,०००
सोम ...	५७,७५३,३३६	५७,७५३,३३६,०००	५८,२१५ ३६२,६८८
उसका उच्च-स्थान	४८८,२१९	४८८,२१९,०००	४९२,१२४,७५२
उसका पात	२३२,२२६	२३२,२२६,०००	२३४,०८३,८०८
मङ्गल ...	२,२९६,८२४	२,२९६,८२४,०००	२,३१५,१९८,५९२
बुध ...	१७,९३७,०००	१७,९३७,०००,०००	१८,०८०,४९६,०००
वृहस्पति ...	३६४,२२०	३६४,२२०,०००	३६७,१३३,७६०
शुक्र ...	७,०२२,३८८	७,०२२,३८८,०००	७,०७८,५६७,१०४
शनि ...	१४६,५६४	१४६,५६४,०००	१४७,७३६,५१२

इस सन्दर्भ में हमें एक विचित्र अवस्था मिलती है। यह बात प्रत्यक्ष है कि अलफ़ज़ारी और याक़ूब ने कभी अपने हिन्दू गुरु से इस विषय की वात सुनी थी, कि ग्रहों के चक्करों की उसकी गिनती बृहत्सिद्धान्त की है, परन्तु आर्यभट इसके एक-सत्रहवें भाग के साथ गिनता था। यह स्पष्ट जान पड़ता है कि उन्होंने उसके अर्थ को यथार्थतः नहीं समझा, और यह कल्पना कर ली कि आर्यभट (अरबी, आर्जभद) का अर्थ एक-सहस्रवाँ भाग है। हिन्दू लोग इस शब्द के ड का उच्चारण कुछ द और र के बीच करते हैं। इसलिये व्यञ्जन बदल कर र हो गया, और लोगों ने आर्यभर लिख दिया। पीछे से इसके अंगों को और भी अधिक काट डाला। पहले र को ज़ में वदल दिया गया, और इस प्रकार लोग इसे आज्जभर लिखने लगे। यदि उस वेष में यह शब्द मुड़ कर हिन्दुओं के पास जावे, तो वे उसे पहचान न सकेंगे।

अरब लोगों में आर्यभट शब्द का रूपान्तर।

फिर, अल अहवाज़ का अबू-अलहसन अल-अर्जर के वर्षों में, अर्थात् चतुर्युगों में ग्रहों के परिभ्रमणों का उल्लेख करता है। मैंने उन्हें जैसा पाया है वैसा ही तालिका में दिखलाता हूँ, क्योंकि मेरा अनुमान है कि वे उस हिन्दू के लिखाए हुए वर्णन से लिए गए हैं। इसलिये सम्भवतः वे हमें आर्यभट की कल्पना बतलाते हैं। इन संख्याओं में से कुछ तो एक चतुर्युग पृष्ठ २१२ में होने वाले उन ग्रह-चक्रों के साथ मिलती हैं जिनका उल्लेख हम ने ब्रह्मगुप्त के प्रमाण से किया है; कुछ उनसे भिन्न हैं और पुलिस की कल्पना से मिलती हैं; तीसरी प्रकार की संख्याएँ ब्रह्मगुप्त और पुलिस दोनों की संख्याओं से भिन्न हैं, जैसा कि सारी तालिका को ध्यान-पूर्वक देखने से विदित हो जायगा।

अल-अहवाज़ के अबुलहसन के अनुसार ग्रहों के काल-चक्र।

ग्रहों के नाम		अबू-अलहसन अलअह्वाज के अनु-सार एक चतुर्युग के भागों के रूप में उनके युग
सूर्य ...	...	४,३२०,०००
चन्द्र ...	...	५७,७५३,३३६
उसका उच्चस्थान	...	४८८,२१९
उसका पात	...	२३२,२२६
मङ्गल ...	...	२,२९६,८२८
बुध ...	...	१७,९३७,०२०
बृहस्पति ...	...	३६४,२२४
शुक्र ...	...	१,०२२,३८८
शनि ...	...	१४६,५६४

इक्यावनवाँ परिच्छेद

'अधिमास', 'ऊनरात्रि', और 'अहर्गण' का वर्णन—जो कि दिनों की भिन्न-भिन्न संख्याओं को प्रकट करते हैं।

हिन्दुओं के मास चान्द्र, और उनके वर्ष सौर हैं; इसलिए प्रत्येक सौर वर्ष में उनके नव वर्ष का दिन अपेक्षाकृत उतना ही पहले आता है जितना कि वह चान्द्र वर्ष सौर वर्ष से छोटा होता है (स्थूल रूप से कहें तो ग्यारह दिन)। यदि यह पुरोगति पूरा एक मास बना लेती है, तो वे यहूदियों के सदृश ही कार्य करते हैं, जो अजार मास को दो बार गिनकर वर्ष को तेरह मास का लौंद का वर्ष बना लेते हैं, और इसी प्रकार साकारवादी अरबों के सदृश काम करते हैं, जिन्होंने कथन-पात्र विलम्बित संवत् (annus procrastinationis سن نسی) में नव वर्ष के दिवस को स्थगित कर दिया और उससे पूर्ववर्ती वर्ष को बढ़ाकर उसका समय तेरह मास का बना दिया।

अधिमास पर।

जिस वर्ष में एक मास दो बार लाया जाता है उसे हिन्दू सामान्य भाषा में मलमास कहते हैं। मल का अर्थ है हाथ को लग जानेवाला मैल। जिस प्रकार ऐसे मैल को फेंक दिया जाता है, उसी प्रकार अधि-मास को भी गिनती से बाहर कर दिया जाता है, और एक वर्ष के मासों की संख्या बारह रह जाती है। परन्तु, साहित्य में लौंद का मास अधिमास कहलाता है।

वह मास दो वार लाया जाता है जिसमें (क्योंकि यह सौर मास समझा जाता है) दो चान्द्र मास समाप्त होते हैं। यदि उस चान्द्र मास का अन्त सौर मास के आरम्भ के साथ मिल जाता है, यदि वास्तव में, सौर मास के किसी अंश के व्यतीत होने के पूर्व ही चान्द्र मास समाप्त हो जाता है; तो इस मास को दुबारा लाया जाता है, क्योंकि चान्द्र मास का अन्त, यद्यपि यह अभी तक नये सौर मास में नहीं घुसा फिर भी, पूर्ववर्ती मास का कोई भाग नहीं।

यदि किसी मास की पुनरावृत्ति की जाती है, तो पहली बार इस का साधारण नाम होता है, परन्तु दूसरी बार वे इसके नाम के पहले दुरा शब्द जोड़ देते हैं ताकि उनमें पहचान हो सके। यदि, उदाहरणार्थ आषाढ़ मास दुबारा लाया गया है, तो पहला आषाढ़ कहलाता है और दूसरा दुराषाढ़। पहला मास वह है जिसे गणना में छोड़ दिया जाता है। हिन्दू इसे अशुभ समझते हैं, और जो त्योहार वे दूसरे मासों में मनाते हैं उनमें से कोई एक भी इस मास में नहीं मनाते। इस मास में सब से अशुभ दिन वह होता है जिस दिन चान्द्र-परिवर्तनकाल समाप्त हो जाता है।

पृष्ठ २१३

विष्णु-धर्म्म का कर्ता कहता है—"चान्द्र (मान) सावन से छोटा होता है, अर्थात् चान्द्र वर्ष नागरिक वर्ष से छः दिन, अर्थात् ऊनरात्र छोटा होता है। ऊन का अर्थ है कमी, घाटा। सौर चान्द्र से सात दिन बड़ा होता है, जिस से दो वर्ष और सात मास में संख्यातिरिक्त अधिमास उत्पन्न हो जाता है। यह सारा मास अशुभ है, और इस में कुछ भी नहीं करना चाहिये।" इस विषय का यह स्थूल वर्णन है। अब हम इसका सम्यक् रूप से वर्णन करते हैं।

विष्णु-धर्म्म से अवतरण।

चान्द्र वर्ष में ३६० चान्द्र दिन और सौर वर्ष में ३७१$\frac{3}{5}\frac{?}{?}$ चान्द्र

दिन होते हैं। पर अन्तर इकट्ठा होकर ९७६$\frac{५}{४}\frac{१}{७}\frac{२}{७}\frac{६}{९}$९ चान्द्र दिनों में, अर्थात् ३२ मास में, या २ वर्ष, ८ मास, १६ दिन, योग अपूर्णाङ्कः $\frac{५}{४}\frac{१}{७}\frac{२}{७}\frac{६}{९}$९ चान्द्र दिन में, जो कि लगभग = ५ कला, १५ विपल (सेकंड) है, एक अधिमास के तीस दिनों के बराबर हो जाता है।

बीच में बढ़ा देने की इस कल्पना के धार्म्मिक कारण के रूप में हिन्दू लोग वेद के एक वचन का उल्लेख करते हैं। यह वचन उन्होंने हमें पढ़कर सुनाया है। इसका भाव यह है

वेद का अवतरण।

"यदि ग्रहयुति का दिन, अर्थात् मास का पहला चान्द्र दिन, सूर्य के एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश किये बिना ही व्यतीत हो जाय, और यदि यह बात अगले दिन हो, तो पूर्ववर्ती मास गिनती में छोड़ दिया जाता है।

इस वचन का अर्थ ठीक नहीं, इसमें अपराध अवश्य उस मनुष्य का है जिसने यह वचन मुझे सुनाया और उसका अनुवाद किया।

उसकी आलोचना

क्योंकि एक मास में तीस चान्द्र दिन होते हैं, और सौर वर्ष के बारहवें भाग में ३०$\frac{५}{५}\frac{३}{७}\frac{१}{०}\frac{१}{०}$ चान्द्र दिन होते हैं। यह अपूर्णाङ्क, दिन की कलाओं (मिनटों) में गिनने से, ५५*i* १९*ii*, २२*iii*, ३०*iiii* के बराबर है। उदाहरणार्थ, अब यदि हम किसी राशि के ०° पर ग्रहयुति या अमावास्या का होना मान लें, तो हम इस अपूर्णाङ्क को ग्रहयुति के समय के साथ जोड़ देते हैं, और उस से हमें राशियों में सूर्य के क्रमशः प्रवेश करने के समय मालूम हो जाते हैं। अब क्योंकि चान्द्र और सौर मास में केवल एक दिन के एक भग्नांश का ही अन्तर है, इसलिए किसी नई राशि में सूर्य के प्रवेश करने की घटना स्वभावतः ही मास के दिनों में से किसी एक में हो सकती है। वरन् यह भी हो सकता है कि सूर्य दो क्रमागत राशियों में उसी मास-दिन (उदाहरणार्थ, दो क्रमागत मासों के दूसरे या तीसरे) में

प्रवेश करता है। यह अवस्था तब होती है जब एक मास में सूर्य राशि में उस समय प्रवेश करता है जब अभी उसके ४i ४०ii ३७iii ३०iiii व्यतीत नहीं हो चुके होते; क्योंकि राशि में इसके अगला प्रवेश ५५i १९ii २३iii ३०iiii पीछे से होता है, और ये दोनों अपूर्णाङ्क इकट्ठे करने पर (अर्थात् ४i ४०ii ३७iii ३०iiii से कम योग शेषोक्त अपूर्णाङ्क) एक पूर्ण दिन बनाने के लिए अपर्याप्त हैं। इसलिए वेद का यह अवतरण ठीक नहीं।

परन्तु मैं समझता हूँ कि इसका आगे दिया अर्थ ठीक होगा:—कोई मास ऐसा बीतता है जिसमें सूर्य एक राशि से दूसरी में नहीं जाता, तो इस मास को गणना में छोड़ दिया जाता है। क्योंकि यदि सूर्य किसी मास की २९ वीं को किसी राशि में प्रवेश करता है, जब इसके कम से कम ४i ४०ii ३७iii ३०iiii बीत चुके होते हैं, तो यह प्रवेश उत्तर मास के आरम्भ के पहले होता है, और इसलिए इस पिछले मास में सूर्य का किसी नई राशि में प्रवेश नहीं होता, क्योंकि इसके आगे का अगला प्रवेश एक छोड़कर अगले या तीसरे मास की पहली को होता है। यदि आप, किसी राशि विशेष के ०° में होनेवाली ग्रहयुति से आरम्भ करके, क्रमागत प्रवेशों का लेखा करेंगे तो आप देखेंगे कि तेंतीसवें मास में सूर्य उनतीसवें दिन के ३०i २०ii पर नई राशि में प्रवेश करता है, और वह उसके आगे की राशि में पैंतीसवें मास के प्रथम दिन के २५i ३९ii २२iii ३०iiii पर प्रविष्ट होता है।

वेद-वचन का प्रस्तावित समाधान।

पृष्ठ २१४

इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि क्यों यह मास, जो गिनती में छोड़ दिया जाता है, अशुभ समझा जाता है। कारण यह है कि यह मास ठीक उस क्षण को छोड़ देता है जो इसमें 'दिव्य पुरस्कार

उपार्जन करने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है, अर्थात् नई राशि में सूर्य के प्रवेश करने का क्षण।

अब अधिमास को लीजिये। इस शब्द का अर्थ है पहला मास, क्योंकि अद का अर्थ है आरम्भ (अर्थात् आदि)। याकूब इब्न तारिक़ और अलफ़ज़ारी की पुस्तकों में यह नाम पदमास लिखा है। पद (मूल पुस्तक में, प—ध) का अर्थ है अन्त, और सम्भव है कि हिन्दू लौंद के मास को दोनों नामों से पुकारते हों; परन्तु पाठकों को विदित होगा कि ये दोनों ग्रन्थकर्ता बारबार भारतीय शब्दों के हिज्जे अशुद्ध लिखते या उनका रूप बिगाड़ते हैं, और उनके ऐतिह्य पर कोई विश्वास नहीं। मैं इसका उल्लेख केवल इसलिए करता हूँ क्योंकि पुलिस इन दो मासों में से, जो उसी नाम से पुकारे जाते हैं जिससे कि संख्यातिरिक्त मास पुकारा जाता है, पिछले की व्याख्या करता है।

मास, जो एक ग्रहयुति से लेकर दूसरी ग्रहयुति तक का समय है, चन्द्रमा का एक परिभ्रमण है। यह चन्द्रमा क्रान्तिमण्डल में से,

सार्वत्रिक या आंशिक मासों और दिनों की व्याख्या।

परन्तु एक ऐसे मार्ग पर जो सूर्य के मार्ग से दूर है, घूमता है। इन दो आकाशस्थ ज्योतियों की गतियों में यही अन्तर है, परन्तु उनके घूमने की दिशा एक ही है। यदि हम सूर्य के परिभ्रमणों अर्थात् कल्प के सौर चक्रों को चान्द्र चक्रों में से घटावें तो अवशेष इस बात को दिखलाता है कि एक कल्प में सौर मासों की अपेक्षा चान्द्र मास कितने अधिक हैं। जिन मासों या दिनों को हम पूर्ण कल्पों के भागों के रूप में गिनते हैं उन सब को हम यहाँ सार्वत्रिक कहते हैं; और जिन मासों या दिनों को हम कल्प के किसी भाग, उदाहरणार्थ चतुर्युग के भागों के रूप में गिनते हैं, उन सब को हम, परिभाषा को सरल बनाने के उद्देश से, आंशिक कहते हैं।

वर्ष में बारह सौर मास और उसी प्रकार बारह चान्द्र मास होते हैं। चान्द्र मास बारह मासों के साथ पूर्ण हो जाता है, और सौर वर्ष में, दो वर्ष-प्रकारों के अन्तर के कारण, अधिमास मिलाकर, तेरह मास होते हैं।

सार्वत्रिक अधिमास।

अब यह बात स्पष्ट है कि सार्वत्रिक सौर और चान्द्र मासों के बीच के अन्तर को ये संख्यातिरिक्त मास दिखलाते हैं, जिनसे वर्ष लम्बा होकर तेरह मास का हो जाता है। इसलिए ये सार्वत्रिक अधिमास हैं।

एक कल्प में सार्वत्रिक सौर मास ५१,८४०,०००,००० होते हैं; एक कल्प में सार्वत्रिक चान्द्रमास ५३,४३३,३००,००० होते हैं। उनके बीच का अन्तर या अधिमास १,५९३,३००,००० है।

इन संख्याओं को घटाकर छोटी संख्याएँ बनाने के लिए हम उन्हें एक सामान्य भाजक, अर्थात् ९,०००,००० पर बाँटते हैं। इस प्रकार हमें सौर मासों के दिनों की संख्या के रूप में १७२,८००; चान्द्र मासों के दिनों की संख्या के रूप में १७८,१११; और अधिमासों के दिनों की संख्या के रूप में ५३११ मिलते हैं।

यदि हम फिर कल्प के सार्वत्रिक सौर, नागरिक, और चान्द्र दिनों को, प्रत्येक प्रकार को अलग अलग, सार्वत्रिक अधिमासों पर बाँटें, तो भाग-फल दिनों की उस संख्या को दिखलाता है जिनमें एक समग्र अधिमास पूरा हो जाता है, अर्थात् ९७६ $\frac{५}{५}\frac{६}{३}\frac{५}{११}$ सौर दिनों में, १००६ $\frac{५}{५}\frac{६}{३}\frac{५}{११}$ चान्द्र दिनों में, और ९९० $\frac{३}{१}\frac{५}{०}\frac{६}{६}\frac{३}{२२}$ नागरिक दिनों में।

अधिमास के बनने के लिए कितने सौर, चान्द्र, और नागरिक दिन चाहिएँ।

यह समग्र परिसंख्यान उन मानों पर आश्रित है जिनको ब्रह्मगुप्त ने कल्प और कल्प में होनेवाले ग्रहों के कालचक्रों के विषय में ग्रहण किया है।

चतुर्युग के विषय में पुलिस के सिद्धान्त के अनुसार, एक चतुर्युग में ५१,८४०,००० सौर मास, ५३,४३३,३३६ चान्द्र मास, १,५९३,३३६ अधिमास होते हैं। इसके अनुसार एक चतुर्युग में १,५५५,२००,००० सौर दिन, १,६०३,०००,०८० चान्द्र दिन, और अधिमासों के ४७,८००,०८० दिन होते हैं।

पृष्ठ २१५

पुलिस के अनुसार अधिमास का परिसंख्यान।

यदि हम मासों की संख्याओं को २४ के सामान्य भाजक के द्वारा घटावें, तो हमें २,१६०,००० सौर मास, २, २२६,३८९ चान्द्र मास, ६६,३८९ अधिमास मिलते हैं। यदि हम दिन की संख्याओं को ७२० के सामान्य भाजक पर बाँटें, तो २,१६०,००० सौर दिन, २,२२६,३८९ चान्द्र दिन, अधिमासों के ६६,३८९ दिन निकलते हैं। अन्ततः, यदि हम एक चतुर्युग के सार्वत्रिक सौर, चान्द्र, और नागरिक दिनों को, प्रत्येक प्रकार को अलग-अलग, चतुर्युग के सार्वत्रिक अधिमासों पर बाँटें, तो भागफल दिनों की उस संख्या को दिखाता है जिसमें एक समग्र अधिमास पूर्णता को प्राप्त होता है, अर्थात् ९७६ $\frac{४}{६}\frac{३}{६}\frac{३}{३}\frac{६}{८९}$ सौर दिनों में, १००६ $\frac{४}{६}\frac{३}{६}\frac{३}{३}\frac{६}{८९}$ चान्द्र दिनों में, और ९९० $\frac{२}{६}\frac{१}{६}\frac{४}{३}\frac{६}{८९}$ नागरिक दिनों में।

अधिमास की गिनती के ये मूल सूत्र हैं। इनको हमने अगले अन्वेषणों के लाभार्थ निकाला है।

ऊनरात्र की व्याख्या।

जिस कारण से ऊनरात्र, मूलार्थतः ह्रास के दिनों, की आवश्यकता होती है, उसके विषय में हमें आगे दिये पर विचार करना है।

यदि हमारे पास एक वर्ष या वर्षों की एक विशेष संख्या हो, और हम उनमें से प्रत्येक के लिए बारह-बारह मास गिनें, तो हमें सौर मासों की अनुरूप संख्या मिल जाती है, और फिर इन सौर मासों को ३० से गुणा करने से सौर दिनों की अनुरूप संख्या, निकल आती है। यह स्पष्ट है कि एक अवधि के चान्द्र मासों या दिनों की संख्या वही,

होगी जो एक या अनेक अधिमासों को सौर मास वा दिनों में जोड़ने से निकलेगी। यदि हम, सार्वत्रिक सौर मासों और सार्वत्रिक अधिमास महीनों के बीच के संबंध के अनुसार, इस वृद्धि के, प्रस्तुत कालावधि के योग्य अधिमास महीने बनायें, और इसको प्रस्तुत वर्षों के मासों या दिनों में जोड़ दें, तो सर्वयोग आंशिक चान्द्र दिनों को, अर्थात् उन दिनों को जो वर्षों की दी हुई संख्या के अनुरूप है, दिखलाता है।

परन्तु, यह वह चीज़ नहीं जिसकी हमें आवश्यकता है। हमें आवश्यकता है दिये हुए वर्षों के नागरिक दिनों की संख्या की, जो कि चान्द्र दिनों की संख्या से कम है; क्योंकि एक नागरिक दिन एक चान्द्र दिन से बड़ा होता है। इसलिए, जिस चीज़ की तलाश है उसे पाने के लिए, हमें चान्द्र दिनों की संख्या में से अवश्य कुछ घटाना चाहिए, और वह कुछ जो घटाना चाहिए ऊनरात्र कहलाता है।

आंशिक चान्द्र दिनों के ऊनरात्र का सार्वत्रिक चान्द्र दिनों के साथ वैसा हो संबंध है जैसा कि सार्वत्रिक नागरिक दिन सार्वत्रिक चान्द्र दिनों से कम हैं। एक कल्प के सार्वत्रिक चान्द्र दिन १,६०२,९९९,०००,००० होते हैं। यह संख्या सार्वत्रिक नागरिक दिनों की संख्या से २५,०८२, ५५०,००० अधिक है, जो कि सार्वत्रिक ऊनरात्र को दिखलाती है।

ये दोनों संख्याएँ ४५०,००० के सामान्य भाजक द्वारा छोटी की जा सकती हैं। इस प्रकार हमें ३,५६२,२२० सार्वत्रिक चान्द्र दिन, और ५५,७३९ सार्वत्रिक ऊनरात्र दिन प्राप्त होते हैं।

पुलिस के अनुसार ऊनरात्र का लेखा।

पुलिस के अनुसार, एक चतुर्युग में १,६०३,०००,०८० चान्द्र दिन, और २५,०८२,२८० ऊनरात्र दिन होते हैं। वह सामान्य भाजक, जिससे ये दोनों

संख्याएँ छोटी की जा सकती हैं, ३६० है। इस प्रकार हमें ४,४५२,७७८ चान्द्र दिन और ६६,६७३ ऊनरात्र दिन प्राप्त होते हैं।

ऊनरात्र के गिनने के लिए यही नियम हैं। इनकी आवश्यकता हमें पीछे से अहर्गण के परिसंख्यान के लिए पड़ेगी। इस शब्द का अर्थ है दिनों का समूह; क्योंकि अह का अर्थ है दिन, और गण का समूह।

याकूब इब्न तारिक ने सौर दिनों के परिसंख्यान में एक भूल की है; क्योंकि उसका मत है कि तुम उन्हें कल्प के सौर चक्रों को कल्प के नागरिक दिनों, अर्थात् सार्वत्रिक नागरिक दिनों में से घटाकर प्राप्त करते हो। परन्तु यह बात नहीं है। कल्प के सौर चक्रों को, उनके मास बनाने के लिए, १२ से गुणन करके, और मासों के दिन बनाने के लिए, गुणनफल को ३० से गुणन करके अथवा चक्रों की संख्या को ३६० से गुणन करके हम सौर दिन निकाल लेते हैं।

पृष्ठ २१६ याकूब इब्न तारिक पर आलोचना।

चान्द्र दिनों की गिनती में उसने, कल्प के चान्द्र मासों को ३० से गुणन करके, पहले तो ठीक मार्ग पकड़ा है, परन्तु पीछे से वह फिर ऊनरात्र के दिनों के गिनने में भूल में जा पड़ा है। क्योंकि वह कहता है कि तुम उन्हें चान्द्र दिनों में से सौर दिन घटाकर प्राप्त कर सकते हो, परन्तु ठीक बात चान्द्र दिनों में से नागरिक दिन निकालना है।

बावनवाँ परिच्छेद

अहर्गण की स्थूल रूप से गिनती, अर्थात् वर्षों और मासों के दिन, और दिनों के वर्ष और मास बनाना।

बनाने की साधारण रीति यह है—पूरे वर्षों को १२ से गुणन किया जाता है; गुणन-फल में प्रचलित वर्ष के बीते हुए मास जोड़ दिये जाते हैं, [और इस राशि को ३० से गुणन किया जाता है;] इस घात में वर्तमान मास के वे दिन जोड़ दिये जाते हैं जो बीत चुके हैं। वह राशि सौराहर्गण, अर्थात् आंशिक सौर दिनों की संख्या को दिखलाती है।

सावनाहर्गण निकालने का साधारण नियम।

आप संख्या को दो स्थानों में लिखते हैं। एक स्थान में आप इसे ५,३११ से, अर्थात् सार्वत्रिक अधिमासों को दिखलानेवाली संख्या से, गुणन करते हैं। गुणाकार को आप १७२,८०० पर, अर्थात् सार्वत्रिक सौर मासों को दिखलानेवाली संख्या पर, बाँटते हैं। भाग-फल में जितने पूरे दिन होते हैं वे दूसरे स्थान में लिखी हुई संख्या में जोड़ दिये जाते हैं, और यह राशि चन्द्राहर्गण, अर्थात् आंशिक चान्द्र दिनों की संख्या को दिखलाती है।

यह पिछली संख्या फिर दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिख दी जाती है। एक स्थान में आप इसे ५५,७३९, अर्थात् सार्वत्रिक ऊन-

रात्र दिनों को दिखलानेवाली संख्या से गुणन करते हैं, और गुणा-कार को ३,५६२,२२० अर्थात् सार्वत्रिक चान्द्र दिनों को दिखलाने-वाली संख्या पर बाँटते हैं। जो भाग-फल निकलता है, जहाँ तक इसमें पूरे दिन होते हैं, उसे दूसरे स्थान में लिखी हुई संख्या में से घटाया जाता है, और अवशेष सावनाहर्गण, अर्थात् नागरिक दिनों की वह संख्या जिसे हम मालूम करना चाहते थे, रह जाती है।

परन्तु पाठक को भूल न जाना चाहिए कि यह परिसंख्यान उन्हीं तिथियों पर लागू है जिनमें, अपूर्णाङ्कों के विना, केवल पूर्ण अधिमास और ऊनरात्र दिन हैं। अतएव, यदि वर्षों की किसी दी हुई संख्या का उपक्रम किसी कल्प, या चतुर्युग, या कलियुग के आरम्भ के साथ होता है, तो यह परिसंख्यान ठीक है। परन्तु यदि दिये हुए वर्षों का उपक्रम किसी दूसरे समय से होता हो, तो सुयोग से यह परिसंख्यान भले ही ठीक निकल आये, परन्तु सम्भवतः इसका परिणाम अधिमास-काल के अस्तित्व की सिद्धि होगा, और उस अवस्था में यह परिसंख्यान ठीक न होगा। इसके अतिरिक्त, इन दो अन्तिम बातों का विपर्यय भी हो सकता है। फिर भी, यदि इस बात का ज्ञान हो कि कल्प, चतुर्युग, या कलि-युग में किस निर्दिष्ट समय से वर्षों की दी हुई संख्या का आरम्भ होता है, तो हम परिसंख्यान की एक विशेष विधि का उपयोग करते हैं। इसकी व्याख्या हम आगे चलकर उदाहरणों द्वारा करेंगे।

उसी कार्य के लिए अधिक सविस्तर नियम।

इस विधि को हम भारतीय संवत् शक काल ९५३ के आरम्भ के लिए काम में लायँगे। यह वही वर्ष है जिसका उपयोग हम इन सब परिसंख्यानों में मान-वर्ष के रूप में करते हैं।

शेषोक्त विधि शक-काल ९५३ के लिए काम में लाई गई।

पहले हम, ब्रह्मगुप्त के नियमों के अनुसार, ब्रह्मा की आयु के आरम्भ से काल की गिनती करते हैं। हम पहले ही कह चुके हैं कि वर्तमान कल्प के पहले ६०६८ कल्प बीत चुके हैं। इसको कल्प के दिनों की सुप्रसिद्ध संख्या (१,५७७,९१६,४५०,००० नागरिक दिन) के साथ गुणा करने से ६०६८ कल्पों के दिनों की संख्या के रूप में ९,५७४,७९७,०१८,६००,००० निकलते हैं।

इस संख्या को ७ पर भाग देने से ५ अवशेष रहता है, और शनि-वार से, जो पूर्ववर्ती कल्प का अन्तिम दिवस है, पाँच दिन पीछे की ओर गिनने से ब्रह्मा की आयु का पहला दिन मङ्गलवार निकलता है।

हम चतुर्युग के दिनों की संख्या (१,५७७,९१६,४५० दिन) का उल्लेख पहले ही कर चुके हैं, और यह भी दिखला चुके हैं कि कृतयुग इसके चार-दसवें भाग अर्थात् ६३१,१६६,५८० दिनों के बराबर होता है। एक मन्वन्तर में

पृष्ठ २१७

इससे इकहत्तर गुना अधिक, अर्थात् ११२,०३२,०६७,९५० दिन होते हैं। छः मन्वन्तरों और उनकी सन्धि के दिन, जिनमें सात कृतयुग होते हैं, ६७६,६१०,५७३,७६० होते हैं। यदि हम इस संख्या को ७ पर बाँटें तो २ अवशेष रहता है। इसलिए ६ मन्वन्तर सोमवार को समाप्त होते हैं, और सातवें का आरम्भ मङ्गलवार से होता है।

सातवें मन्वन्तर के सत्ताईस चतुर्युग अर्थात् ४२,६०३,७४४, १५० दिन, पहले ही बीत चुके हैं। यदि हम इस संख्या को ७ पर बाँटें तो २ अवशेष रहता है। इसलिए अट्ठाईसवाँ चतुर्युग मङ्गलवार से आरम्भ होता है।

इस चतुर्युग के बीते हुए युगों के दिनों की संख्या १,४२०, १२४, ८०५ है। इसे ७ पर बाँटने से १ अवशेष रहता है। इस-लिए कृतयुग शुक्रवार से आरम्भ होता है।

अब हम फिर मान-वर्ष की ओर आते हैं। हम कहते हैं कि उस वर्ष तक कल्प के जितने वर्ष बीत चुके हैं उनकी संख्या १,९७२, ९४८,१३२ है। उनको १२ से गुणा करने से उनके मासों की संख्या २३,६७५, ३७७,५८४ निकलती है। जिस तिथि को हमने मान-वर्ष के रूप में ग्रहण किया है, उसमें कोई मास नहीं, केवल पूर्ण वर्ष ही हैं; इसलिए इस संख्या में हमें और कुछ बढ़ाना नहीं।

इस संख्या को ३० के साथ गुणा करने से, ७१०,२६१,३२७, ५२० दिन निकलते हैं। हमें इस संख्या में और दिन बढ़ाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि नियमित तिथि में दिन नहीं हैं। इसलिए, यदि हम वर्षों की संख्या को ३६० से गुणा करते, तो हमें वही फल, अर्थात् आंशिक सौर दिवस प्राप्त होते।

इस संख्या को ५३११ से गुणा करो, फिर गुणन-फल को १७२, ८०० पर बाँटो। भागफल अधिमास दिनों की संख्या, अर्थात् २१, ८२९,८४९,०१८ $\frac{१}{१}\frac{०}{२}\frac{३}{०}$ निकलेगा। यदि गुणन और विभाजन में हम मासों का उपयोग करते, तो हमें अधिमास-मास मिलते। फिर उनको ३० से गुणा करने से वे यहाँ लिखी अधिमास-दिवसों की संख्या के बराबर हो जाते।

फिर यदि हम अधिमास-दिवसों को आंशिक सौर दिवसों में जोड़ दें तो ७३२,०९१,१७६,५३८ बन जाते हैं। ये आंशिक चान्द्र दिन हैं। इनको ५५,७३९ से गुणा करने, और गुणन-फल को ३,५९२,२२० पर भाग देने से ११,४५५,२२४,५७५ $\frac{३}{१}$; $\frac{७४७}{७८१}$, $\frac{६४१}{११०}$ आंशिक ऊनरात्र दिन निकल आते हैं।

दिनों की यह संख्या, अपूर्णाङ्क के बिना, आंशिक चान्द्र दिनों में से घटाई जाती है, फिर अवशेष, ७२०,६३५,९५१,९६३ हमारी मानतिथि के नागरिक दिनों की संख्या को दिखलाता है।

इसको ७ पर बाँटने से ४ अवशेष रहता है, जिसका अर्थ यह है कि इन दिनों में अन्तिम बुधवार है। इसलिए भारतीय वर्ष बृहस्पतिवार से आरम्भ होता है।

यदि हम फिर आगे अधिमास-काल मालूम करना चाहते हों, तो हम अधिमास दिनों को ३० पर बाँटते हैं, और भागफल उन अधिमासों की संख्या होता है जो बीत चुके हैं, अर्थात् ७२७,६६१, ६३३, योग, वर्तमान वर्ष के लिए, २८ दिन, ५१ कला, ३० विपल का अवशेष। यह वह समय है जो वर्तमान वर्ष के अधिमास महीने में से पहले ही बीत चुका है। एक पूरा मास बनने के लिए इसमें केवल १ दिन, ८ कला, ३० विपल की कमी है।

कल्प का एक विशेष अतीत अंश मालूम करने के लिए, हमने यहाँ सौर और चान्द्र दिनों, अधिमास और ऊनरात्र दिनों का उपयोग किया है। अब चतुर्युग का अतीत अंश जानने के लिए भी हम वही काम करेंगे। चतुर्युग के परिसंख्यान के लिए हम उन्हीं तत्त्वों का उपयोग कर सकते हैं जिनका हमने कल्प के लिए किया है, क्योंकि, जब तक हम उस एक ही सिद्धान्त (अर्थात् ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त) का अवलम्ब करते हैं और काल-गणना की भिन्न-भिन्न पद्धतियों को आपस में मिला नहीं देते, और जब तक प्रत्येक गुणाकार और उसका भागभार, जिनका हम यहाँ इकट्ठा उल्लेख करते हैं, दोनों परिसंख्याओं में एक दूसरे के समान हैं, दोनों विधियाँ एक ही परिणाम पर पहुँचा देती हैं।

पुलिस के सिद्धान्तानुसार वही गणना चतुर्युग पर लगाई जाती है।

गुणाकार का अर्थ, सब प्रकार की गणनाओं में, गुणक है। हमारी (अरबी) तथा फ़ारसीवालों की ज्योतिर्विद्या की पुस्तकों में यह शब्द 'गुण चार' रूप में मिलता है। दूसरी परिभाषा का अर्थ

है प्रत्येक विभाजक। ज्योतिर्विद्या के गुटकों में यह 'बहचार' रूप में मिलती है।

ब्रह्मपुत्र के सिद्धान्तानुसार चतुर्युग पर इस परिसंख्यान को दृष्टान्त देकर समझाना व्यर्थ है, क्योंकि उसके मतानुसार चतुर्युग कल्प का केवल एक सहस्रवाँ भाग है, उपर्युक्त संख्याओं में से तीन शून्य निकालकर केवल पृष्ठ २१८ उनको छोटा कर देना चाहिए; और अन्य सब प्रकार से हमें वही परिणाम मिलते हैं। इसलिए अब हम पुलिस के सिद्धान्तानुसार यह परिसंख्यान देंगे। यह यद्यपि चतुर्युग के लिए लगाया गया है, पर कल्प के लिए प्रयुक्त परिसंख्यान की विधि के सदृश है।

पुलिस के अनुसार, मान-संवत् के आरम्भ की घड़ी में, चतुर्युग के वर्षों में से ३,२४४,१३२ बीत चुके हैं, जो १,१६७,८८७,५२० सौर दिनों के बराबर हैं। यदि हम मासों की उस संख्या को जो दिनों की इस संख्या के बराबर हो एक चतुर्युग के अधिमास-मासों की संख्या से अथवा उसके अनुरूप गुणक से, गुणा करें, और गुणनफल को चतुर्युग के सौर मासों की संख्या पर, अथवा उसके अनुरूप विभाजक पर, विभक्त करें, तो अधिमास-मासों की संख्या के रूप में हमें १, १९६, ५२५$\frac{४४८३७}{४६०००}$ प्राप्त होंगे।

फिर, चतुर्युग के ३,२४४,१३२ अतीत वर्ष १,२०३,७८३,२७० चान्द्र दिनों के बराबर हैं। इनको चतुर्युग के ऊनरात्र दिनों की संख्या के साथ गुणा करने, और गुणनफल को चतुर्युग के चान्द्र दिनों पर विभक्त करने से १८,८३५,७००$\frac{५१८०५}{२२०३८९}$ ऊनरात्र दिन निकलते हैं। इसके अनुसार चतुर्युग के आरम्भ से बीतनेवाले नागरिक दिनों की संख्या १,१८४,९४७,५७० होती है, और यही हम मालूम करना चाहते थे।

इस सारे विषय को पाठकों के मन पर अधिक स्पष्ट और अधिक सम्पूर्ण रूप से स्थिर करने के उद्देश्य से, हम यहाँ पुलिस-सिद्धान्त का एक वचन देते हैं जिसमें परिसंख्यान की एक वैसी ही विधि वर्णित है। पुलिस कहता है—"हम पहले उन कल्पों पर ध्यान देते हैं जो वर्तमान कल्प के पहले ब्रह्मा के जीवन के बीत चुके हैं, अर्थात् ६०६८ कल्प। हम इस संख्या को कल्प के चतुर्युगों की संख्या, अर्थात् १००८ से गुनते हैं। इस प्रकार गुणन-फल ६,११६,५४४ निकलता है। इस संख्या को हम एक चतुर्युग के युगों की संख्या, अर्थात् ४, से गुनते हैं। इसका गुणन-फल २४, ४६६,१७६ होता है। इस संख्या को हम एक युग के वर्षों की संख्या, अर्थात् १,०८०,००० से गुनते हैं। इसका गुणनफल २६; ४२३,४७०,०८०,००० होता है। ये वर्तमान कल्प के पहले बीते हुए वर्ष हैं।

पुलिस-सिद्धान्त से ली हुई परिसंख्यान की एक वैसी ही विधि।

हम इस शेषोक्त संख्या को १२ से गुनते हैं, जिससे ३१७,०८१, ६४०,६६०,००० मास निकल आते हैं। हम इस संख्या को दो भिन्न भिन्न स्थानों में लिखते हैं।

एक स्थान में, हम इसे एक चतुर्युग के अधिमास मासों की संख्या, अर्थात् १,५६३,३३६ से, अथवा किसी अनुरूप संख्या से, जिसका उल्लेख पूर्ववर्ती उदाहरण में हो चुका है, गुनते हैं, और गुणनफल को एक चतुर्युग के सौर मासों की संख्या, अर्थात् ५१,८४०,००० पर भाग देते हैं। भागफल, अर्थात् ६,७४५, ७०६,७५०,७८४ अधिमास मासों की संख्या है।

इस संख्या को हम दूसरे स्थान में लिखी हुई संख्या में जोड़ देते हैं। इनका योगफल ३२६,८२७,३५०,७१०,७८४ होता है।

इस संख्या को ३० से गुनने से ६,८०४,८२०,५२१,३२३,५२० चान्द्र दिन निकलते हैं।

यह संख्या अब फिर दो भिन्न भिन्न स्थानों पर लिखी जाती है। एक स्थान पर हम इसे चतुर्युग के ऊनरात्र से, अर्थात् नागरिक और चान्द्र दिनों के अन्तर से, गुनते हैं, और गुणनफल को चतुर्युग के चान्द्र दिनों पर बाँटते हैं। इस प्रकार भागफल के रूप में हमें १५३,४१६,८६६,२४०,३२० ऊनरात्र दिन मिल जाते हैं।

इस संख्या को हम दूसरे स्थान पर लिखी हुई संख्या में से घटाते हैं। तब अवशेष ६,६५१,४०३,६५२,०८३,२०० रह जाता है। यह वर्तमान कल्प के पहले ब्रह्मा की आयु के बीते हुए दिनों की, अथवा ६०६८ कल्पों के दिनों की संख्या है, क्योंकि प्रत्येक कल्प में, १,५६०,५४१, १४२, ४०० दिन होते हैं। दिनों की इस संख्या को ७ पर बाँटने से अवशेष कुछ नहीं बचता। यह कालावधि शनिवार को समाप्त होती है, और वर्तमान कल्प का आरम्भ रविवार से होता है। इससे प्रकट होता है कि ब्रह्मा की आयु का आरम्भ भी रविवार से हुआ था।

इस वर्तमान कल्प के छः मन्वन्तर बीत चुके हैं। एक मन्वन्तर में ७२ चतुर्युग और एक चतुर्युग में ४,३२०,००० वर्ष होते हैं। इसलिए छः मन्वन्तरों में १,८६६,२४०,००० वर्ष होते हैं। इस संख्या की गिनती हम उसी

पृष्ठ २१९

विधि से करते हैं जिससे कि हमने पूर्ववर्ती उदाहरण में की है। इससे हम छः पूर्ण मन्वन्तरों के दिनों की संख्या ६८१,६६०,४८६,६०० पाते हैं। इस संख्या को ७ पर बाँटने से ६ अवशेष रहता है। इसलिए बीते हुए मन्वन्तरों की समाप्ति शुक्रवार को होती है, और सातवाँ मन्वन्तर शनिवार को आरम्भ होता है।

वर्तमान मन्वन्तर के २७ चतुर्युग बीत चुके हैं, जो, परिसंख्यान की पूर्ववर्ती विधि के अनुसार, ४२,६०३,७८०,६०० दिनों की संख्या को दिखलाते हैं। सत्ताईसवाँ चतुर्युग सोमवार को समाप्त, और अट्ठाईसवाँ मङ्गलवार को आरम्भ होता है।

वर्तमान चतुर्युग के तीन युग या ३,२४०,००० वर्ष बीत चुके हैं। ये, परिसंख्यान की पूर्ववर्ती विधि के अनुसार, १,१८३,४३८, ३५० दिनों की संख्या को दिखलाते हैं। इसलिए ये तीन युग बुधवार को समाप्त होते हैं, और कलियुग शुक्रवार को आरम्भ होता है।

इसके अनुसार, इस कल्प के बीते हुए दिनों की संख्या ७२५, ४४७,७०८,५५० है, और उन दिनों की संख्या जो ब्रह्मा की आयु के आरम्भ और वर्तमान कलियुग के आरम्भ के बीच बीत चुकी है ९,६५२,१२९,०९९,७९१,७५० है।

आर्यभट्ट के उद्धरणों पर, क्योंकि हमने उसकी पुस्तक नहीं देखी, विचार करने पर ऐसा जान पड़ता है कि वह आगे दिये ढँग से गिनती करता था:—

आर्यभट्ट की काम में लाई हुई अहर्गण की विधि।

एक चतुर्युग के दिनों की संख्या १,५७७,९१७,५०० है। कल्प के आरम्भ और कलियुग के आरम्भ के बीच का समय ७२५, ४४७,५७०,६२५ दिन है। कल्प के आरम्भ और हमारी मान-तिथि के बीच का काल ७२५,४४९,०७९,८४५ है। वर्तमान कल्प के पहले बीते हुए ब्रह्मा की आयु के दिनों की संख्या ९,६५१,४०१, ८१७,१२०,००० है।

वर्षों के दिन बनाने की यही शुद्ध विधि है, और काल के शेष सब मानों के साथ भी इसी के अनुसार व्यवहार होना चाहिए।

हम पहले ही सार्वत्रिक सौर और ऊनरात्र दिनों की गणना में याकूब इब्न तारिक की एक भूल दिखला चुके हैं। उसने एक गणना का अनुवाद भारतीय भाषा से किया था। पर उस गणना की युक्तियों को वह नहीं समझता था। इसलिए उसका यह कर्तव्य था कि वह इसकी परीक्षा करता, और इसकी विविध संख्याओं की एक दूसरे से पड़ताल करता। वह अपनी पुस्तक में अहर्गण की, अर्थात् वर्षों के दिन बनाने की विधि का भी उल्लेख करता है, परन्तु उसका वर्णन शुद्ध नहीं; क्योंकि वह कहता है:—

याकूब इब्न तारिक का दिया हुआ अहर्गण का रूप।

"वर्षों की दी हुई संख्या के मासों को उन अधिमास-मासों की संख्या से गुणन करो जो, अधिमास के प्रसिद्ध नियमों के अनुसार, प्रस्तुत समय तक बीत चुके हैं। गुणनफल को सौर मासों पर बाँटो। तब भागफल उन सम्पूर्ण अधिमास मासों की संख्या योग इसके अपूर्णाङ्क हैं जो प्रस्तुत तिथि तक बीत चुके हैं।"

यहाँ अशुद्धि इतनी प्रत्यक्ष है कि एक प्रतिलिपिकार भी इसे देख लेगा; फिर गणितज्ञ का तो कहना ही क्या जो इस विधि के अनुसार परिसंख्यान करता है; क्योंकि वह सार्वत्रिक के स्थान में आंशिक अधिमास से गुणन करता है।

इसके अतिरिक्त, याकूब अपनी पुस्तक में राशिविश्लेष की एक दूसरी और पूर्ण रूप से शुद्ध विधि का उल्लेख करता है। वह विधि यह है—"जब तुम वर्षों के मासों की संख्या मालूम कर चुको तब उनको चान्द्र मासों की संख्या से गुणन करो, और गुणनफल को सौर मासों पर विभक्त करो। भागफल अधिमास मासों की संख्या साथ ही साथ प्रस्तुत वर्षों के मासों की संख्या है।

याकूब की दी हुई एक दूसरी विधि।

"इस संख्या को तुम ३० से गुणन करते और गुणन-फल में वर्तमान मास के बीते हुए दिनों को जोड़ देते हो। इनका योगफल चान्द्र दिनों को दिखलाता है।

"यदि, इसके स्थान में, मासों की प्रथम संख्या को ३० से गुणन किया जाता, और मास के अतीत भाग को गुणनफल में जोड़ दिया जाता, तो योगफल आंशिक सौर दिन को दिखलायगा; और यदि इस संख्या का आगे परिसंख्यान पूर्ववर्ती विधि के अनुसार किया जाय, तो हमें अधिमास दिनों के साथ ही साथ सौर दिन प्राप्त होंगे।"

शेषोक्त विधि की व्याख्या।

इस गणना की कारणविवृति यह है—यदि हम सार्वत्रिक अधिमास मासों की संख्या से गुणन करें, जैसा कि हमने किया है, और गुणन-फल को सार्वत्रिक सौर मासों पर विभक्त करें, तो भागफल अधि-मास काल के उस भाग को दिखलाता है जिससे कि हमने गुणन किया है। अब, क्योंकि, चान्द्र मास सौर और अधिमास मासों का योगफल हैं, इसलिए, हम उनसे (चान्द्र मासों से) गुणन करते हैं और विभाजन वही रहता है। भागफल गुणित संख्या तथा उस संख्या का अर्थात् (चान्द्र दिनों का) योग-फल है। इसे ही हम ढूँढ़ रहे हैं। पूर्ववर्ती भाग में हम पहले ही कह चुके हैं कि चान्द्र दिनों को सार्वत्रिक ऊनरात्र दिनों से गुणन करने, और गुणनफल को सार्वत्रिक चान्द्र दिनों पर विभक्त करने से हमें ऊनरात्र दिनों का वह भाग मिलता है जिसका

पृष्ठ २२०

सम्बन्ध चान्द्र दिनों की प्रस्तुत संख्या से होता है। तथापि, कल्प के नागरिक दिन चान्द्र दिनों से ऊनरात्र दिनों की संख्या के बराबर कम हैं। अब हमारे पास जो चान्द्र दिन हैं उनका चान्द्र दिनों ऋण उनके ऊनरात्र दिनों के अनुरूप अंश के साथ वही सम्बन्ध है

जो (कल्प के) चान्द्र दिनों की सम्पूर्ण संख्या का (कल्प के) चान्द्र दिनों की सम्पूर्ण संख्या ऋण (कल्प के) ऊनरात्र दिनों की पूर्ण संख्या से है; और शेषोक्त संख्या सार्वत्रिक नागरिक दिन हैं। इसलिए, हमारे पास चान्द्र दिनों की जो संख्या है यदि हम उसे सार्वत्रिक नागरिक दिनों से गुणन करें, और गुणनफल को सार्वत्रिक चान्द्र दिनों पर विभक्त करें, तो भागफल के रूप में हमें प्रस्तुत तिथि के नागरिक दिनों की संख्या प्राप्त होगी, और इसे ही हम मालूम करना चाहते थे। (एक कल्प के) नागरिक दिनों की सम्पूर्ण संख्या से गुणन करने के स्थान में, हम ३,५०६,४८१ से गुणन करते हैं, और (एक कल्प के) चान्द्र दिनों की सम्पूर्ण संख्या पर भाग देने के स्थान में हम ३,५६२,२२० पर भाग देते हैं।

हिन्दुओं के अहर्गण की एक और विधि।

हिन्दुओं की गणना की एक और भी विधि है। वह आगे दी जाती है—"वे कल्प के बीते हुए वर्षों को १२ से गुणन करते हैं, और गुणन-फल में वर्तमान वर्ष के बीते हुए पूर्ण मास जोड़ देते हैं। योगफल को वे ६९, १२० की संख्या के ऊपर लिखते हैं,

(दीमक चाट गई)

और जो संख्या उन्हें प्राप्त होती है उसको मध्य स्थान में लिखी हुई संख्या में से घटाया जाता है। अवशेष के दुगने को वे ६५ पर बाँटते हैं। तब भागफल आंशिक अधिमासों को दिखलाता है। इस संख्या को वे उस संख्या में जोड़ते हैं जो उच्चतम स्थान में लिखी हुई है। योगफल को वे ३० से गुणन करते हैं, और गुणनफल में वर्तमान मास के बीते हुए दिन बढ़ा देते हैं। योगफल आंशिक सौर दिनों को दिखलाता है। इस संख्या को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में, एक दूसरे के नीचे, लिखा जाता है। वे निचली संख्या को ११ से गुणन

करते हैं, और गुणनफल को इसके नीचे लिखते हैं। तब वे इसे ४०३,९६३ पर भाग देते, और भागफल को मध्यवर्ती संख्या में जोड़ते हैं। योगफल को वे ७०३ पर बाँटते हैं, और भागफल आंशिक ऊनरात्र दिनों को दिखाता है। इस संख्या को वे उच्चतम स्थान में लिखी हुई संख्या में से घटाते हैं। अवशेष उन नागरिक दिनों की संख्या है जिन्हें हम मालूम करना चाहते हैं।

शेषोक्त विधि की व्याख्या।

इस परिसंख्यान की कारणविवृति यह है—यदि हम सार्वत्रिक सौर मासों को सार्वत्रिक अधिमास मासों पर विभक्त करें तो हमें एक अधिमास मास के मान रूप में ३२ $\frac{८५४४}{१५९३३}$ सौर मास मिल जाते हैं। इसका दुगना ६५ $\frac{१७०८८}{१५९३३}$ सौर मास होते हैं। यदि हम दिये हुए वर्षों के मासों के दुगने को इस संख्या पर भाग दें, तो भागफल आंशिक अधिमासों की संख्या होता है। तथापि, यदि हम पूर्णाङ्कों योग एक अपूर्णाङ्क पर भाग दें और विभक्त संख्या में से एक विशेष भाग निकालना चाहें, अवशेष केवल पूर्णाङ्कों पर विभक्त हो, और दोनों व्यवकलित अंश उन पूर्णाङ्कों के समान अंश हों जिनके साथ उनका सम्बन्ध है, तो पूर्ण विभाजक का इसके अपूर्णांश के साथ वही सम्बन्ध होगा जो विभक्त संख्या का व्यवकलित अंश के साथ है।

मान संवत् पर शेषोक्त विधि का प्रयोग।

यदि हम यह परिसंख्यान अपने मान-संवत् के लिए करें तो हमें $\frac{११२०५}{१,०३६,८००}$ का अपूर्णाङ्क मिलता है, और दोनों संख्याओं को १५ पर बाँटने से हमें $\frac{७४७}{६९१२०}$ प्राप्त होते हैं।

दुहरे अधिमासों के स्थान में यहाँ इकहरे अधिमासों से भी

गिनती करना सम्भव होगा, और उस अवस्था में अवशेष को दुगना करने की आवश्यकता न होगी। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इस विधि के आविष्कारक ने छोटी संख्याएँ प्राप्त करने के लिए आम्रेडन को अधिक पसन्द किया है; क्योंकि यदि हम इकहरे अधिमासों के साथ गिनती करें, तो हमें $\frac{८५४४}{५१८४००}$ का अपूर्णाङ्क प्राप्त होता है, जो सामान्य विभाजक के रूप में ९६ द्वारा घटाया जा सकता है। इससे गुणक के रूप में ८९ और विभाजक के रूप में ५४०० प्राप्त होते हैं। इसमें इस विधि के निकालनेवाले ने अपना चातुर्य दिखलाया है, क्योंकि उसके परिसंख्यान का हेतु आंशिक चान्द्र दिनों और लघुतर गुणकों को प्राप्त करने का सङ्कल्प है।

उस (अर्थात् ब्रह्मगुप्त) की ऊनरात्र दिनों के परिसंख्यान की विधि यह है:—

ब्रह्मगुप्त के अनुसार, ऊनरात्र दिनों के परिसंख्यान की विधि।

यदि हम सार्वत्रिक चान्द्र दिनों को सार्वत्रिक ऊनरात्र दिनों पर भाग दें, तो भागफल ६३ और एक अपूर्णाङ्क निकलता है, जो सामान्य विभाजक ४५०,००० द्वारा घटाया जा सकता है। इस प्रकार वह कालावधि जिसके पृष्ठ २२१ अन्दर एक ऊनरात्र दिन पूरा होता है ६३$\frac{५०,६६३}{५५,७३९}$ चान्द्र दिन निकलते हैं। यदि हम इस अपूर्णाङ्क को ग्यारहवें भागों में परिवर्तित कर दें, तो हमें $\frac{९}{११}$ और $\frac{५५,६४२}{५५,७३९}$ का अवशेष प्राप्त होता है, जिसको यदि कलाओं में प्रकट किया जाय तो वह ०′ ५९′ ५४″ के बराबर है।

इस अपूर्णाङ्क के एक पूर्णाङ्क के बहुत निकट होने के कारण लोग इसे तुच्छ समझकर छोड़ देते हैं, और इसके स्थान में, मोटे तौर पर,

$\frac{१०}{११}$ का उपयोग करते हैं। इसलिए, हिन्दुओं के अनुसार, एक ऊनरात्र दिन ६३$\frac{१०}{११}$ अथवा $\frac{७०३}{११}$ चान्द्र दिनों में पूर्ण होता है।

अब यदि हम ऊनरात्र दिनों की संख्या को, जो चान्द्र दिनों की संख्या के अनुरूप है, ६३$\frac{५०,६६३}{५५,७३९}$ से गुणन करें, तो गुणनफल उस संख्या से कम होगा जो हम ६३$\frac{१०}{११}$ से गुणन करने से प्राप्त करते हैं। इसलिए, यदि हम, यह मानकर कि भागफल प्रथम संख्या के समान है, चान्द्र दिनों को $\frac{७०३}{११}$ पर विभक्त करना चाहते हैं, तो चान्द्र दिनों में एक विशेषांश अवश्य ही बढ़ा लेना चाहिए, और इस अंश का परिसंख्यान उस (पुलिस-सिद्धान्त के रचयिता) ने शुद्ध रूप से नहीं, वरन् केवल लगभग तौर से किया था। क्योंकि यदि हम सार्वत्रिक ऊनरात्र दिनों को ७०३ से गुणन करें, तो गुणनफल १७,६३३,०३२,६५०,००० निकलता है, जो सार्वत्रिक चान्द्र दिनों से ग्यारह गुना से भी अधिक है। और यदि हम सार्वत्रिक चान्द्र दिनों को ११ से गुणन करें, तो गुणनफल १७,६३२, ९८९,०००,००० निकलता है। दोनों संख्याओं में ४३, ६५०,००० का अन्तर है। यदि हम सार्वत्रिक चान्द्र दिनों के ग्यारह गुना का गुणनफल इस संख्या पर विभक्त करें, तो ४०३,९६३ भागफल प्राप्त होता है।

यह वह संख्या है जिसका उपयोग इस रीति के आविष्कारक ने किया है। यदि शेषोक्त भागफल (४०३,९६३ + एक अपूर्णाङ्क) के आगे छोटा सा अवशेष न हो तो उसकी रीति बिलकुल ठीक होती। परन्तु $\frac{४०}{३८८}$ अथवा $\frac{१०}{९७}$ का अपूर्णाङ्क शेष रहता है, और यह वह संख्या है जिसे छोड़ दिया जाता है। यदि वह अपूर्णाङ्क के बिना

इस रीति की आलोचना।

इस विभांजक का उपयोग करता है, और आंशिक चान्द्र दिनों के ग्यारह गुना घात को इस पर भाग देता है, तो भागफल उतना ही अधिक बड़ा होगा जितना कि भाज्य बढ़ गया है। इस गणना की दूसरी बातों पर टीका-टिप्पणी का प्रयोजन नहीं।

अधिकांश हिन्दुओं को, अपने वर्षों की गिनती में, अधिमास का प्रयोजन होता है, इसलिए वे इस रीति को अच्छा समझते हैं। वे ऊनरात्र दिनों के परिसंख्यान और दिनों (अहर्गण) के योग की विधियों की परवा न करके, अधिमास के परिसंख्यान की विधियों का विशेष रूप से परिश्रम-पूर्वक वर्णन करते हैं। कल्प, चतुर्युग, या कलियुग के वर्षों के अधिमास मालूम करने की उनकी एक विधि यह है:—

एक कल्प, चतुर्युग या कलियुग के वर्षों के अधिमास मालूम करने की विधि।

वे वर्षों को तीन भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखते हैं। वे ऊपर की संख्या को १० से, मध्यवर्ती को २४८१ से, और निचली को ७७३९ से गुणा करते हैं। तब वे मध्यवर्ती और नीचे की संख्याओं को ९६०० पर भाग देते हैं। तब भागफल मध्यवर्ती संख्या के दिन, और नीचे की संख्या से अवम होते हैं।

इन दोनों भागफलों का योग ऊपर के स्थान में लिखी हुई संख्या में जोड़ दिया जाता है। तब यह योगफल उन पूर्ण अधिमास दिनों को दिखलाता है जो व्यतीत हो चुके हैं, और जो दूसरे दो स्थानों में रहता है उसकी संख्या वर्तमान अधिमास का अपूर्णाङ्क है। दिनों को ३० पर बाँटने से वे मास निकाल लेते हैं।

याकूब इब्न तारिक ने इस विधि का वर्णन नितान्त शुद्ध रूप से किया है। उदाहरणार्थ, हम अपने मान-वर्ष के लिए इस परिसंख्यान को लगाते हैं। मान-तिथि की घड़ी से लेकर कल्प के जितने

वर्ष व्यतीत हुए हैं उनकी संख्या १,९७२,९४८,१३२ है। इस संख्या को हम तीन भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखते हैं। ऊपर की संख्या को हम दस से गुणा करते हैं। इससे दाईं ओर इसमें एक शून्य और बढ़ जाता है। मध्यवर्ती संख्या को हम २४८१ से गुणा करते हैं और गुणनफल ४, ८९४,८८४,३१५,४९२ निकलता है। नीचे की संख्या को हम ७७३९ से गुणा करते हैं, जिसमें १५, २६८, ६४५, ५९३; ५४८ गुणनफल निकलता है। पिछली दो संख्याओं को ९६०० पर बाँटा जाता है; इससे मध्यवर्ती संख्या के लिए भागफल के रूप में ५०९, ८८३, ७८२ निकलते हैं और ८२९२ अवशेष रहता है, और निचली संख्या के लिए १,५९०,४८३,९१५ लब्धि और ९५४८ अवशेष रहता है। इन दोनों अवशेषों का योग १७, ८४० है। इस अपूर्णाङ्क (अर्थात् १ $\frac{७८४०}{९६००}$) को एक पूर्णाङ्क गिन लिया जाता है। इससे तीनों स्थानों में संख्याओं का योग २१, ८२९, ८४९,०१८ अर्थात् अधिमास दिन, योग वर्तमान अधिमास दिन (अर्थात् जो अब पूरा होनेवाला है) का $\frac{१०३}{१२०}$ दिन, हो जाता है।

मान-वर्ष पर लगाई हुई शेषोक्त विधि।

पृष्ठ२२२

इन दिनों के मास बनाने से हमें ७२७, ६६१,६३३ महीने और अट्ठाईस दिन का अवशेष प्राप्त होता है, जिसको श-द-द कहते हैं। यह चैत्रमास (जिसको मासों के अनुक्रम में छोड़ नहीं दिया जाता) के आरम्भ के बीच, और महाविषुव के क्षण के बीच का अन्तर है।

फिर, जो लब्धि हमें मध्यवर्ती संख्या के लिए मिली है उसको कल्प के वर्षों में जोड़ देने से, २,४८२,८३१,९१४ योगफल निकलता है। इस संख्या को ७ पर बाँटने से ३ अवशेष रहता है। इसलिए, प्रस्तुत वर्ष में, सूर्य मेषराशि में मङ्गलवार को प्रविष्ट हुआ है।

मध्यवर्ती और निचले स्थानों की संख्याओं के लिए जिन संख्याओं

शेषोक्त विधि को स्पष्ट करने के लिए टिप्पणी

का गुणकों के रूप में उपयोग किया जाता है उनकी व्याख्या निम्नलिखित रीति से की जाती है:—

कल्प के नागरिक दिनों को कल्प के सौर-चक्रों पर भाग देने से, हमें लब्धि रूप में दिनों की वह संख्या मिलती है जिससे एक वर्ष बनता है, अर्थात् ३६५ $\frac{१,११६,४५०,०००}{४,३२०,०००,०००}$, इस अपूर्णाङ्क को ४५०,००० के सामान्य भाजक द्वारा छोटा करने से ३६५$\frac{२४८१}{९६००}$ बन जाता है। इस अपूर्णाङ्क को ३ पर बाँटकर और भी छोटा किया जा सकता है, परन्तु लोग इसको ऐसा ही रहने देते हैं, जिससे इस पूर्णाङ्क का और इस अपूर्णाङ्क की अगली क्रिया में आनेवाले दूसरे अपूर्णाङ्कों का भाजक एक ही रहे।

सार्वत्रिक ऊनरात्र दिनों को कल्प के सौर वर्षों पर बाँटने से, लब्धि ऊनरात्र दिनों की संख्या निकलती है जिनका सम्बन्ध एक सौर वर्ष से होता है, अर्थात् ५$\frac{३,४८२,५५०,०००}{४,३२०,०००,०००}$ इस अपूर्णाङ्क को ४५०,००० के सामान्य भाजक द्वारा छोटा करने से ५$\frac{७७३९}{९६००}$ दिन निकलते हैं। यह अपूर्णाङ्क ३ पर भाग देने से और भी छोटा किया जा सकता है।

सौर और चान्द्र वर्षों के मान लगभग ३६० दिन हैं। यही बात सूर्य और चन्द्र के नागरिक वर्षों की है। पहला कुछ बड़ा होता है और दूसरा कुछ छोटा। इन मानों में से एक, चान्द्र वर्ष, का इस परिसंख्यान में प्रयोग किया गया है, और दूसरे मान, सौर वर्ष, की तलाश की जाती है। (मध्यवर्ती और निचली संख्या की)

दो लब्धियों का योगफल दोनों प्रकार के वर्षों के बीच का अन्तर है। ऊपर की संख्या का पूर्ण दिनों की संख्या से गुणन किया जाता है, और मध्यवर्ती तथा निचली संख्याओं को दोनों अपूर्णाङ्कों में से प्रत्येक के साथ गुणा किया जाता है।

यदि हम इस परिसंख्यान का संक्षेप करना चाहें, और, हिन्दुओं की तरह, हमारी इच्छा सूर्य और चाँद की मध्य गतियों को मालूम करने की न हो, तो हम मध्यवर्ती तथा निचली संख्याओं के गुणकों का आपस में योग कर देते हैं। इससे १०,२२० योगफल प्राप्त होता है।

इस विधि का सुगमीकरण।

ऊपर के स्थान के लिए हम इस संख्या में भाजक × १० = ९६,००० का घात जोड़ देते हैं। इससे $\frac{१०६,२२०}{९६००}$ प्राप्त होता है। इस अपूर्णाङ्क को छोटा करके आधा करने पर $\frac{५३११}{४८०}$ प्राप्त होते हैं।

इस परिच्छेद में हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि दिनों को ५३११ से गुणा करने से, और गुणनफल को १७२,८०० पर भाग देने से, अधिमासों की संख्या प्राप्त होती है। अब यदि हम दिनों के स्थान में वर्षों की संख्या से गुणा करें, तो गुणनफल उस गुणनफल का $\frac{१}{३६०}$ होगा जो दिनों की संख्या के साथ गुणा करने से प्राप्त होता। इसलिए, यदि हम वही लब्धि प्राप्त करना चाहते हैं जो पहले विभाजन से प्राप्त होती है, तो यह आवश्यक है कि हम उस भाजक के $\frac{१}{३६०}$ पर भाग दें जिस पर हमने पहली अवस्था में भाग दिया था, अर्थात् ४८० (क्योंकि ३६० × ४८० = १७२,८००)।

पृष्ठ २२३

वह रीति भी उसी के सदृश है जिसका पुलिस ने निर्देश किया है; "आंशिक मासों की संख्या को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। एक स्थान में इसे ११११ से गुणा करो, और गुणनफल को ६७,५०० पर भाग दो। लब्धि को दूसरे स्थान में लिखी हुई संख्या में से घटाओ, और अवशेष को ३२ पर भाग दो। लब्धि अधिमास मासों की संख्या है, और लब्धि में यदि कोई अपूर्णाङ्क हो तो वह अधिमास मास के उस अंश को दिखलाता है जो अभी बन रहा है। इस संख्या को ३० से गुणा करने और घात को ३२ पर भाग देने से, लब्धि वर्तमान अधिमास मास के पूरे दिनों और दिनों के अपूर्णाङ्कों को दिखलाता है।"

पुलिस के मतानुसार, अधिमास निकालने की एक दूसरी रीति।

इस रीति की कारणविवृति आगे लिखी जाती है:—

यदि आप एक चतुर्युग के सौर मासों पर, पुलिस के सिद्धान्तानुसार, चतुर्युग के अधिमास महीनों को भाग देंगे तो आपको लब्धि के रूप में $३२ \frac{३९,५५२}{६६,३८९}$ मिलेगा। यदि आप मासों को इस संख्या पर भाग देंगे, तो आपको चतुर्युग या कल्प के अतीतांश के पूर्ण अधिमास प्राप्त होंगे। परन्तु पुलिस, किन्हीं अपूर्णाङ्कों के बिना, केवल पूर्णाङ्कों पर ही भाग देना चाहता था। इसलिए, जैसा कि ऐसी ही एक दशा में पहले स्पष्ट किया जा चुका है, उसे भाज्य में से कुछ घटाना पड़ा था। अपने मान-वर्ष पर परिसंख्यान को लगाते समय, भाजक के रूप में, हमें $\frac{३९,५५२}{२,१६०,०००}$ प्राप्त हुआ है। इसको ३२ पर भाग देने से छोटा किया जा सकता है। इससे यह $\frac{११११}{६७,५००}$ बन जाता है।

पुलिस की रीति का समाधान।

इस गणना में, पुलिस ने, मासों के स्थान में, सौर दिनों से गिनती की है जिनमें कि तिथि निकाली जाती है। क्योंकि वह कहता है—"इस संख्या को तुम दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। एक स्थान में इसे २७१ से गुणा करो, और गुणनफल को ४,०५०,००० पर भाग दो। लब्धि को दूसरे स्थान की संख्या में से घटाओ और अवशेष को ९७६ पर भाग दो। तब लब्धि अधिमास महीनों, दिनों, और दिन के भग्नांशों की संख्या है।"

पुलिस का और उद्धरण।

वह और कहता है:—"इसका कारण यह है, कि चतुर्युग के दिनों को अधिमास मासों पर भाग देने से, तुम्हें लब्धि के रूप में ९७६ दिन और १०४,०६४ का अवशेष प्राप्त होगा। इस संख्या के लिए और भाजक के लिए सामान्य हार ३८४ हैं। उससे अपूर्णाङ्क को छोटा करके हमें २७१/२,०५०,००० दिन प्राप्त होते हैं।"

परन्तु, यहाँ मुझे प्रतिलिपिकार या अनुवादक पर सन्देह होता है, क्योंकि पुलिस जैसा विद्वान् ऐसी भूलें नहीं कर सकता था। बात यों है—

पुलिस के उद्धृत वचन की आलोचना।

जो दिन अधिमास मासों पर बाँटे जाते हैं वे आवश्यकता के तौर पर सौर दिन हैं। जैसा कि कहा जा चुका है, लब्धि में पूर्णाङ्क और अपूर्ण अङ्क हैं। हारकाङ्क और अंशाङ्क दोनों का सामान्य भाजक २४ की संख्या है। उससे अपूर्णाङ्क को छोटा करके हमें ४३१६/६२३८९ प्राप्त होते हैं।

यदि हम इस नियम को मासों पर लगायें, और अधिमास महीनों की संख्या को छोटा करके अपूर्णाङ्कों तक ले आयें तो हार ४७, ८००, ००० निकलता है। इस हार और इसके अंश दोनों

का सामान्य भाजक १६ है। उससे अपूर्णाङ्क को छोटा करने पर $\frac{२७१}{२,८००,०००}$ निकलता है।

अब यदि हम पुलिस की भाजक के रूप में ग्रहण की हुई संख्या को अभी ऊपर कहे सामान्य भाजक, अर्थात् ३८४, से गुणा करें, तो हमें गुणनफल १, ५५५, २००,०००, अर्थात् चतुर्युग के सौर दिन प्राप्त होंगे। परन्तु यह सर्वथा असम्भव है कि इस संख्या का, गणना के इस भाग में, भाजक के तौर पर उपयोग किया जाय। यदि हम, सार्वत्रिक सौर मासों को अधिमास महीनों पर भाग देकर, इस रीति का आधार ब्रह्मगुप्त के नियमों को बनाना चाहते हैं तो, उसके द्वारा प्रयुक्त रीति के अनुसार, फल अधिमास की संख्या से दुगना होगा।

ऊनरात्र दिनों के परिसंख्यान की रीति।

फिर, ऊनरात्र दिनों के परिसंख्यान के लिए एक वैसी ही रीति का प्रयोग किया जा सकता है।

आंशिक चान्द्र दिनों को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। एक स्थान में, इस संख्या को ५०, ६६३ से गुणा करो और गुणनफल को ३, ५६२, २२० पर भाग दो। लब्धि को दूसरे स्थान में लिखी संख्या में से घटाओ, और अवशेष को किसी अपूर्णाङ्क के बिना ६३ पर भाग दो।

पृष्ठ २२४

हिन्दुओं के और अधिक लम्बे विमर्श में कुछ भी लाभ नहीं, विशेषतः क्योंकि उन्हें अवम का, अर्थात् आंशिक ऊनरात्र के अवशेष का, प्रयोजन है, क्योंकि दो विभाजनों से जो अवशेष हमें प्राप्त होते हैं उनके दो भिन्न-भिन्न हार हैं।

जो राशिविश्लेष के पूर्ववर्ती नियमों को पूर्णतया जानता है वह, यदि कल्प या चतुर्युग के अतीत दिनों की एक निश्चित संख्या दी हुई हो तो, विपरीत क्रिया—संयोग—को भी पूरा कर सकेगा। परन्तु, निश्चयात्मक होने के लिए, हम यहाँ आवश्यक नियमों की पुनरावृत्ति करते हैं।

कुछ दिनों की दी हुई एक निश्चित संख्या से कालक्रमानुगत तिथि बनाने का नियम। अहर्गण का विपर्यय।

यदि दिन दिये हुए हों और हम वर्ष मालूम करना चाहें, तो दिन आवश्यक रूप से नागरिक दिन होंगे, अर्थात् चान्द्र दिनों और ऊनरात्र दिनों के बीच का अन्तर होगा। इस अन्तर (अर्थात् नागरिक दिनों) का उनके ऊनरात्र के साथ वही संबंध है जो सार्वत्रिक चान्द्र दिनों और सार्वत्रिक ऊनरात्र दिनों के बीच के अन्तर, अर्थात् १, ५७७, ९१६, ४५०, ००० का सार्वत्रिक ऊनरात्र दिनों के साथ है। शेषोक्त संख्या (अर्थात् १,५७७, ९१६,४५०,०००) को ३, ५०६, ४८१ द्वारा दरसाया गया है। यदि हम दिये हुए दिनों को ५५, ७३९ से गुणा करें और गुणनफल को ३, ५०६ पर भाग दें, तो लब्धि आंशिक ऊनरात्र दिनों को दिखलायगी। इसमें नागरिक दिनों को जोड़ने से, चान्द्र दिनों की संख्या, अर्थात् आंशिक सौर और आंशिक अधिमास दिनों का योगफल निकल आता है। इन चान्द्र दिनों का इनसे संबंध रखनेवाले अधिमास दिनों से वही सम्बन्ध है जो सार्वत्रिक सौर और अधिमास दिनों के योग, अर्थात् १६०, २९९, ९००, ००० का सार्वत्रिक अधिमास दिनों के साथ है। इस संख्या (अर्थात् १६०,२९९,९००,०००) को १७८,१११ की संख्या दिखलाती है।

यदि तुम फिर, आंशिक चान्द्र दिनों को ५३११ से गुणा करो, और गुणनफल को १७८,१११ पर भाग दो, तो लब्धि आंशिक

अधिमास दिनों की संख्या होगी। इनको चान्द्र दिनों में से घटाओ, तो अवशेष सौर दिनों की संख्या है। इस पर तुम दिनों को ३० पर भाग देकर उनके मास बनाओ, और मासों को १२ पर भाग देकर वर्ष बनाओ। यही हम मालूम करना चाहते हैं।

उदाहरणार्थ, आंशिक नागरिक दिन जो हमारे मान-वर्ष तक व्यतीत हो चुके हैं ७२०,६३५,६५१,६६३ हैं। यह संख्या दी हुई है और जो कुछ हम मालूम करना चाहते हैं वह यह है कि कितने भारतीय वर्ष और मास दिनों की इस संख्या के बराबर हैं।

मान-वर्ष पर नियम का प्रयोग।

पहले, हम इस संख्या को ५५,७३९ से गुणा करते, और गुणनफल को ३,५०६, ४८१ पर भाग देते हैं। लब्धि ११,४५५,२२४, ५७५ ऊनरात्र दिन हैं।

हम इस संख्या को नागरिक दिनों में जोड़ देते हैं। योगफल ७३२,०९१,१७६,५३८ चान्द्र दिन हैं। हम उनको ५३११ से गुणा करते हैं, और गुणनफल को १७८,१११ पर भाग देते हैं। लब्धि अधिमास दिनों की संख्या है, अर्थात् २१,८२९,८४९,०१८.

हम उनको चान्द्र दिनों में से घटाते हैं। इससे ७१०,२६१, ३२७,५२० अवशेष अर्थात् आंशिक सौर दिन प्राप्त होते हैं। हम इनको ३० पर भाग देते हैं। इसकी लब्धि २३,६७५,३७७,५८४ अर्थात् सौर मास निकलते हैं। इनको १२ पर भाग देने से, भारतीय वर्ष, अर्थात् १,९७२,९४८,१३२ निकलते हैं। जैसा कि हम किसी पूर्ववर्ती अनुच्छेद में पहले ही कह आये हैं, यह वर्षों की वही संख्या है जिससे हमारी मानतिथि बनती है।

याकूब इब्न तारिक ने इसी विषय में एक टिप्पणी लिखी है—

"दिये हुए नागरिक दिनों को सार्वत्रिक चान्द्र दिनों से गुणा करो और गुणनफल को सार्वत्रिक नागरिक दिनों पर भाग दो। लब्धि को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। एक स्थान में संख्या को सार्वत्रिक अधिमास दिनों से गुणा करो सौर गुणनफल को सार्वत्रिक चान्द्र दिनों पर भाग दो। लब्धि अधिमास महीने होंगे। इनको ३० से गुणा करो और गुणनफल को दूसरे स्थान में लिखी हुई संख्या में से घटाओ। अवशेष आंशिक सौर दिनों की संख्या है। तुम इनको आगे मासों और वर्षों में बदल दो।"

याकूब इब्न तारिक का इसी प्रयोजन के लिए दिया हुआ नियम।

इस गणना की कारण-विवृति निम्नलिखित है—

हम पहले कह चुके हैं कि दिनों की दी हुई संख्या चान्द्र दिनों और उनके ऊनरात्र के बीच का अन्तर है, जैसा कि सार्वत्रिक नागरिक दिन सार्वत्रिक चान्द्र दिनों और उनके सार्वत्रिक ऊनरात्र के बीच का अन्तर हैं। इन दोनों मानों का एक दूसरे के साथ एक रूप सम्बन्ध है। इसलिए हमें आंशिक चान्द्र दिन प्राप्त होते हैं जो दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखे हुए हैं। अब, ये सौर और अधिमास दिनों के योग-फल के बराबर हैं, जिस प्रकार कि साधारण चान्द्र दिन सार्वत्रिक सौर दिनों और सार्वत्रिक अधिमास दिनों के योग-फल के बराबर होते हैं। इसलिए आंशिक और सार्वत्रिक अधिमास दिनों का एक दूसरे के साथ वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखी हुई उन दो संख्याओं का। उन दोनों से अभिप्राय चाहे मासों से हो या दिनों से, अन्तर कुछ नहीं पड़ता।

शेषोक्त रीति का स्पष्टीकरण।

पृष्ठ २२९

आंशिक अधिमास महीनों के द्वारा आंशिक ऊनरात्र दिनों के परिसंख्यान के लिए याक़ूब का आगे लिखा नियम उसकी पुस्तक के सभी हस्तलेखों में पाया जाता है—

आंशिक ऊनरात्र दिनों के परिसंख्यान के लिए याक़ूब की रीति।

"अतीत अधिमास को, वर्तमान अधिमास के भग्नांशों सहित, सार्वत्रिक ऊनरात्र दिनों से गुणा किया जाता है, और गुणनफल को सार्वत्रिक सौर मासों पर भाग दिया जाता है। लब्धि को अधिमास में जोड़ दिया जाता है। योग-फल अतीत ऊनरात्रों की संख्या है।"

इसकी आलोचना।

मैं समझता हूँ, इस नियम से यह बात प्रकट नहीं होती कि इसके बनानेवाले को इस विषय का पूर्ण ज्ञान था, और न यही कि उसे उपमिति या परीक्षण में बहुत विश्वास था। क्योंकि, हमारी मान-तिथि तक चतुर्युग के जितने अधिमास महीने बीत चुके हैं उनकी संख्या, पुलिस के सिद्धान्तानुसार, ०,१९६, ५२५ $\frac{४४८३७}{४५०००}$ है। इस संख्या को चतुर्युग के ऊनरात्र से गुणा करने से गुणनफल ३०, ०११, ६००, ०६८, ४२६ $\frac{५१}{१२५}$ प्राप्त होता है। इस संख्या को सौर मासों पर भाग देने से ५७८, ९२७ लब्धि प्राप्त होती है। इसको अधिमास में जोड़ने से योग-फल १, ७७५, ४५२ होता है। और यह वह नहीं जो हम मालूम करना चाहते थे। इसके विपरीत, ऊनरात्र दिनों की संख्या १८, ८३५, ७०० है। इस संख्या का ३०से गुणन का गुणनफल भी वह नहीं जिसे हम मालूम करना चाहते थे। इसके विपरीत, यह ५३, २६३, ५६० है। दोनों संख्याएँ सत्य से बहुत दूर हैं।

———

तिरपनवाँ परिच्छेद

अहर्गण, अथवा समय की विशेष-विशेष तिथियों या क्षणों के लिए पंचांगों में नियत किये हुए विशेष नियमों के अनुसार वर्षों के मास बनाने पर।

जिन शाकों के पञ्चाङ्गों में दिन बनाये जाते हैं उन सब में ऐसे अब्दारम्भ नहीं होते जो समय के ऐसे क्षणों पर आते हों जब अधिमास या ऊनरात्र दैवयोग से ठीक पूरा होता है। इसलिए पञ्चाङ्गों के रचयिताओं को अधिमास और ऊनरात्र की गणना के लिए ऐसी विशेष संख्याओं का प्रयोजन होता है जिनका; यदि गणना को सुव्यवस्थित रूप से आगे चलाना है, जोड़ना या घटाना आवश्यक होता है। उनके पञ्चाङ्गों या ज्योतिष के गुटकों के अध्ययन से इन नियमों के विषय में जो कुछ भी हम सीख पाये हैं वह पाठकों की भेंट किया जाता है।

अहर्गण की रीति, जैसी कि वह विशेप तिथियों पर प्रयुक्त होती है।

पहले, हम खण्डखाद्यक के नियम का उल्लेख करते हैं, क्योंकि यह पञ्चाङ्ग सबसे अधिक विख्यात है और ज्योतिषी लोग इसको सबसे उत्तम समझते हैं।

ब्रह्मगुप्त कहता है "शककाल का वर्ष लो, उसमें से ५८७ घटाओ, अवशेष को १२ से गुणा करो, और गुणनफल में प्रस्तुत वर्ष के वे पूर्ण मास जोड़ दो जो व्यतीत हो चुके हैं। योगफल को ३० से गुणा करो, और गुणनफल में वे दिन जोड़ दो जो वर्तमान मास के बीत चुके हैं। योगफल आंशिक सौर दिनों को दिखलाता है।

खण्डखाद्यक की रीति।

"इस संख्या को तीन भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। मध्यवर्ती और निचली संख्याओं में ५ जोड़ दो, और सबसे निचली को १४, ९४५ पर भाग दो। लब्धि को मध्यवर्ती संख्या में से घटाओ, और भाग देने से जो अवशेष तुम्हें मिला है उसे छोड़ दो। मध्यवर्ती संख्या को ९७६ पर भाग दो। लब्धि पूर्ण अधिमास महीनों की संख्या है, और अवशेष वह है जो वर्तमान अधिमास महीने का व्यतीत हो चुका है।

"इन मासों को ३० से गुणा करो, और गुणन-फल को ऊपर की संख्या में जोड़ दो। योगफल आंशिक चान्द्र दिनों की संख्या है। इनको ऊपर के स्थान में रहने दो, और इसी संख्या को मध्य स्थान में लिखो। इसको ११ से गुणा करो और इसमें ४९७ जोड़ दो। इस योगफल को निचले स्थान में लिखो। तब इस संख्या को १११,५७३ पर भाग दो। लब्धि को मध्यवर्ती संख्या में से घटाओ और (भाग देने से) जो अवशेष निकला है उसे छोड़ दो। फिर, मध्यवर्ती संख्या को ७०३ पर भाग दो, तब लब्धि ऊनरात्र दिनों को, और अवशेष अवमों को दिखलायगा। ऊनरात्र दिनों को ऊपर की संख्या में से घटाओ। अवशेष नागरिक दिनों की संख्या है।"

पृष्ठ २२६

यह खण्डखाद्यक का अहर्गण है। इस संख्या को ७ पर भाग देने से, अवशेष सप्ताह के उस दिन को प्रकट करेगा जिस दिन प्रकृत तिथि होगी।

हम इस नियम का उदाहरण अपने मान-वर्ष की अवस्था में देते हैं। शककाल का अनुरूप वर्ष ६५३ है। हम उसमें से ५८७ घटाते हैं और शेष ३६ बचते हैं। हम इसका १२ × ३० के गुणनफल से गुणा करते हैं, क्योंकि तिथि मासों और दिनों से रहित है। गुणनफल १३१, ७६० अर्थात् सौर दिन हैं।

मान-वर्ष पर इस रीति का प्रयोग।

हम इस संख्या को तीन भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखते हैं। मध्यवर्ती और निचली संख्याओं में हम ५ जोड़ देते हैं, जिससे दोनों स्थानों में हमें १३१, ७६५ प्राप्त होते हैं। निचली संख्या को हम १४, ६४५ से भाग देते हैं। लब्धि ८ होती है, जिसको हम मध्यवर्ती संख्या में से घटाते हैं, और यहाँ हमें १३१, ७५७ अवशेष प्राप्त होता है। तब हम उस अवशेष की उपेक्षा कर देते हैं जो विभाजन का परिणाम स्वरूप है।

फिर, हम मध्यवर्ती संख्या को ९७६ पर भाग देते हैं। लब्धि १३४ मासों की संख्या को दिखलाती है। इसके अतिरिक्त $\frac{९७३}{९७६}$ अवशेष रहता है। मासों को ३० से गुणा करने से ४०२० गुणन-फल निकलता है। इसको हम सौर दिनों में जोड़ देते हैं। इससे हमें चान्द्र दिन, अर्थात् १३५,७८० प्राप्त होते हैं। हम इस संख्या को तीनों संख्याओं के नीचे लिखते हैं, इसको ११ से गुणा करते हैं, और गुणन-फल में ४९७ जोड़ देते हैं। इस प्रकार हमें १,४९४, ०७७ की संख्या प्राप्त होती है। हम इस संख्या को चारों संख्याओं के

नीचे लिखते हैं, और इसको १११,५७३ पर भाग देते हैं। लब्धि १३ निकलती है, और अवशेष, अर्थात् ४३,६२८ को छोड़ दिया जाता है। हम लब्धि को मध्यवर्ती संख्या में से घटाते हैं। इस प्रकार हमें १,४९४,०६४ अवशेष प्राप्त होता है। हम इसको ७०३ पर भाग देते हैं। लब्धि २१२५ होती है, और अवशेष, अर्थात् अवम, $\frac{१८९}{७०३}$। हम भाग-फल को चान्द्र दिनों में से घटाते हैं, और अवशेष १३३,६५५ निकलता है। ये नागरिक दिन हैं जिनको हम मालूम करना चाहते हैं। इनको ७ पर भाग देने से, ४ अवशेष रहता है। इसलिए मान-वर्ष के चैत्र मास की पहली बुधवार को होती है।

यज़्दजिर्द के संवत् का अब्दारम्भ इस शाके के गणनारम्भ से ११,९६८ दिन पहले होता है। इसलिए यज़्दजिर्द के संवत् के दिनों का हमारी मान-तिथि तक जोड़ १४५,६२३ दिन है। इनको फ़ारसी वर्ष और मासों पर भाग देने से हमें अनुरूप फ़ारसी तिथि के रूप में यज़्दजिर्द का संवत् ३९९, और १८ वीं इसफ़न्दार्मज़ मिलती है। अधिमास महीने के ३० दिनों के साथ पूर्ण होने के पहले, यह आवश्यक है कि अब तक पाँच घटी, अर्थात् दो घंटे बीत जायँ। फलतः, वर्ष लौंद का वर्ष है, और चैत्र वह मास है जो इसमें दो बार गिना जाता है।

एक बुरे अनुवाद के अनुसार अलअर्कन्द पञ्चाङ्ग की रीति यह है—"यदि आप अर्कन्द अर्थात् अहर्गण, जानना चाहते हैं, तो

अल-अर्कन्द नामक अरबी पुस्तक की रीति।

९० लो, इसको ६ से गुणा करो, गुणनफल में ८, और सिंध के राज्य के वर्ष, अर्थात् सफ़र मास सन् ११७ हिजरी तक का समय जोड़ो। यह सफ़र मास सन् १०९ के चैत्र मास के अनुरूप है। उस योग-फल में से ५८७ घटाओ, तब अवशेष शक के वर्षों को दिखलाता है।

एक सुगमतर रीति आगे लिखी जाती है—"यज़्दजिर्दी संवत् को लेकर उसमें से ३३ घटा दो। अवशेष शख के वर्षों को दिखलाता है। अथवा आप अर्कन्द के मूल नव्वे वर्षों के साथ भी आरम्भ कर सकते हैं। उनको ६ से गुणा करो, और गुणनफल में १४ जोड़ दो। योगफल में यज़्दजिर्दी संवत् के वर्ष जोड़ दो, और उसमें से ५८७ घटा दो। अवशेष शख के वर्षों को दिखलाता है।"

मेरा विश्वास है कि जिस शख का उल्लेख यहाँ है वह शक से अभिन्न है। परन्तु, इस गणना का परिणाम हमें शक-संवत् तक नहीं, वरन् गुप्त-संवत् तक पहुँचाता है, जिसके यहाँ दिन बनाये गये हैं। यदि अर्कन्द का कर्त्ता ६० से आरम्भ करता, उनको ६ से गुणा करता, उनमें ८ जोड़ता, जिससे उसे ५४८ प्राप्त होते, और वर्षों की बढ़ती से इस संख्या को परिवर्तित न करता, तो बात उसी परिणाम पर पहुँच जाती, और अधिक सुगम और सरल होती।

शेषोक्त रीति पर गुण-दोष-परीक्षात्मक टिप्पणियाँ।

सफ़र मास की पहली, जिसका उल्लेख शेषोक्त रीति का लेखक करता है, यज़्दजिर्द के संवत् १०३ की आठवीं दैमाह के अनुरूप है। इसलिए वह चैत्रमास को दैमाह की अमावास्या पर निर्भर ठहराता है। परन्तु, उस समय में फ़ारसी मास वास्तविक काल से आगे रहे हैं, क्योंकि (३६५ पूर्ण दिनों के पश्चात्) दिन-चतुर्थांश नहीं जोड़े गये। रचयिता के अनुसार, सिंध-राज्य के जिस संवत् का वह उल्लेख करता है वह अवश्य ही यज़्दजिर्द के संवत् के छः वर्ष पहले होना चाहिए। तदनुसार, हमारे मान-वर्ष के लिए इस संवत् के वर्ष ४०५ होंगे। ये, अर्कन्द के वर्षों अर्थात् ५४८, समेत, जिनके साथ ग्रन्थकार

पृष्ठ २२७

आरम्भ करता है, ६५३ वर्षों को शककाल का संवत् दिखलाते हैं। जिस परिमाण का उल्लेख ग्रन्थकार ने किया है उसको घटा देने से, यह गुप्तकाल के अनुरूप संवत् में परिवर्तित हो जाता है।

वियोजन या अहर्गण की इस रीति की अन्य बातें खण्डखाद्यक की रीति की बातों से, जैसा कि हमने इसका वर्णन किया है, अभिन्न हैं। कभी-कभी आपको हस्तलेख में ऐसा पाठ मिलेगा जो ९७६ के स्थान में १००० पर भाग देने का निर्देश करता है, परन्तु यह केवल हस्तलेखों की भूल है, क्योंकि ऐसी रीति का कोई आधार नहीं।

इसके आगे विजयनन्दिन् की अपने करणतिलक नामक पञ्चाङ्ग में दी हुई रीति है।

करणतिलक पञ्चाङ्ग की रीति।

शककाल के वर्ष लो, उनमें से ८८८ घटाओ, अवशेष को १२ से गुणा करो, और गुणनफल में वर्तमान वर्ष के बीते हुए पूर्ण मासों को जोड़ दो। योगफल को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। एक संख्या को ९०० से गुणा करो, गुणनफल में ६६१ जोड़ दो, और योगफल को २९२८२ पर भाग दो। लब्धि अधिमास मासों को दिखलायगी। इसको दूसरे स्थान में लिखी हुई संख्या में जोड़ दो, योगफल को ३० से गुणा करो, और गुणनफल में वर्तमान मास के बीते हुए दिन जोड़ दो। योगफल चान्द्र दिनों को दिखलायगा। इस संख्या को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। एक संख्या को ३३०० से गुणा करो, गुणनफल में ६४,१०६ जोड़ो, योगफल को २१०,९०२ से भाग दो। लब्धि ऊनरात्र दिनों को, और अवशेष अवमों को दिखलाता है। ऊनरात्र दिनों को चान्द्र दिनों में से घटाओ। मध्य रात्रि को आरम्भ मानकर गिनने से, अवशेष अहर्गण है।

अपने मान-वर्ष के उपयोग में हम इस रीति को उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं। हम शककाल के अनुरूप वर्ष ९५३ में से ८८८ घटाते हैं, जिससे शेष ६५ रह जाते हैं। वर्षों की यह संख्या ७८० वर्षों के बराबर है। हम इस संख्या को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखते हैं। एक स्थान में हम इसे ९०० से गुणा करते हैं, उसमें ६६१ जोड़ देते हैं, और योगफल को २९,२८२ पर भाग देते हैं। लब्धि २३ $\frac{२६१७५}{२९२८२}$ अधिमास देती है।

इस रीति का मान-वर्ष पर प्रयोग।

गुणक ३० है। इससे गुणित होने से, मास दिनों में परिवर्तित हो जाते हैं। परन्तु, गुणनफल को पुनः ३० से गुणा किया जाता है। भाजक ९७६ के गुणन योग अगला अपूर्णाङ्क गुणित ३० का योगफल है, जिसका फल यह है कि दोनों संख्याओं का संबंध एक ही प्रकार से है (अर्थात् दोनों दिनों को दिखलाते हैं)। फिर, इसका फल-स्वरूप मासों की जो संख्या निकलती है उसको हम उन मासों में जोड़ते हैं जिनको हम पहले मालूम कर चुके हैं। योगफल को ३० से गुणा करने से, हमें गुणनफल २४,०६० (२४, ०९० पढ़िए) अर्थात् चान्द्र दिन प्राप्त होते हैं।

हम इनको दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखते हैं। एक संख्या को हम ३३०० से गुणा करते हैं जिससे गुणनफल ७९,३९८,००० (७९,४९७,००० पढ़िए) प्राप्त होता है। इसमें ६४,१०६ (६९, ६०१ पढ़िए) बढ़ाने से योग-फल ७९,४६२,१०४ (७९,५६६,६०१ पढ़िए) प्राप्त होता है। इसको २१०,९०२ पर भाग देने से भागफल ३७६ (३०७ पढ़िए) अर्थात् ऊनरात्र दिन, और अवशेष $\frac{१६२९५२}{२१०९०२}$ $\left(\frac{२६२४७}{२१०९०२}\right.$ पढ़िए) अर्थात् अवम निकलते हैं। हम ऊनरात्र दिनों

को दूसरे स्थान में लिखे हुए चान्द्र दिनों में से घटाते हैं, और अवशेष नागरिक अहर्गण अर्थात् नागरिक दिनों की संख्या है, अर्थात् २३,६८४ (२३,७१३ पढ़िए)।

वराहमिहिर की पञ्चसिद्धान्तिका की रीति यह है—"शककाल के वर्ष लो, उनमें से ४२७. घटाओ। अवशेष को १२ से गुणा करके मासों में परिवर्तित कर दो। उस संख्या को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। एक संख्या को ७ से गुणा करो और गुणन-फल को २२८ पर भाग दो। लब्धि अधिमास महीनों की संख्या है। इनको दूसरे स्थान में लिखी हुई संख्या में जोड़ दो, योगफल को ३० से गुणा करो, और गुणनफल में वर्तमान मास के वे दिन जोड़ दो जो बीत चुके हैं। योगफल को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। निचली संख्या को ११ से गुणा करो, गुणनफल में ५१४ जोड़ो, और योगफल को ७०३ पर भाग दो। भाग-फल को ऊपर के स्थान में लिखी हुई संख्या में से घटाओ। जो अवशेष होगा वह नागरिक दिनों की संख्या है।"

पञ्चसिद्धान्तिका की रीति।

पृष्ठ २२८

वराहमिहिर कहता है कि यह यवनों के सिद्धान्त की रीति है।

अपने मान-वर्षों में से एक पर हम इस रीति का निदर्शन करते हैं। शककाल के वर्षों में से ४२७ घटाओ। अवशेष, अर्थात् ५२६ वर्ष, ६३१२ मासों के बराबर हैं। अधिमासों की अनुरूप संख्या १९३ है, और अवशेष $\frac{१९}{१६}$ इन मासों की संख्या दूसरे मासों समेत ६५०५ है, जो १९५, १५० चान्द्र दिनों के बराबर है।

मान-वर्ष पर इस रीति का प्रयोग।

इस रीति में जो संयोजन होते हैं उनका प्रयोजन समय के उन भग्नांशों के कारण है जो प्रस्तुत संवत् के गणनारम्भ से सटे रहते हैं। ७ से गुणन का प्रयोजन संख्या को सप्तम अंशों तक कम करना है।

भाजक एक अधिमास के समय के सप्तमों की संख्या है, जिसको वह ३२ मास, १७ दिन, ८ घटी, और लगभग ३४ चषक गिनता है।

फिर, हम चान्द्र दिनों को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखते हैं। निचली संख्या को हम ११ से गुणा करते हैं, और गुणनफल में ५१४ जोड़ते हैं। योगफल २,१४७,१६४ होता है। इसको ७०३ से भाग देने से ३०५४ भागफल, अर्थात् ऊनरात्र दिन, और अवशेष $\frac{२०२}{७०३}$ प्राप्त होता है। हम दिनों को दूसरे स्थान में लिखी संख्या में से घटाते हैं, जिससे अवशेष १९२,०९६, अर्थात् उस तिथि के नागरिक दिन प्राप्त होते हैं जिस पर हम इस पुस्तक के काल-गणना-सम्बन्धी परिसंख्यानों को आश्रित करते हैं।

वराहमिहिर का सिद्धान्त ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त के बहुत निकट पहुँचता है; क्योंकि यहाँ मान-तिथि के अधिमास दिनों की संख्या के अन्त का अपूर्णाङ्क $\frac{१५}{१६}$ है, परन्तु, कल्प के आदि से आरम्भ करके, जो गणनाएँ हमने की हैं उनमें हमने इसे $\frac{१०३}{१२०}$ पाया है, जोकि $\frac{१५}{१७}$ के प्रायः बराबर है।

अल-हर्कन नाम के मुसलमानी गुटके या पञ्चाङ्ग में हम गणना की वही रीति पाते हैं, परन्तु इसका प्रयोग एक दूसरे संवत् पर और आरम्भ भी एक दूसरे संवत् से किया गया है। उस संवत् का गणनारम्भ अवश्य ही यज़्दजिर्द के संवत् के ४०,०८१ (दिन)

अरबी पञ्चाङ्ग अल-हर्कन की रीति।

पीछे होता है। इस पुस्तक के अनुसार, भारतीय वर्ष का आरम्भ यज़्दजिर्द के संवत् ११० की २१ वीं दैमाह को रविवार के दिन होता है। इस रीति की परीक्षा आगे लिखे ढँग से हो सकती है—

"बहत्तर वर्ष लो, उनको १२ से गुणा करके मासों में बदल दो, जिससे गुणनफल ८६४ निकलता है। इनमें वे मास जोड़ दो जो सन् १०७ के शैबान की १ ली और उस मास की १ ली के बीच व्यतीत हुए हैं जिसमें तुम दैवयोग से हो। योगफल को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। निचली संख्या को ७ से गुणा करो और गुणनफल को २२८ पर भाग दो। लब्धि को ऊपर की संख्या में जोड़ो और योगफल को ३० से गुणा करो। गुणनफल में उन दिनों की संख्या बढ़ा दो जो उस मास के व्यतीत हो चुके हैं जिसमें कि तुम हो। इस संख्या को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। निचली संख्या में ३८ बढ़ाओ और योगफल को ११ से गुणा करो। गुणन-फल को ७०३ पर भाग दो, और लब्धि को ऊपर की संख्या में से घटाओ। ऊपर के स्थान में अवशेष नागरिक दिनों की संख्या है, और निचले स्थान का अवशेष अवमों की संख्या है। दिनों की संख्या में १ बढ़ा दो और योगफल को ७ पर भाग दो। अवशेष सप्ताह के उस दिन को दिखलाता है जिस दिन प्रस्तुत तिथि होती है।"

यह रीति तब ठीक हो सकती है जब उन बहत्तर वर्षों के मास चान्द्र होते जिनके साथ गणना आरम्भ होती है। परन्तु, वे सौर मास हैं, जिनमें लगभग सत्ताईस मास अवश्य जोड़ देने चाहिएँ, जिससे ये बहत्तर वर्ष ८६४ मासों से अधिक हो जाते हैं।

हम पुनः अपनी मान-तिथि की, अर्थात् सन् ४२२ हिजरी के प्रथम रब्बी के आरम्भ की, दशा में इस रीति का निदर्शन करते हैं।

उपर्युक्त शाबान की १ ली और शेषोक्त तिथि के बीच २६-६५ मास व्यतीत हो चुके हैं। इनको इस रीति के बनानेवाले के ग्रहण किये हुए मासों की संख्या (८६४) में बढ़ाने से योगफल ३५५-६ निकलता है। इस संख्या को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। एक को ७ से गुणो और गुणनफल को २२८ पर भाग दो। लब्धि अधि-मासों, अर्थात् १०६, को दिखलाती है। इनको दूसरे स्थान की संख्या में बढ़ा दो, तुम्हें ३६६८ योगफल प्राप्त होगा। इसे ३० से गुणा करो, और तुम्हें गुणन-फल ११०,०४० मिलेगा। इस संख्या को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। निचली संख्या में ३८ बढ़ाओ। इससे तुम्हें ११०,०७८ प्राप्त होंगे। इसे ११ से गुणा करो और गुणनफल को ७०३ पर भाग दो। लब्धि १७२२, और अवशेष २-६२, अर्थात् अवम हैं। ऊपर की संख्या में से लब्धि घटाओ, और अवशेष, १०८,३१८, नागरिक दिनों को दिखलाता है।

मान-तिथि पर इस रीति का प्रयोग।

पृष्ठ २२६

इस रीति का आगे लिखे प्रकार से संशोधन होना चाहिए— तुम्हें जानना चाहिए कि यहाँ प्रयुक्त संवत् के गणनारम्भ और तिथि के रूप यहाँ ग्रहण की हुई शाबान की पहली के बीच, २५, ६५८ दिन, अर्थात् ८७६ अरबी मास, अथवा तिहत्तर वर्ष और दो मास व्यतीत हो चुके हैं। फिर यदि हम इस संख्या में वे मास बढ़ा दें जो उस १ ली शैबान और मान-वर्ष के प्रथम रब्बी की १ ली के बीच व्यतीत हुए हैं, तो योग-फल ३५७१ प्राप्त होता है, और ये अधिमासों के साथ ३६८० मास, अर्थात् ११०, ४०० दिन होते हैं। ऊनरात्र दिनों की अनुरूप संख्या १७२७ है, और अवशेष ३१६ अवम हैं। इन दिनों को

इस रीति का संशोधन।

घटाने से अवशेष १०८, ६७३ प्राप्त होता है। यदि हम १ घटायें और अवशेष को ७ पर भाग दें, तो परिसंख्यान शुद्ध है, क्योंकि अवशेष ४ है, अर्थात्, जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, मान-तिथि का दिन बुधवार है।

मुलतान-निवासी दुर्लभ की रीति आगे लिखी जाती है—वह ८४८ वर्ष लेता है, और उनमें लौकिक काल बढ़ा देता है। योगफल शककाल है। वह उनमें से ८४५४ घटाता है, और अवशिष्ट वर्षों को मासों में बदल देता है। वह उनको वर्तमान वर्ष के अतीत मासों सहित तीन भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखता है। निचली संख्या को वह ७७ से गुणा करता है, और गुणनफल को ६६,१२० पर भाग देता है। लब्धि को वह मध्यवर्ती संख्या में से घटाता है, अवशेष को दुगना करता है, और उसमें २६ बढ़ा देता है। योगफल को वह ६५ पर भाग देता है, जिससे अधिमास प्राप्त हों। वह उनको ऊपर की संख्या में बढ़ाता है और योगफल को ३० से गुणा करता है। वह गुणन-फल को वर्तमान मास के अतीत दिनों सहित दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखता है। वह निचली संख्या को ११ से गुणा करता और गुणन-फल में ६८६ बढ़ा देता है। योगफल को वह नीचे लिखता है। वह इसको ४०३,६६३ पर भाग देता, और लब्धि को मध्यवर्ती संख्या में बढ़ाता है। वह योगफल को ७०३ पर भाग देता है। भागफल ऊनरात्र दिनों को प्रकट करता है। वह उनको ऊपर की संख्या में से घटाता है। अवशेष नागरिक अह-र्गण, अर्थात् प्रस्तुत तिथि के नागरिक दिनों का योगफल है।

मुलतान के दुर्लभ की रीति।

हम ऊपर किसी स्थल पर पहले ही इस रीति का स्थूल वर्णन कर चुके हैं। जब इसका कर्त्ता, दुर्लभ, एक विशेष तिथि के लिए

इसे ग्रहण कर चुका, तब उसने कुछ परिवर्धन किया, परन्तु इसका प्रधान भाग अपरिवर्तित ही है। किन्तु, करणसार ऐसे प्रत्येक नवाचार को घुसेड़ने का निषेध करता है जो अहर्गण की रीति में किसी दूसरी क्रिया की ओर भटक जाता है। दुर्भाग्य से पुस्तक का जो कुछ हमारे पास है वह बुरी तरह से अनुवादित है। उसमें से जो उद्धरण हम दे सकते हैं वह यह है—

वह शककाल के वर्षों में से ८२१ घटाता है। अवशेष आधार है। यह हमारे मान-वर्ष के लिए संवत् १३२ होगा। वह इस संख्या को तीन भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखता है। वह पहली संख्या को १३२ अंशों (डिग्रियों) से गुणा करता है। गुणनफल हमारी मान-तिथि के लिए १७, ४२४ की संख्या देता है। वह दूसरी संख्या को ४६ कलाओं (मिनिटों) से गुणा करता है, और गुणनफल ६०७२ प्राप्त करता है। वह तीसरी संख्या को ३४ से गुणा करता है, और गुणनफल ४४८८ प्राप्त करता है। वह इसको ५० पर भाग देता है, और लब्धि कलाओं, विपलों (सैकंडों) इत्यादि को, अर्थात् ८९′ ४६″, को दिखलाती है। तब वह ऊपर के स्थान में अंशों के योगफल में ११२ बढ़ाता, और विपलों को कलाओं में, कलाओं को अंशों में, और अंशों को चक्रों में परिवर्तित कर देता है। इस प्रकार वह ४८ चक्र, ३५८° ४१′ ४६″ प्राप्त करता है। सूर्य के मेष राशि में प्रविष्ट होने के समय यह चन्द्र की मध्यम स्थिति है।

फिर, वह चन्द्र की मध्यम स्थिति के अंशों को १२ पर भाग देता है। भागफल दिनों को दिखलाता है। भाजन के अवशेष को वह ६० से गुणा करता है, और उसमें चन्द्र के मध्यम स्थान की कलाएँ जोड़ता है। योगफल को वह १२ पर भाग देता है,

और भागफल घटियों और काल के क्षुद्रतर अंशों को दिखलाता है।

पृष्ठ २२०

इस प्रकार हमें २७° २३′ २९″, अर्थात् अधिमास दिन, प्राप्त होते हैं। निस्सन्देह यह संख्या उस अधिमास के अतीत अंश को प्रकट करती है जो इस समय बन रहा है।

जिस ढँग से अधिमास का मान मालूम किया जाता है उसके विषय में ग्रन्थकार आगे लिखी टिप्पणी करता है—

वह उस चान्द्र संख्या को जिसका उल्लेख हमने किया है, अर्थात् १३२° ४६′ ३४″ को १२ पर भाग देता है। इससे वह वर्षांश (portio anni) के रूप में ११° ३′ ५२″ ५०‴, और मासांश (portio mensis) के रूप में ०° ५५′ १९″ २४‴ १०⁗ प्राप्त करता है। शेषोक्त मासांश के द्वारा वह उस काल की संस्थिति का परिसंख्यान करता है जिसमें ३० दिन, दो वर्ष, ८ मास, १६ दिन, ४ घटा, ४५ चषक हो जाते हैं। तब वह आधार को २९ से गुणा करता है जिससे गुणनफल ३८२८ प्राप्त होता है। वह उसमें २० बढ़ा देता है और योगफल को ३६ पर भाग देता है। भागफल, अर्थात् १०६$\frac{8}{9}$, ऊनरात्र दिनों को दिखलाता है।

परन्तु, क्योंकि मैं इस रीति का कोई उचित समाधान नहीं मालूम कर सका, इसलिए मैं इसे जैसी पाता हूँ वैसी ही ज्यों की त्यों दे देता हूँ, परन्तु मैं इतना कह देना आवश्यक समझता हूँ कि ऊनरात्र दिनों की वह संख्या जो एक अकेले अधिमास के अनुरूप १५$\frac{७८८७}{१०६२२}$ है।

चौवनवाँ परिच्छेद

नक्षत्रों के मध्यम स्थानों की गिनती पर।

यदि हमें एक कल्प या चतुर्युग में नक्षत्रों के चक्रों की संख्या ज्ञात हो, और फिर हमें मालूम हो कि काल के विशेष क्षण तक कितने चक्र व्यतीत हो चुके हैं, तो हम यह भी जानते हैं कि कल्प या चतुर्युग के दिनों के सारे योगफल का चक्रों के सम्पूर्ण योगफल से वही सम्बन्ध है जो कल्प या चतुर्युग के अतीत दिनों का नाक्षत्रिक चक्रों की अनुरूप संख्या से है। सबसे अधिक प्रचलित रीति यह है—

किसी दिये हुए समय में किसी नक्षत्र के मध्यम स्थान का निश्चय करने की साधारण रीति

कल्प या चतुर्युग के अतीत दिनों को नक्षत्र के, या इसके उच्च स्थान (Apsis) के, या इसके पात (Node) के उन चक्रों से गुणा किया जाता है जो यह एक कल्प या चतुर्युग में पूरे करता है। यदि आप कल्प से गिनती करते हैं तो गुणनफल को कल्प के दिनों के सम्पूर्ण योगफल पर, और यदि आप चतुर्युग से गिनती करते हैं तो उसके दिनों के योगफल पर भाग दिया जाता है। भागफल पूर्ण कालचक्रों को दिखलाता है। परन्तु इनका प्रयोजन न होने के कारण इनको छोड़ दिया जाता है। भाग देने से जो अवशेष प्राप्त होता है उसको १२ से गुणा किया जाता है और गुणनफल को

कल्प या चतुर्युग के दिनों के सम्पूर्ण योगफल पर, जिस पर कि हम पहले एक बार भाग दे चुके हैं, भाग दिया जाता है। भागफल क्रान्तिमण्डल की राशियों को दिखलाता है। इस विभाजन के अवशेष को ३० से गुणा किया जाता है और गुणनफल को उसी भाजक पर भाग दिया जाता है। भागफल अंशों को दिखलाता है। इस विभाजन के अवशेष को ६० से गुणा किया जाता है, और उसी भाजक पर भाग दिया जाता है। लब्धि कलाओं को दिखलाती है।

यदि हम विपल और क्षुद्रतर मूल्य मालूम करना चाहते हैं तो इस प्रकार के परिसंख्यान को आगे जारी रक्खा जा सकता है। भागफल उस नक्षत्र के स्थान को उसकी मध्यम गति के अनुसार, या उस उच्च स्थान या उस पात के स्थान को दिखलाता है जिसको हम मालूम करना चाहते थे।

पुलिस ने भी इसी का उल्लेख किया है, परन्तु उसकी रीति, जैसा कि आगे लिखा जाता है, भिन्न है—काल के नियत क्षण तक व्यतीत हुए पूर्ण कालचक्रों को मालूम करने के पश्चात्, वह अवशेष को १३१, ४९३, १५० पर भाग देता है। भागफल क्रान्ति-मण्डल की मध्यम राशियों को दिखलाता है।

इसी प्रयोजन के लिए पुलिस की रीति।

"अवशेष को ४, ३८३, १०५ पर भाग दिया जाता है। लब्धि अंशों को दिखलाती है। अवशेष के चौगुने को २९२,२०७ पर भाग दिया जाता है। भागफल कलाओं को प्रकट करता है। अवशेष को ६० से गुणा किया जाता है और गुणनफल को शेषोक्त भाजक पर भाग दिया जाता है। लब्धि विपलों को दिखलाती है।

"इस गणना को आगे जारी रक्खा जा सकता है जिससे तृतीयांश, चतुर्थांश, और क्षुद्र मूल्य प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार

मालूम किया हुआ भागफल उस नक्षत्र का मध्यम स्थान है जिसको हम मालूम करना चाहते हैं।"

सत्य तो यह है कि पुलिस कालचक्रों के अवशेष को १२ से गुणा करने और गुणनफल को चतुर्युग के दिनों पर भाग देने पर विवश था, क्योंकि उसका सारा परिसंख्यान चतुर्युग पर अवलम्बित है। परन्तु ऐसा करने के स्थान में, उसने उस भागफल पर भाग दिया जो आपको उस दशा में प्राप्त होता है यदि आप चतुर्युग के दिनों की संख्या को १२ पर भाग देते हों। यह भागफल वह प्रथम संख्या है जिसका वह उल्लेख करता है, अर्थात् १३१, ४९३, १५०; फिर, वह क्रान्तिमण्डल की राशियों के अवशेष को ३० से गुणा करने, और गुणनफल को प्रथम भाजक से भाग देने पर विवश था; परन्तु ऐसा करने के स्थान में, उसने उस लब्धि पर भाग दिया जो आपको उस दशा में प्राप्त होगी यदि आप प्रथम संख्या को ३० पर भाग देंगे। यह भागफल दूसरी संख्या अर्थात् ४, ३८३, १०५ है।

इसका स्पष्टीकरण।

उसी उपमा के अनुसार, वह अंशों के अवशेष को उस लब्धि पर भाग देना चाहता था जो आपको उस दशा में प्राप्त होगी यदि आप दूसरी संख्या को ६० पर भाग देंगे। परन्तु, यह भाग देकर उसने भागफल के रूप में ७३, ०५१ और अवशेष ३/४ प्राप्त किया। इस-लिए उसने सारे को ४ गुणा किया, ताकि अपूर्णाङ्कों के पूर्णाङ्क बन जायँ। इसी कारण वह अगले अवशेष को ४ से गुणा करता है; परन्तु, जैसा कि दिखलाया जा चुका है, जब उसे पूर्णाङ्क प्राप्त न हुए, तब उसने फिर ६० से गुणा कर दिया। यदि हम ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्तानुसार इस रीति का प्रयोग कल्प पर करें, तो प्रथम संख्या, जिस पर कालचक्रों के अवशेष को भाग

पृष्ठ २३१

दिया जाता है, १३१, ४६३, ०३७, ५०० होती है। दूसरी संख्या, जिस पर क्रान्तिमण्डल की राशियों के अवशेष को भाग दिया जाता है, ४, ३८३, १०१, २५० है। तीसरी संख्या, जिस पर अंशों के अवशेष को भाग दिया जाता है, ७३, ०५१, ६८७ है। जो अवशेष इस भाग देने से हमें प्राप्त होता है उसमें $\frac{1}{2}$ का अपूर्णाङ्क है। इसलिए हम इस संख्या का दुगना, अर्थात् १४६, १०३, ३७५, लेते हैं और इस पर कलाओं के अवशेष के दुगने को भाग देते हैं।

परन्तु ब्रह्मगुप्त कल्प और चतुर्युग के द्वारा गिनती नहीं करता, क्योंकि उनके दिनों की संख्याएँ बहुत बड़ी हैं, किन्तु गिनती में सुभीते के लिए वह कलियुग से गिनना उनसे अच्छा समझता है। कलियुग की निश्चित तिथि पर अहर्गण की पूर्ववर्ती रीति का प्रयोग करते हुए, हम इसके दिनों की संख्या को कल्प के नक्षत्रचक्रों से गुणा करते हैं। गुणनफल में हम आधार (Basis) अर्थात् बाक़ी के वे कालचक्र बढ़ा देते हैं जो कलियुग के आरम्भ में उस नक्षत्र के थे। हम योगफल को कलियुग के नागरिक दिनों पर, अर्थात् १५७,७६१,६४५ पर भाग देते हैं। भागफल नक्षत्र के उन अपूर्ण चक्रों को दिखलाता है जो छोड़ दिये जाते हैं।

अल्पतर संख्याएँ प्राप्त करने के लिए ब्रह्मगुप्त इस रीति का प्रयोग कलियुग पर करता है।

शेष का परिसंख्यान हम उपर्युक्त रीति से करते हैं, और उससे हमें नक्षत्र की मध्यम स्थिति मालूम हो जाती है।

एकहरे नक्षत्रों के लिए अत्र-निर्दिष्ट आधार ये हैं—

मङ्गल के लिए, ४,३०८,७६८,०००

बुध के लिए, ४,२८८, ८६६,०००

बृहस्पति के लिए, ४,३१३,५२०,०००

शुक्र के लिए, ४,३०४,४४८,०००
शनि के लिए, ४,३०५,३१२,०००
सूर्य के उच्च स्थान के लिए, ९३३,१२०,०००
चन्द्र के उच्च स्थान के लिए, १,५०५,९५२,०००
राहु के लिए, १,८३८,५९२,०००

उसी क्षण, अर्थात् कलियुग के आरम्भ में, सूर्य और चन्द्र अपनी मध्यम गति के अनुसार मेषराशि के ०° में थे, और अधिमास का या ऊनरात्र दिनों का बना न कोई योग था और न कोई ऋण।

उपर्युक्त पञ्चाङ्गों में हम आगे लिखी रीति पाते हैं--अहर्गण को, अर्थात् तिथि के दिनों के योगफल को, प्रत्येक नक्षत्र के लिए यथाक्रमेण, एक निश्चित संख्या से गुणा किया जाता है, और गुणन-फल को दूसरी संख्या पर भाग दिया जाता है। भागफल, मध्यम गति के अनुसार, पूर्ण चक्रों और चक्रों के अपूर्णाङ्कों को दिखलाता है।

खण्डखाद्यक, करणतिलक और करणसार की रीतियाँ।

कभी-कभी केवल इसी गुणन और विभाजन से परिसंख्यान पूर्ण हो जाता है। कभी-कभी पूर्ण फल प्राप्त करने के लिए, आप तिथि के दिनों को, या तो ज्यों के त्यों, या किसी दूसरी संख्या से गुणित होकर, एक बार फिर एक निर्दिष्ट संख्या पर भाग देने पर विवश होते हैं। तब भागफल को पहले स्थान में प्राप्त किये फल के साथ अवश्य जोड़ देना चाहिए। कभी कभी, नियत संख्याओं को, उदाहरणार्थ, आधार के रूप में, ग्रहण किया जाता है, जिनका इस प्रयोजन के लिए जोड़ना या घटाना आवश्यक होता है, ताकि संवत् के आरम्भ के समय मध्यम गति मेष राशि के ०° के साथ आरम्भ होती गिनी जाय। यह खण्डखाद्यक और करणतिलक नामक पुस्तकों की रीति है। परन्तु करणसार का रचयिता महाविषुव के लिए नक्षत्रों के

मध्यम स्थानों का परिसंख्यान करता है, और इसी घड़ी से अहर्गण को गिनता है। परन्तु ये रीतियाँ बड़ी सूक्ष्म हैं, और वे इतनी बहुसंख्यक हैं कि उनमें से कोई एक भी विशेष रूप से प्रामाण्य नहीं हो पाई। इसलिए हम उनको यहाँ देने से बचते हैं, क्योंकि इसमें समय बहुत लगेगा और लाभ कुछ भी न होगा।

नक्षत्रों के मध्यम स्थानों के परिसंख्यान और ऐसी ही गणनाओं की दूसरी रीतियों का प्रस्तुत पुस्तक के विषय के साथ कुछ भी संबंध नहीं।

पचपनवाँ परिच्छेद

नक्षत्रों के क्रम, उनकी दूरियों, और परिमाण पर।

लोकों का वर्णन करते समय, हम विष्णुपुराण से और पतञ्जलि के भाष्य से एक अवतरण दे चुके हैं, जिसके अनुसार सूर्य का स्थान नक्षत्रों के क्रम में चन्द्र के स्थान के नीचे है। यह हिन्दुओं का परम्परागत मत है। मत्स्यपुराण के आगे लिखे वचन की विशेष रूप से तुलना कीजिए—

सूर्य्य के चन्द्रमा के नीचे होने पर परम्परागत मत।

"पृथ्वी से आकाश का अन्तर पृथ्वी के व्यासार्ध के बराबर है। सूर्य सब नक्षत्रों से नीचे है। उसके ऊपर चन्द्रमा है, और चन्द्रमा के ऊपर चान्द्र स्थान (राशियाँ) और उनकी तारकाएँ हैं। उनके ऊपर बुध है, फिर आगे शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, सप्तर्षि, और उनके ऊपर ध्रुव है। ध्रुव आकाश से सम्बद्ध है। मनुष्य तारकाओं की गिनती नहीं कर सकता। जो लोग इस मत का खण्डन करते हैं वे यह मानते हैं कि जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में दीपक अदृश्य हो जाता है उसी प्रकार ग्रहयुति के समय चन्द्रमा को सूर्य छिपा लेता है और जितना वह सूर्य से अधिक दूर हटता है उतना ही अधिक वह दृश्य होता जाता है।"

अब हम सूर्य, चन्द्र, और तारकाओं के सम्बन्ध में इस सम्प्रदाय की पुस्तकों से कुछ अवतरण देते हैं और हम इसके साथ

ज्योतिषियों के मतों को जोड़ देंगे, यद्यपि इन मतों का हमें बहुत ही निर्बल सा ज्ञान है।

वायुपुराण कहता है—"सूर्य का आकार वर्तुल और प्रकृति अग्निमय है। उसकी १००० किरणें हैं जिनके द्वारा वह जल को आकर्षित करता है। इनमें से ४०० वर्षा के लिए, ३०० हिम के लिए, और ३०० वायु के लिए हैं।"

ज्योतिष की प्रचलित भावनाएँ। पृष्ठ २३२ वायुपुराण के अवतरण

एक दूसरे वचन में वह पुस्तक कहती है—"उन (किरणों) में से कुछ का प्रयोजन यह है कि देवगण परमानन्द में रहें; दूसरी इस प्रयोजन के लिए हैं कि मनुष्य सुख से रहें, और दूसरी पितरों के लिए नियत हैं।"

एक दूसरे वचन में वायुपुराण का रचयिता सूर्य की किरणों को वर्ष की छः ऋतुओं पर बाँटता है, और कहता है—"सूर्य पृथ्वी को वर्ष के उस तृतीयांश में ३०० किरणों से प्रकाशित करता है जो मीन राशि के ०° से आरम्भ होता है; वह उसके अगले तृतीयांश में ४०० किरणों से वर्षा करता है, और वह अवशिष्ट तृतीय में ३०० किरणों से शीत और हिम उत्पन्न करता है।"

उसी पुस्तक का एक दूसरा वचन इस प्रकार है—"सूर्य की किरणें और वायु समुद्र से पानी उठाकर सूर्य में ले जाती हैं। अब, यदि सूर्य से पानी गिरता तो यह उष्ण होता। इसलिए सूर्य पानी को चाँद के सुपुर्द कर देता है, ताकि यह ठण्डा होकर चाँद से गिरे, और इस प्रकार संसार में नवजीवन का सञ्चार करे।"

एक और वचन—"सूर्य का ताप और उसका प्रकाश अग्नि के ताप और प्रकाश का चतुर्थांश है। उत्तर में, सूर्य रात्रि के समय जल में गिर पड़ता है; इसलिए वह लाल हो जाता है।"

एक और वचन—"आदि में पृथ्वी, जल, वायु और आकाश था। तब ब्रह्मा ने पृथ्वी के नीचे चिनगारियाँ देखीं। उसने उनको लाकर तीन भागों में विभक्त किया। उनका तृतीयांश साधारण अग्नि है, जिसको लकड़ी का प्रयोजन होता है और जो पानी से बुझ जाती है। दूसरा तृतीयांश सूर्य है, और अन्तिम तृतीयांश बिजली है। जन्तुओं में भी आग है जो पानी से नहीं बुझ सकती। सूर्य जल को आकर्षित करता है, बिजली वर्षा में चमकती है, परन्तु जन्तुओं के भीतर की अग्नि उन आर्द्र पदार्थों में बँटी हुई है जिनसे वे अपना पालन-पोषण करते हैं।"

हिन्दुओं का ऐसा विश्वास जान पड़ता है कि आकाशस्थ पिण्ड भाफ से अपना पालन-पोषण करते हैं। इसको अरस्तू भी कुछ लोगों का सिद्धान्त बताता है। इस प्रकार वायुपुराण का रचयिता व्याख्या करता है कि "सूर्य चन्द्रमा और तारकाओं का पोषण करता है। यदि सूर्य न होता, तो न कोई तारका होती, न कोई देवदूत होता और न कोई मनुष्य होता।"

तारकाओं के स्वरूप पर।

सभी तारकाओं के पिण्डों के विषय में हिन्दुओं का विश्वास है कि उनका आकार वर्तुल और तत्त्व जलमय है, और वे चमकते नहीं; ऊपर सूर्य अग्निमय तत्त्व का है, स्वतः प्रकाशमान है, और केवल उस दशा में जब दूसरे तारे उसके सामने होते हैं वह उनको प्रकाशित करता है। वे, चक्षु की दृष्टि के अनुसार, तारकाओं में ऐसे तेजामय पिण्डों को भी गिनते हैं जो वास्तव में तारकाएँ नहीं; परन्तु ऐसे प्रकाश हैं जिनमें उन मनुष्यों का रूपान्तर हो गया है जिनको ईश्वर से शाश्वत पुरस्कार मिला है, और जो बिल्लौरी सिंहासनों पर आकाश की ऊँचाई में रहते हैं।

विष्णुधर्म्म कहता है—"तारकाएँ अग्निमय हैं और सूर्य की रश्मियाँ रात्रि के समय उन्हें प्रकाशित करती हैं। जिन लोगों ने अपने पुण्य कर्मों से उस उँचाई में स्थान प्राप्त किया है वे वहाँ अपने सिंहासनों पर बैठते हैं, और, जब वे चमक रहे होते हैं तब वे तारकाओं में गिने जाते हैं।"

विष्णुधर्म से अवतरण।

सब नक्षत्र 'तारा' कहलाते हैं। यह शब्द 'तरण' अर्थात् पार उतरना से व्युत्पन्न हुआ है। भाव यह है कि वे महात्मा इस पामर जगत् से पार उतर गये हैं और अपवर्ग को प्राप्त हुए हैं, और तारकाएँ वर्तुलाकार गति से आकाश में से लाँघती हैं। नक्षत्र शब्द केवल चान्द्र स्थानों के तारों के लिए प्रयुक्त होता है। परन्तु ये सब स्थिर तारे कहलाते हैं, इसलिए नक्षत्र शब्द का प्रयोग सभी स्थिर तारों के लिए भी होता है; क्योंकि इसका अर्थ है न बढ़ता हुआ और न घटता हुआ। मैं अपने तौर पर तो यह समझता हूँ कि इस बढ़ने और घटने का सङ्केत उनकी संख्या और एक के दूसरे से अन्तरों की ओर है, परन्तु शेषोक्त पुस्तक (विष्णुधर्म) का रचयिता इसको उनके प्रकाश के साथ जोड़ता है। क्योंकि वह कहता है कि "ज्यों-ज्यों चन्द्रमा बढ़ता और घटता है।"

फिर, उसी पुस्तक में एक वचन है जिसमें मार्कण्डेय कहता है—"जो तारे कल्प की समाप्ति के पूर्व नष्ट नहीं हो जाते वे एक निखर्व अर्थात् १००,०००,०००,००० के बराबर हैं। जो तारे कल्प की समाप्ति के पहले ही गिर पड़ते हैं उनकी संख्या अज्ञात है। इसे केवल वही जान सकता है जो कल्प भर उँचाई में रहता है।"

वज्र बोला—"हे मार्कण्डेय, तू छः कल्प जीता रहा है। यह तेरा सातवाँ कल्प है। इसलिए तू उनको क्यों नहीं जानता ?"

उसने उत्तर दिया—"यदि वे एक ही अवस्था में रहते अर्थात् जब तक उनका अस्तित्व है तब तक वे न बदलते, तो मैं उनसे अनभिज्ञ न होता। परन्तु, वे सतत रूप से किसी एक धर्मात्मा पुरुष को ऊपर उठाते और दूसरे को नीचे पृथ्वी पर लाते हैं। इसलिए मैं उनको अपनी स्मृति में नहीं रखता।"

सूर्य और चन्द्र और उनकी छायाओं के प्रतिबिम्बों के विषय में मत्स्यपुराण कहता है—"सूर्य के पिण्ड का व्यास ९००० योजन है; चन्द्रमा का व्यास इससे दुगना है, और उच्च-स्थान (Apsis) इतना है जितने कि ये दोनों मिलकर होते हैं"।

लोकों के व्यासों पर।

वायुपुराण में भी यही बात है, सिवाय इसके कि उच्च स्थान के विषय में यह पुराण कहता है कि जब यह सूर्य के साथ होता है तब यह सूर्य के बराबर होता है, और जब यह चन्द्रमा के साथ होता है तब यह चन्द्रमा के बराबर होता है।

एक दूसरा ग्रन्थकार कहता है—"उच्चस्थान ५०,००० योजन है।"

लोकों के व्यासों के विषय में मत्स्यपुराण कहता है—"शुक्र की परिधि चन्द्र की परिधि का सोलहवाँ भाग है, बृहस्पति की परिधि शुक्र की परिधि की तीन-चौथाई; शनि या मङ्गल की परिधि बृहस्पति की परिधि की तीन-चौथाई, और बुध की मङ्गल की परिधि की तीन-चौथाई है।"

पृष्ठ २३३

यही कथन वायुपुराण में भी मिलता है।

वही दोनों पुस्तकें बड़े-बड़े स्थिर तारों की परिधि बुध की परिधि

के समान ठहराती हैं। इससे अगली छोटी श्रेणी की परिधि ५०० योजन, और उससे अगली श्रेणियों की ४००, ३०० और २०० हैं।

स्थिर तारकाओं की परिधि पर। परन्तु १५० योजन से कम परिधिवाला कोई भी स्थिर तारा नहीं।

यह तो हुआ वायुपुराण का कथन। परन्तु मत्स्यपुराण कहता है—"अगली श्रेणियों की परिधियाँ ४००, ३००, २००, और १०० योजन हैं। परन्तु आधे योजन से कम परिधिवाला कोई स्थिर तारा नहीं।"

परन्तु शेषोक्त कथन मुझे सन्दिग्ध देख पड़ता है, और कदाचित् हस्तलेख में दोष है।

विष्णुधर्म्म का रचयिता, मार्कण्डेय के शब्द सुनाता हुआ, कहता है—"अभिजित, गिरता हुआ गरुड़; आर्द्रा; रोहिणी या अलदबरान; पुनर्वसु, यमजों के दो सिर; पुष्य; खेती, अगस्त्य, सप्तर्षि, वायु का स्वामी, अहिर्बुध्न्य का स्वामी, और वसिष्ठ का स्वामी, इनमें से प्रत्येक तारे की परिधि पाँच योजन है। शेष सब तारकाओं में से प्रत्येक की परिधि केवल चार योजन है। मुझे उन तारों का ज्ञान नहीं जिनका अन्तर अपरिमेय है। उनकी परिधि चार योजन और दो कुरोह अर्थात् दो मीलों के बीच है। जिनकी परिधि दो कुरोह से कम है उनको केवल देव ही देखते हैं मनुष्य नहीं।"

तारकाओं के आयतन के विषय में हिन्दुओं का आगे लिखा सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त किस प्रामाण्य पुस्तक या व्यक्ति का है, इसका पता नहीं चलता; "सूर्य और चन्द्रमा के व्यासों में से प्रत्येक ६७ योजन है; उच्च स्थान (Apsis) का व्यास १०० है; शुक्र का १०, बृहस्पति का ६, शनि का ८, मङ्गल का ७, बुध का ७।"

इन विषयों के सम्बन्ध में हिन्दुओं के गड़बड़ मतों का हम केवल इतना ही ज्ञान प्राप्त कर सके हैं। अब हम हिन्दू ज्योतिषियों के मतों को लेते हैं जिनके साथ तारकाओं के क्रम तथा अन्य बातों में हम सहमत हैं; अर्थात् सूर्य लोकों का मध्य है, शनि और चन्द्रमा उनके दो सिरे हैं, और स्थिर तारे लोकों के ऊपर हैं। इनमें से कुछ बातों का उल्लेख पूर्ववर्ती परिच्छेदों में पहले ही हो चुका है।

इन्हीं विषयों पर हिन्दू ज्योतिषियों के मत।

वराहमिहिर संहिता नामक पुस्तक में कहता है—"चन्द्रमा सदा सूर्य के नीचे होता है। सूर्य उस पर रश्मियाँ डालता है और उसके आधे पिण्ड को आलोकित करता है, उसका दूसरा अर्द्धभाग, धूप में रक्खी हुई वटलोही के सदृश, अन्धकार और छाया से ढँका रहता है। जो अर्धभाग सूर्य के सामने होता है वह प्रकाशमान, और जो अर्धभाग उसके सामने नहीं होता वह अन्धकारावृत रहता है। चन्द्रमा अपने तत्त्व में जलमय है, इसलिए उस पर जो किरणें पड़ती हैं वे इस प्रकार प्रतिबिम्बित होती हैं मानों जल और दर्पण से दीवार की ओर प्रतिबिम्बित हो रही हों। यदि चन्द्रमा की सूर्य के साथ युति (अमावास्या) हो, तो उसका शुक्ल भाग सूर्य की ओर और कृष्ण भाग हमारी ओर होता है। तब ज्यों ज्यों सूर्य चन्द्रमा से दूर होता जाता है, शुक्ल भाग धीरे-धीरे हमारी ओर नीचे डूबता जाता है।"

वराहमिहिर-संहिता अध्याय चार श्लोक १—३ से अवतरण।

हिन्दू धर्म्म-पण्डितों में से, और इससे भी अधिक उनके ज्योतिषियों में से प्रत्येक शिक्षित मनुष्य का वास्तव में यह विश्वास है कि चन्द्रमा सूर्य के ही नहीं, वरन् सभी लोकों के नीचे है।

तारकाओं के अन्तरों के विषय में हमारे पास केवल वही ऐतिह्य हैं जिनका उल्लेख याकूब इब्न तारिक ने अपनी पुस्तक "मण्डलों

की रचना" ترکیب الافلاک में किया है। उसने अपनी यह जानकारी उस सुविख्यात हिन्दू विद्वान् से प्राप्त की थी जो सन् १६१ हिजरी में एक दूतसमूह के साथ बग़दाद आया था। पहले वह एक माप-संबंधी आवेदन देता है—"एक उँगली एक दूसरे के पार्श्व में रक्खे हुए जौ के छः दानों के बराबर है। एक बाँह (गज़) चौबीस उँगलियों के बराबर है। एक फ़र्सख १६,००० गज़ों के बराबर है।"

तारकाओं के अन्तरों पर याकूब इब्न तारिक की सम्मति।

यहाँ हमें यह जानना चाहिए कि हिन्दू नहीं जानते कि फ़र्सख, जैसा कि हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं, आधे योजन के बराबर है।

फिर, याकूब कहता है—"पृथ्वी का व्यास २१०० फ़र्सख, इसकी परिधि ६५९६ $\frac{९}{२५}$ फ़र्सख है।"

इस आधार पर उसने लोकों के अन्तरों का परिसंख्यान किया है जैसा कि हम अगली तालिका में दिखलाते हैं।

परन्तु, पृथ्वी के डील के विषय में इस कथन के साथ सामान्यतः सभी हिन्दू सहमत नहीं। इस प्रकार, उदाहरणार्थ, पुलिस इसका व्यास १६०० योजन, और इसकी परिधि ५०२६ $\frac{१४}{२५}$ योजन गिनता है, परन्तु ब्रह्मगुप्त व्यास को १५८१ योजन और परिधि को ५००० योजन गिनता है।

उसी विषय पर पुलिस और ब्रह्मगुप्त का मत।

यदि हम इन संख्याओं को दुगना करें तो वे याकूब की संख्याओं के बराबर होनी चाहिएँ; परन्तु ऐसा नहीं होता। अब गज़ और मील, हिन्दुओं के और हमारे, दोनों के, माप के अनुसार, यथाक्रम अभिन्न हैं। हमारे परिसंख्यान के अनुसार पृथ्वी का व्यासार्ध ३१८४ मील है। अपने देश की रीति के अनुसार १ फ़र्सख = ३ मील गिनते हुए, हमें ६७२८ फ़र्सख प्राप्त होते हैं; और

याक़ूब के उल्लेखानुसार, १ फ़र्संख = १६००० गज़ गिनते हुए, हमें ५०४६ फ़र्संख प्राप्त होते हैं। १ योजन = ३२,००० गज़ गिनकर, हमें २५२३ योजन प्राप्त होते हैं।

पृष्ठ २३४

याक़ूब इब्न तारिक के अनुसार, पृथ्वी के मध्य से लोकों के अन्तर और उनके व्यास।

आगे दी हुई तालिका याक़ूब इब्न तारिक की पुस्तक से ली गई है:—.

लोक	पृथ्वी के मध्य से उनके अन्तर, और उनके व्यास।	काल और देश के अनुसार बदलनेवाले, फ़र्संखों में गिने हुए, १ फ़र्संख = १६००० गज़, अन्तरों के रूढ़ माप।	उनके एकरूप माप, पृथ्वी के व्यासार्ध = १ के आधार पर।
	पृथ्वी का व्यासार्ध	१,०५०	१
	छोटे से छोटा अंतर	३७,५००	३५ $\frac{५}{७}$
चन्द्रमा	मध्यम अन्तर	४८,५००	४६ $\frac{४}{२१}$
	बड़े से बड़ा अन्तर	५९,०००	५६ $\frac{४}{२१}$
	चन्द्रमा का व्यास	५,०००	४ $\frac{१६}{२१}$
	अल्पतम अन्तर	६४,०००	६० $\frac{२०}{२१}$
बुध	मध्यम अन्तर	१६४,०००	१५६ $\frac{४}{२१}$
	महत्तम अन्तर	२६४,०००	२५१ $\frac{३}{७}$
	बुध का व्यास	५,०००	४ $\frac{१६}{२१}$

लोक	पृथ्वी के मध्य से उनके अन्तर, और उनके व्यास।	काल और देश के अनुसार बदलनेवाले, फ़र्संखों में गिने हुए, १ फ़र्संख = १६००० गज़, अन्तरों के रूढ़ माप।	उनके एकरूप माप, पृथ्वी के व्यासार्ध = १ के आधार पर।
शुक्र	अल्पतम अन्तर	२६-६,०००	२५६ ४/२१
	मध्यम अन्तर	७०६,५००	६७५ ५/७
	महत्तम अन्तर	१,१५०,०००	१०६५ ५/२१
	शुक्र का व्यास	२०,०००	१६ १/२१
सूर्य	लघुतम अन्तर	१,१७०,०००	१,११४ २/७
	मध्यम अन्तर	१,६६०,०००	१,६०६ ११/२१
	महत्तम अन्तर	२,२१०,०००	२,१०५ १६/२१
पृष्ठ २२५	सूर्य का व्यास	२०,०००	१६ १/२१
मंगल	लघुतम अन्तर	२,२३०,०००	२,१२३ १७/२१
	मध्यम अन्तर	५,३१५,०००	५,०६१ १६/२१
	महत्तम अन्तर	८,४००,०००	८,०००
	मंगल का व्यास	२०,०००	१६ १/२१
बृहस्पति	लघुतम अन्तर	८,४२०,०००	८,०१६ १/२१
	मध्यम अन्तर	११,४१०,०००	१०,८६६ २/३
	महत्तम अन्तर	१४,४००,०००	१३,७१४ २/७

लोक	पृथ्वी के मध्य से उनके अन्तर, और उनके व्यास।	काल और देश के अनुसार बदलनेवाले, फ़र्सख़ों में गिने हुए, १ फ़र्सख़ = १६००० गज़, अन्तरों के रूढ़ माप।	उनके एकरूप माप, पृथ्वी के व्यासार्ध = १ के आधार पर।
	बृहस्पति का व्यास	२०,०००	१९ १/२१
शनि	लघुतम अन्तर	१४,४२०,०००	१३,७३३ १/३
शनि	मध्यम अन्तर	१६,२२०,०००	१५,४४७ १३/२१
शनि	महत्तम अन्तर	१८,०२०,०००	१७,१६१ १९/२१
	शनि का व्यास	२०,०००	१९ १/२१
राशि-चक्र	वाहर का व्यासार्ध	२०,०००,०००	१९,०४७ १३/२१
राशि-चक्र	भीतर का व्यासार्ध	१९,९६२,०००	१,८६६ २/३ (sic)
	वाहर से इसकी परिधि	१२५,६६४,०००	

यह सिद्धान्त उस सिद्धान्त से भिन्न है जिसको टोल्मी ने किताव-अलमंशूरात नामक पुस्तक में ग्रहों के अन्तरों के परिसंख्यान का आधार बनाया है, और जिसमें प्राचीन और वर्तमान दोनों ज्योतिषियों ने उसका अनुकरण किया है। उनका यह सिद्धान्त है कि ग्रह-का महत्तम अन्तर अगले उच्चतर ग्रह से उसके लघुतम अन्तर के वरावर है, और दो गोलों के वीच कोई ऐसा शून्य देश नहीं जो चेष्टा से रहित हो।

ग्रहों के अन्तरों पर टोल्मी।
पृष्ठ २३६

इस सिद्धान्त के अनुसार, दो गोलों के बीच एक शून्य देश ऐसा है जिसमें उनमें से एक भी नहीं, जिसमें धुरे के समान कोई वस्तु है जिसके गिर्द कि भ्रमण होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे ईथर में कुछ गुरुता मानते थे, जिसके कारण उनको किसी ऐसी वस्तु के ग्रहण करने की आवश्यकता का अनुभव हुआ जो भीतरी गोले (ग्रह) को बाहरी गोले (ईथर) के मध्य में रखती या थामती है।

समागम और स्थान-भेदांश पर।

सभी ज्योतिषियों में यह बात भली भाँति प्रसिद्ध है कि दो ग्रहों में से उच्चतर और निम्नतर ग्रह को, समागम या लम्बन की वृद्धि के सिवा, पहचानने की कोई सम्भावना नहीं। परन्तु, समागम केवल बहुत ही कचित् होता है, और केवल एक ही ग्रह का, अर्थात् चन्द्रमा का, लम्बन ही देखा जा सकता है। अब हिन्दुओं का यह विश्वास है कि गतियाँ समान हैं, परन्तु अन्तर भिन्न-भिन्न हैं। उच्चतर ग्रह के निम्नतर ग्रह की अपेक्षा अधिक मन्द गति से चलने का कारण उसके मण्डल (ग्रहपथ) का अधिक विस्तार है; और निम्नतर ग्रह के अधिक तीव्र गति से घूमने का कारण यह है कि इसका मण्डल या ग्रहपथ कम विस्तृत होता है। इस प्रकार, उदाहरणार्थ, शनि के मण्डल में एक कला चन्द्रमा के मण्डल में २६२ कलाओं के बराबर है। इसलिए वे समय जिनमें शनि और चन्द्रमा उसी शून्य देश को पार करते हैं भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु उनकी गतियाँ बराबर हैं।

मुझे इस विषय पर कभी कोई हिन्दू पुस्तक नहीं मिली, परन्तु इससे सम्बन्ध रखनेवाली केवल संख्याएँ ही विविध पुस्तकों में बिखरी हुई मिली हैं—ये संख्याएँ भ्रष्ट हैं। किसी व्यक्ति ने पुलिस पर आपत्ति की कि उसने प्रत्येक ग्रह के मण्डल की परिधि २१,६०० और व्यासार्ध ३४३८ गिना है, परन्तु वराहमिहिर पृथ्वी

से सूर्य का अन्तर २,५९८,६००, और स्थिर तारकाओं का अन्तर ३२१,३६२,६८३ गिनता है। इस पर पुलिस ने उत्तर दिया कि पूर्वोक्त संख्याएँ कला और शेषोक्त योजन थीं; परन्तु एक और वचन में वह कहता है कि पृथ्वी से स्थिर तारकाओं का अन्तर सूर्य के अन्तर की अपेक्षा साठ गुना अधिक है। तदनुसार उसे स्थिर तारकाओं का अन्तर १५५,९३४,००० गिनना चाहिए था।

ग्रहों के अन्तरों के परिसंख्यान की हिन्दू-रीति।

ग्रहों के अन्तरों के परिसंख्यान की हिन्दू विधि, जिसका उल्लेख हमने ऊपर किया है, एक ऐसे सिद्धांत पर अवलम्बित है जो मेरे ज्ञान की वर्तमान दशा में, और जब तक मुझे हिन्दुओं की पुस्तकों का अनुवाद करने का कोई सुभीता न हा, मुझको ज्ञात नहीं। सिद्धांत यह है कि चन्द्रमा के पथ में एक कला का विस्तार पन्द्रह योजन के बराबर है। बलभद्र ने चाहे जितना भी यत्न किया है परन्तु उसकी टीकाओं से इस सिद्धांत का स्वरूप स्पष्ट नहीं हुआ। क्योंकि वह कहता है—"लोगों ने दिङ्मण्डल में से

बलभद्र का अवतरण

चन्द्रमा के लाँघने का समय, अर्थात् उसके पिण्ड के प्रथम भाग के चमकने और सारे के उदय होने के बीच का समय, या उसके अस्त होना प्रारम्भ होने और अस्त होने की क्रिया की पूर्ति के बीच का समय अवलोकन द्वारा स्थिर करने का यत्न किया है। लोगों ने मालूम किया है कि यह क्रिया मण्डल की परिधि की बत्तीस कला तक रहती है।" परन्तु, यदि अवलोकन द्वारा अंशों का स्थिर करना कठिन है, तो कलाओं का स्थिर करना तो उससे भी कहीं अधिक कठिन है।

फिर, हिन्दुओं ने चन्द्रमा के व्यास के योजनों को अवलोकन द्वारा निश्चित करने का यत्न किया है, और उन्हें ४८० पाया है।

यदि आप उन्हें उसके पिण्ड की कलाओं पर भाग दें, तो, एक कला के अनुरूप के तौर पर, भागफल १५ योजन होता है। यदि आप इसे परिधि की कलाओं से गुणा करें, तो गुणनफल ३२४,००० होता है। यह चन्द्रमा के मण्डल का वह माप है जो वह प्रत्येक परिभ्रमण में पार करता है। यदि आप इस संख्या को एक कल्प या चतुर्युग में चन्द्रमा के चक्रों से गुणा करें, तो गुणनफल वह अन्तर है जो चन्द्रमा उनमें से एक में तय करता है। ब्रह्मगुप्त के मतानुसार, एक कल्प में यह १८, ७१२,०६९,२००,०००,००० योजन है। ब्रह्मगुप्त इस संख्या को क्रान्तिमण्डल के योजन कहता है।

यह बात स्पष्ट है कि यदि आप इस संख्या को एक कल्प में प्रत्येक ग्रह के चक्रों पर भाग देंगे, तो भागफल एक परिभ्रमण के योजनों को प्रकट करेगा। परन्तु, हिन्दुओं के मतानुसार, जैसा कि हम पहले ही लिख चुके हैं, ग्रहों की गति प्रत्येक अन्तर में एक सी है। इसलिए भागफल प्रस्तुत ग्रह के मण्डल के पथ के माप को प्रकट करता है।

क्योंकि आगे, ब्रह्मगुप्त के मतानुसार, व्यास का परिधि के साथ संबंध लगभग १२, ९५९ : ४०, ९८० के बराबर है, आप ग्रह के मण्डल के पथ के मान को १२, ९५९ से गुणा करते और गुणनफल को ८१, ९६० पर भाग देते हैं। भागफल त्रिज्या, या पृथ्वी के मध्य से ग्रह का अन्तर है।

ब्रह्मगुप्त के मतानुसार ग्रहों की त्रिज्याओं या पृथ्वी के मध्य से उनके अन्तरों का परिसंख्यान।

हमने यह परिसंख्यान, ब्रह्मगुप्त के सिद्धांतानुसार सभी ग्रहों के लिए किया है, और आगे लिखी तालिका में पाठकों के सामने परिणामों को उपस्थित करते हैं—

पृष्ठ २३७

ग्रह	प्रत्येक ग्रह के मण्डल की परिधि, योजनों में।	उनकी त्रिज्याएँ जो पृथ्वी के मध्य से उनके अन्तरों से अभिन्न हैं, योजनों में।
चन्द्रमा	३२४,०००	५१, २२९
बुध	१,०४३,२१० १५६१२३७६७०/२२४२१२४८७३	१६४, ९४७
शुक्र	२,६६४,६२९ १६२७५८०३८३/१७५५५९७३७३	४२१, ३१५
सूर्य	४,३३१,४९७½	६८४, ८६९
मंगल	८,१४६,९१६ ८२४३०९२४/११४८४१४२६१	१, २२८,१३९
बृहस्पति	५१,३७४,८२१ ५४१८२०८९/७२८४५२९१	८, १२३, ०६४
शनि	१२७,६६८,७८७ २५२३६६३७/७३२८३६४९	२०, १८६,१८६
स्थिर तारकाएँ, उनका पृथ्वी के मध्य से अन्तर सूर्य के पृथ्वी के मध्य से अन्तर से साठ गुना है।	२५९,८८९,८५०	४१, ०९२, १४०

क्योंकि पुलिस कल्पों से नहीं, वरन् चतुर्युगों से गिनती करता है, इसलिए वह चन्द्रमा के मण्डल के पथ के अन्तर को चतुर्युग के चान्द्र चक्रों से गुणा करता है, और गुणनफल १८, ७१२, १८०, ८६४,००० योजन प्राप्त करता है, जिनको वह आकाश के योजन कहता है। यह वह अन्तर है जो चन्द्रमा प्रत्येक चतुर्युग में चलता है।

पुलिस के सिद्धान्तानुसार, यही परिसंख्यान।

पुलिस व्यास का परिधि के साथ सम्बन्ध १२५० : ३९२७ गिनता है। अब, यदि आप प्रत्येक ग्रह के मण्डल की परिधि को ६२५ से गुणा करें और गुणनफल को ३९२७ पर भाग दें, तो भागफल पृथ्वी के मध्य से ग्रह का अन्तर है। हमने पिछले जैसा ही परिसंख्यान पुलिस के मतानुसार किया है, और उसके परिणाम अगली तालिका में उपस्थित करते हैं। त्रिज्याओं के परिसंख्यान में हमने ½ में छोटे अपूर्णाङ्कों को छोड़ दिया है और उससे बड़े अपूर्णाङ्कों के पूर्णाङ्क बना लिये हैं। परन्तु परिधियों की गणना में हमने उसी स्वच्छन्दता का उपयोग नहीं किया, वरन् नितान्त यथार्थता के साथ गिनती की है, क्योंकि परिभ्रमणों के परिसंख्यानों में उनकी आवश्यकता है। यदि आप एक कल्प या एक चतुर्युग में आकाश के योजनों को कल्प या चतुर्युग के नागरिक दिनों पर भाग दें, तो आपको भागफल ११, ८५८ योग एक अवशेष प्राप्त होता है, जो ब्रह्मगुप्त के अनुसार $\frac{२५,४६८}{२२,४१६}$ और पुलिस के अनुसार $\frac{२०६,५५४}{२६२,२०७}$ है। यह वह अन्तर है जिसे चन्द्रमा प्रतिदिन तय करता है, और क्योंकि सभी ग्रहों की गति एक ही है, इसलिए यह वह अन्तर है जो प्रत्येक ग्रह एक दिन में तय करता है। इसका इसके मण्डल की परिधि के योजनों के साथ वही संबंध है जो इसकी गति का, जिसे हम मालूम करना चाहते हैं, परिधि के साथ है, जब कि परिधि ३६० बराबर भागों में बँटी हुई है। इसलिए यदि आप सभी ग्रहों के साझे के पथ को ३६० से गुणा करें और गुणनफल को प्रस्तुत ग्रह की परिधि के योजनों पर भाग दें, तो भागफल इसकी मध्यम दैनिक गति को दिखलाता है।

पृष्ठ २३८

ग्रह	ग्रहों के मण्डलों की परिधियाँ योजनों में।	पृथ्वी के मध्य से ग्रहों के अन्तर, योजनों में।
चन्द्रमा	३२४,०००	५१,५६६
बुध	१,०४३,२११ $\frac{५७३}{१९९३}$	१६६,०३३
शुक्र	२,६६४,६३२ $\frac{९०२३२}{५८५१९९}$	४२४,०८९
सूर्य	४,३३१,५०० $\frac{१}{६}$	६९०,२९५ (sic)
मङ्गल	८,१४६,९३७ $\frac{१८१६३}{९५७०१}$	१,२९६,६२४ (!)
बृहस्पति	५१,३७५,७६४ $\frac{४९९६}{१८२११}$	८,१७६,६८९ (!)
शनि	१२७, ६७१,७३९ $\frac{२७३०१}{३६६४१}$	२०,३१९,५४२ (!)
स्थिर तारकाएँ, पृथ्वी के मध्य से सूर्य का अन्तर उनके अन्तरों का $\frac{१}{२०}$ है।	२५९,८९०,०१२	४१,४६७,७०० (sic)

अब, चन्द्रमा के व्यास की कलाओं का उसकी परिधि की कलाओं अर्थात् २१,६०० से वही सम्बन्ध है जो व्यास के योजनों की संख्या, अर्थात् ४८०, का सारे मंडल की परिधि के योजनों से है, इसलिए सूर्य के व्यास की कलाओं के लिए, जिनको हमने ब्रह्मगुप्त के अनुसार ६, ५२२ योजनों के बराबर, और पुलिस के अनुसार ६४८०

ग्रहों के व्यास।

पृष्ठ २३९

के बराबर पाया है, गणना की ठीक उसी विधि का प्रयोग किया गया है। क्योंकि पुलिस चन्द्रमा के पिंड की कलाओं की गिनती ३२, अर्थात् २ का गुणा, करता है, इसलिए वह ग्रहों के पिंडों की कला प्राप्त करने के लिए इस संख्या को २ पर भाग देता है, यहाँ तक कि अन्त को उसे १ प्राप्त होता है। इस प्रकार वह शुक्र के पिंड के साथ ३२ कलाओं का १/२ अर्थात् १६; बृहस्पति के पिण्ड के साथ ३२ कलाओं का १/४ अर्थात् ८; बुध के पिण्ड के साथ ३२ कलाओं का १/८ अर्थात् ४; शनि के पिण्ड के साथ ३२ कलाओं का १/१६ अर्थात् २; मंगल के पिण्ड के साथ ३२ कलाओं का १/३२ अर्थात् १ आरोपित करता है।

ऐसा जान पड़ता है कि इस सूक्ष्म क्रम ने उसकी भावना पर अधिकार कर लिया था, नहीं तो वह इस तथ्य की उपेक्षा न करता कि शुक्र का व्यास, अवलोकन के अनुसार, चन्द्रमा की त्रिज्या के बराबर नहीं, और न मङ्गल शुक्र के १/१६ वें के बराबर है।

किसी निर्दिष्ट समय में सूर्य और चन्द्र के पिण्डों के परिसंख्यान की रीति।

प्रत्येक समय में सूर्य और चन्द्र के पिण्डों के परिसंख्यान की विधि निम्नलिखित है। यह पृथ्वी से उनके अन्तरों पर, अर्थात् उसके पथ के यथार्थ व्यास पर अवलम्बित है, जो सूर्य और चन्द्र के शोधनों के परिसंख्यानों में पाया जाता है। अ ब सूर्य के पिण्ड का व्यास है, च द पृथ्वी का व्यास है, च द ह छाया का शंकु है, ह ल उसका उन्नत स्थान है। फिर, च र को द ब के समान्तर खींचो। तब अ र, अ ब और च द के बीच अन्तर है, और नियमित रेखा च त सूर्य का मध्यम अन्तर, अर्थात् आकाश के योजनों से निकाली हुई इसके पथ की त्रिज्या, है। सूर्य का यथार्थ अन्तर इससे सदा भिन्न रहता

है, कभी वह इससे बड़ा होता है और कभी छोटा। हम च क खींचते हैं, जो अवश्यमेव त्रिज्या के अंशों से स्थिर की जाती है। इसका च त से, इसके त्रिजीवा (= व्यासार्ध) होने के कारण, वही सम्बन्ध है, जो च क के योजनों का च त के योजनों से है। इससे व्यास का मान योजनों में बदल दिया जाता है।

अ ब के योजनों का त च के योजनों के साथ वही सम्बन्ध है जो अ ब की कलाओं का त च की कलाओं के साथ है, शेषोक्त त्रिजीवा है। उससे अ ब मण्डल की कलाओं से ज्ञात और स्थिर हो जाती है, क्योंकि त्रिजीवा का निश्चय परिधि के मान से किया जाता है।

पुलिस, ब्रह्मगुप्त और वलभद्र से अवतरण।

इस कारण पुलिस कहता है—"सूर्य या चन्द्र के मण्डल की त्रिज्या के योजनों को यथार्थ अन्तर से गुणा करो, और गुणनफल को त्रिजीवा पर भाग दो। जो भागफल सूर्य के लिए निकले उसे २२,२७८, २४० पर, और जो भागफल चन्द्रमा के लिए निकले उसे १,६५०, २४० पर भाग दो। तब भागफल सूर्य या चन्द्र में से एक के पिण्ड के व्यास की कलाओं को प्रकट करता है।"

शेषोक्त दो संख्याएँ सूर्य और चन्द्र के व्यासों के योजनों के ३४३८ से गुणन का गुणनफल हैं। यह शेषोक्त संख्या त्रिजीवा की कलाएँ हैं।

ऐसे ही ब्रह्मगुप्त कहता है—"सूर्य या चन्द्र के योजनों को ३४१६, अर्थात् त्रिजीवा की कलाओं, से गुणा करो, और गुणनफल को सूर्य या चन्द्र के मण्डल की त्रिज्या के योजनों पर भाग दो।" परन्तु विभाजन का शेषोक्त नियम ठीक नहीं है, क्योंकि, इसके अनुसार, पिण्ड का मान रूपान्तरित न होगा। इसलिए टीकाकार बलभद्र की वही सम्मति है जो पुलिस की है, अर्थात् इस विभाजन

में भाजक (योजनों के मान में) परिवर्तित किया हुआ यथार्थ अन्तर होना चाहिए।

छाया के व्यास के परिसंख्यान के लिए ब्रह्मगुप्त निम्नलिखित नियम देता है। यह हमारे पञ्चाङ्गों में भुजङ्ग के सिर (राहु) और पुच्छ (केतु) के मण्डल का मान कहलाता है—"पृथ्वी के व्यास के योजनों, अर्थात् १५८१, को सूर्य के व्यास के योजनों, अर्थात् ६५२२, में से घटाओ। शेष ४९४१ रह जाता है, जिसे भाजक के रूप में उपयोग में लाने के लिए स्मृति में रक्खा जाता है। आकृति में अ र इसको प्रकट करती है। फिर पृथ्वी के व्यास को, जो दुगनी त्रिजीवा है, सूर्य के यथार्थ अन्तर के योजनों से गुणा करो। यह यथार्थ अन्तर सूर्य के स्फुटन से मालूम होता है। गुणनफल को स्मृति में रक्खे हुए भाजक पर भाग दो। भागफल छाया के अन्त का वास्तविक अन्तर है।

छाया के व्यास के परिसंख्यान के लिए ब्रह्मगुप्त की रीति।

"प्रत्यक्ष रूप से दोनों त्रिकोण अ र च और च द ह एक दूसरे के तुल्य हैं। परन्तु, नियमित रेखा च त परिमाण में नहीं बदलती, किन्तु यथार्थ अन्तर के फल से अ ब का रूप बदल जाता है, यद्यपि इसका परिमाण बराबर वही है। अब मान लीजिए कि यह अन्तर च क है। अ ज और र व रेखाओं को एक दूसरे के समान्तर, और ज क व को अ व के समान्तर खींचो। तब शेषोक्त स्मृति में रक्खे हुए भाजक के बराबर है।

"रेखा ज च म खींचो। तब उस समय के लिए म शंकु का सिर है। स्मृति में रक्खे हुए भाजक, ज व का यथार्थ अन्तर, क च, के साथ वही सम्बन्ध है, जो पृथ्वी के व्यास, च द का म ल के साथ, जिसको वह (ब्रह्मगुप्त)

पृष्ठ २४०

(छाया के अन्त का) यथार्थ अन्तर कहता है, और इसका निश्‍चय त्रिज्या की कलाओं से (पृथ्वी का व्यासार्ध त्रिजीवा है) किया जाता है। क्योंकि क च—"

परन्तु, अब मुझे सन्देह होता है कि निम्नलिखित में हस्तलेख से कुछ गिर पड़ा है, क्योंकि लेखक कहता है—"तब इसको (अर्थात् च क के भागफल को स्मृति में रक्खे हुए भाजक से) पृथ्वी के व्यास से गुणा करो। गुणनफल पृथ्वी के मध्य और छाया के अन्त के बीच का अन्तर है। उसमें से चन्द्रमा का यथार्थ अन्तर घटाओ और अवशेष को पृथ्वी के व्यास से गुणा करो। गुणनफल को छाया के सिरे के यथार्थ अन्तर पर भाग दो। भागफल चन्द्रमा के मण्डल में छाया का व्यास है। फिर, हम चन्द्रमा का यथार्थ अन्तर ल स मान लेते हैं, और फ न चन्द्र-मण्डल का एक अंश है, जिसकी त्रिज्या ल स है। क्योंकि हमने ज्या की कलाओं द्वारा निश्चित की हुई ल म मालूम कर ली है, इस-लिए इसका च द से वही सम्बन्ध है, इसके त्रिजीवा से दुगना होने के कारण, जो ज्या की कलाओं में मापी हुई, म स का ज्या की कलाओं में मापी हुई च य के साथ है।"

ब्रह्मगुप्त की हस्त-लिखित प्रति में दीमक का चाटा हुआ स्थल।

मैं समझता हूँ, यहाँ ब्रह्मगुप्त छाया के अन्त के यथार्थ अन्तर ल म को योजनों में बदलना चाहता था। यह बात इसको पृथ्वी के व्यास के योजनों से गुणा करने, और गुणनफल को दुगनी त्रिजीवा पर भाग देने से की जाती है। इस भाजन का उल्लेख हस्तलेख से गिर पड़ा है; क्योंकि इसके बिना छाया के अन्त के संस्फुट अन्तर का पृथ्वी के व्यास से गुणन पूर्णतया फालतू है, और परिसंख्यान में उसका कुछ भी प्रयोजन नहीं।

फिर; यदि ल म के योजनों की संख्या मालूम हो, तो ल स को भी, जो यथार्थ अन्तर है, योजनों में बदल देना चाहिए, जिससे म स का निश्चय भी उसी मान से हो। छाया के व्यास का मान, जो इस प्रकार मालूम हुआ है, योजनों को दिखलाता है।

फिर, ब्रह्मगुप्त कहता है—"जो छाया मालूम हुई है उसको त्रिजीवा से गुणा करो, और गुणनफल को चन्द्रमा के यथार्थ अन्तर पर भाग दो। भागफल छाया की कलाओं को दिखलाता है जिनको हम मालूम करना चाहते थे।"

परन्तु, यदि उसकी मालूम की हुई छाया योजनों से निश्चित की जाती, तो उसे, छाया की कलाओं को मालूम करने के लिए इसको दुगनी त्रिजीवा से गुणा करना, और गुणनफल को पृथ्वी के व्यास के योजनों पर भाग देना चाहिए था। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। इससे प्रकट होता है कि, अपने परिसंख्यान में, उसने यथार्थ व्यास को योजनों में बदले बिना ही, इसको कलाओं में निश्चित करने तक ही, अपने को परिमित रक्खा है।

ब्रह्मगुप्त की रीति की आलोचना।

ग्रन्थकार यथार्थ (स्फुट) व्यास का, इसको योजनों में बदले बिना ही, उपयोग करता है। इस प्रकार वह मालूम करता है कि चक्र में, जिसका व्यासार्ध ल स है, छाया स्फुट व्यास है, और इसी का उस चक्र के परिसंख्यान के लिए प्रयोजन है, जिसका व्यासार्ध त्रिजीवा है। य च का, जिसको वह पहले से मालूम कर चुका है, स्फुट अन्तर, स ल, के साथ वही सम्बन्ध है जो माप में य च का, जिसको ढूँढ़ा जा रहा है, स ल के साथ है। स ल त्रिजीवा है। इस समीकरण के आधार पर (योजन) बनाने चाहिएँ।

एक दूसरे वचन में ब्रह्मगुप्त कहता है—"पृथ्वी का व्यास १५८१, चन्द्रमा का व्यास ४८०, सूर्य का व्यास ६५२२, छाया का व्यास १५८१ है। सूर्य के योजनों में से पृथ्वी के योजन घटाओ, शेष ४९४१ रह जाते हैं। इस अवशेष को चन्द्रमा के स्फुट अन्तर के योजनों से गुणा करो, और गुणनफल को सूर्य के स्फुट अन्तर के योजनों पर भाग दो। जो भागफल प्राप्त हो उसको १५८१ में से घटाओ, तब अवशेष चन्द्रमा के मण्डल में छाया का मान है। इसको ३४१६ से गुणा करो, और गुणनफल को चन्द्रमा के मण्डल की मध्यवर्ती त्रिज्या के योजनों पर भाग दो। भागफल छाया के व्यास की कलाओं को दिखलाता है।

छाया के परिसंख्यान के लिए ब्रह्मगुप्त की एक दूसरी रीति।

"यह बात स्पष्ट है कि यदि पृथ्वी के व्यास के योजनों को सूर्य के व्यास के योजनों में से घटाया जाय, तो अवशेष अ र, अर्थात् ज व है। रेखा व च फ़ खींचो और नियमित रेखा क च को ओ पर गिरने दो। तब फालतू ज व का सूर्य के स्फुट अन्तर क च के साथ वही सम्बन्ध है जो य फ़ का चन्द्रमा के स्फुट अन्तर ओ च के साथ है। इस बात का कुछ मुज़ायका नहीं कि इन दो मध्यम व्यासों के योजन बनाये गये हैं कि नहीं, क्योंकि, इस दशा में, य फ़ योजनों के मान से निश्चित हुआ मालूम किया गया है।

"च न को ओ फ़ के बराबर खींचो। तब ओ न आवश्यक रूप से च द के व्यास के बराबर है, और इसके जिस भाग की तलाश की जा रही है वह य च है। इस प्रकार मालूम की हुई संख्या का पृथ्वी के व्यास में से घटाना आवश्यक है, और अवशेष य च होगा।"

ऐसी भूलों के लिए जो इस परिसंख्यान में पाई जाती हैं, ग्रन्थकार, ब्रह्मगुप्त, को उत्तरदाता नहीं ठहराया जा सकता, किन्तु हमें सन्देह होता है कि दोष हस्तलेख का है। फिर भी, हम उस पाठ से परे नहीं जा सकते, जो हमारे पास है, क्योंकि हम नहीं जानते कि शुद्ध प्रति में यह कैसा है।

ग्रन्थकार के पास जो ब्रह्मगुप्त का हस्तलेख था उसकी भ्रष्ट दशा की वह आलोचना करता है।

पृष्ठ. २४१

ब्रह्मगुप्त द्वारा ग्रहण किया हुआ छाया का मान जिसमें से घटाने के लिए वह पाठकों को आदेश करता है, मध्यम मान नहीं हो सकता, क्योंकि मध्यम मान मध्य में, बहुत अल्प और बहुत अधिक के बीच, होता है। फिर, हम इस बात की कल्पना नहीं कर सकते कि यह मान, योग (?) समेत, छाया के मानों में महत्तम होना चाहिए; क्योंकि य फ, जो ऋण है, एक त्रिकोण का अधोभाग है, जिसकी एक भुज फ च, छाया के अन्त की दिशा में नहीं, वरन् सूर्य की दिशा

में, स ल को काटती है। इसलिए य फ का छाया के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं (अटकली अनुवाद)।

अन्ततः ऋण का सम्बन्ध चन्द्रमा के व्यास के साथ होना सम्भव है। उस दशा में य च का, जो योजनों में निकाली जा चुकी है, चन्द्रमा के स्फुट अन्तर के योजनों, स ल, के साथ वही सम्बन्ध है जो कलाओं में गिनी हुई य च का स ल के साथ, यह त्रिजीवा है (अटकली अनुवाद)।

जो कुछ ब्रह्मगुप्त मालूम करना चाहता है वह इस रीति से बिलकुल ठीक-ठीक मालूम हो जाता है। इसमें चन्द्रमा के मण्डल की मध्यम त्रिज्या पर, जो आकाश के मण्डल के योजनों से निकाली जाती है, भाग नहीं दिया जाता।

सूर्य और चन्द्र के व्यासों के परिसंख्यान की विधियाँ, जो खण्डखाद्यक और करणसार प्रभृति हिन्दू पञ्चाङ्गों में दी गई हैं, वही हैं जो अलख़्वारिज़्मी के पञ्चाङ्ग में पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त खण्डखाद्यक में छाया के व्यास का परिसंख्यान भी वैसा ही है जैसा कि अलख़्वारिज़्मी ने दिया है, परन्तु करणसार में यह रीति है—"चन्द्र की भुक्ति को ४ से और सूर्य की भुक्ति को १३ से गुणा करो। दोनों गुणनफलों के प्रभेद को ३० पर भाग दो और भागफल छाया का व्यास है।"

अन्य स्रोतों के अनुसार सूर्य और चन्द्र के व्यासों का परिसंख्यान।

सूर्य के व्यास के परिसंख्यान के लिए करणतिलक आगे लिखी रीति देती है—"सूर्य की भुक्ति को २ पर भाग दो, और आधे को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। एक स्थान में इसे १० पर भाग दो, और भागफल को दूसरे स्थान में लिखी संख्या में बढ़ा दो। योगफल सूर्य के व्यास की कलाओं की संख्या है।"

करणतिलक के अनुसार सूर्य और छाया का व्यास।

चन्द्रमा के व्यास के परिसंख्यान में, वह पहले चन्द्रमा की भुक्ति लेता है, इसमें इसका $\frac{१}{८०}$ वाँ बढ़ा देता है, और योगफल को २५ पर भाग देता है। भागफल चन्द्रमा के व्यास की कलाओं की संख्या है।

छाया के व्यास के परिसंख्यान में, वह सूर्य की भुक्ति को ३ से गुणा करता है, और गुणनफल में से वह इसका $\frac{१}{२४}$ वाँ घटा देता है। अवशेष को वह चन्द्रमा की भुक्ति में से घटाता है, अवशेष के दुगने को वह १५ पर भाग देता है। भागफल भुजङ्ग के सिर (राहु) और पूँछ (केतु) की कलाओं की संख्या है।

यदि हम हिन्दुओं के ज्योतिष के ग्रंथों से और अधिक अवतरण देंगे, तो हम प्रस्तुत पुस्तक के विषय से सर्वथा दूर चले जायँगे। इसलिए हम उनमें से केवल उन्हीं विषयों के अवतरण देंगे जो इस पुस्तक के विशेष विषय के साथ थोड़ा बहुत संबंध रखते हैं, जो या तो अपने अनोखेपन के कारण उल्लेखनीय हैं, या जो हमारे लोगों (मुसलमानों) में और हमारे (मुसलिम) देशों में अज्ञात हैं।

पृष्ठ २४२

———

छप्पनवाँ परिच्छेद

चन्द्रमा के स्थानों पर।

हिन्दू लोग चान्द्र स्थानों का ठीक राशिचक्र की राशियों के सदृश ही उपयोग करते हैं। जिस प्रकार क्रांति-मण्डल, राशियों द्वारा, बारह बराबर भागों में विभक्त है, उसी प्रकार यह, नक्षत्रों (चान्द्र स्थानों) द्वारा, सत्ताईस बराबर भागों में विभक्त है। प्रत्येक नक्षत्र क्रांति-मण्डल की १३$\frac{1}{3}$ अंश, या ८०० कला घेरता है। ग्रह उनमें प्रवेश करते और फिर उनको छोड़कर निकल आते हैं, और अपने उत्तरीय तथा दक्षिणीय अक्षों में से आगे और पीछे घूमते हैं। फलित ज्योतिषी लोग प्रत्येक नक्षत्र के साथ एक विशेष प्रकृति, घटनाओं को पहले से बता देने के गुण, और अन्य विशिष्ट मुख्य लक्षणों का उसी प्रकार आरोपण करते हैं जैसे कि वे राशियों के साथ करते हैं।

सत्ताईस नक्षत्रों पर।

संख्या २७ का आधार यह बात है कि चन्द्रमा सारे क्रान्ति-मण्डल में से २७$\frac{1}{3}$ दिन में लाँघ जाता है। इस संख्या में $\frac{1}{3}$ का अपूर्णाङ्क छोड़ दिया जा सकता है। इसी प्रकार, अरब लोग, चन्द्रमा के पश्चिम में पहले पहल दिखाई देने से आरम्भ करके पूर्व में उसके दिखाई देने से बन्द हो जाने तक, नक्षत्रों का निश्चय करते हैं। इसमें वे आगे लिखी विधि का उपयोग करते हैं—

अरबों के नक्षत्र।

परिधि में एक चान्द्र मास में परिभ्रमणों की संख्या जोड़ो। योग-फल में से चन्द्रमा के दो दिनों के, जिनको अलमिहाक़ कहते हैं (अर्थात्,

चान्द्र मास का २८ वाँ और २९ वाँ दिन), कूच को घटाओ। अवशेष को एक दिन के चन्द्रमा के कूच पर भाग दो। भागफल २७ और ⅓ से थोड़ा सा अधिक है। यह अपूर्णाङ्क एक पूरा दिन गिना जाना चाहिए।

परन्तु, अरब अशिक्षित लोग हैं, जो न लिख सकते हैं और न गिन सकते हैं। उनका भरोसा केवल संख्याओं और नेत्र-दृष्टि पर है। नेत्र-दृष्टि के सिवा उनके पास अनुसन्धान का और कोई माध्यम नहीं। वे नक्षत्रों का, उनमें स्थिर तारकाओं से अलग, निश्चय करने में अशक्त हैं। जब हिन्दू एकहरे नक्षत्रों का वर्णन करते हैं तब किन्हीं तारकाओं के विषयों में वे अरबों से मिलते हैं और किन्हीं के विषय में उनका उनसे मतभेद है। सर्वतोभावेन, अरब लोग चन्द्रमा के पथ के निकट-निकट रहते, और, नक्षत्रों का वर्णन करते समय, केवल उन्हीं स्थिर तारकाओं का उपयोग करते हैं जिनके साथ विशेष समयों में चन्द्रमा की युति होती है, या जिनके बिलकुल पड़ोस में से होकर वह लाँघता है।

हिन्दू लोग ठीक ठीक इसी रीति का अनुसरण नहीं करते, परन्तु एक तारका की दूसरी के सम्बन्ध में विविध स्थितियों को, अर्थात् एक तारका के दूसरी के सामने, या उसके खस्वस्तिक में स्थान को भी गिनते हैं। इसके अतिरिक्त वे गिरते हुए गरुड़ की भी नक्षत्रों में गिनती कर लेते हैं ताकि २८ हो जायँ।

क्या हिन्दुओं के सत्ताईस नक्षत्र हैं या अट्ठाईस ?

यही बात है जिसने हमारे ज्योतिषियों और हमारी अनवा पुस्तकों के रचयिताओं को भटका दिया है; क्योंकि वे कहते हैं कि हिन्दुओं के अट्ठाईस नक्षत्र होते हैं, परन्तु वे एक को छोड़ देते हैं जो सदैव सूर्य की किरणों से ढँका रहता है। कदाचित् उन्होंने यह सुना होगा कि जिस नक्षत्र में चन्द्रमा होता है उसको हिन्दू जलता

हुआ नक्षत्र; जिसको यह अभी छोड़ आया है उसे आलिङ्गन के पश्चात् छोड़ा हुआ नक्षत्र; और जिसमें यह आगे जायगा उसे धुआँ छोड़ता हुआ नक्षत्र कहते हैं। हमारे कुछ मुसलमान लेखक यह समझते रहे हैं कि हिन्दू अल-ज़ुबाना नक्षत्र छोड़ देते हैं, और इसका कारण बताते हुए कहते हैं कि चन्द्रमा का पथ तुला राशि के अन्त में और वृश्चिक के आरम्भ में जल रहा है।

यह सब एक ही स्रोत से लिया गया है, अर्थात् उनकी यह सम्मति है कि हिन्दुओं के अट्ठाईस नक्षत्र हैं, और विशेष अवस्थाओं में वे एक को छोड़ देते हैं। परन्तु बात इसके सर्वथा विपरीत है; उनके सत्ताईस नक्षत्र हैं, और विशेष अवस्थाओं में वे एक बढ़ा देते हैं।

ब्रह्मगुप्त कहता है कि वेद की पुस्तक में, मेरु पर्वत के निवासियों से लिया हुआ, इस आशय का एक ऐतिह्य है कि वे दो सूर्य, दो चन्द्रमा, और चौवन नक्षत्र देखते हैं, और उनके दिन हमसे दूने हैं। तब वह इस सिद्धान्त का इस युक्ति से खण्डन करने का यत्न करता है कि हम ध्रुव की मछली (सारी पुस्तक में ऐसा ही लिखा है) को दिन में दो बार नहीं, वरन् केवल एक ही बार घूमती देखते हैं। मेरी पूछो तो मेरे पास इस सत्येतर वाक्य को युक्तिसङ्गत रूप में सजाने का कोई साधन नहीं।

ब्रह्मगुप्त से एक वैदिक ऐतिह्य।

किसी तारका या किसी नक्षत्र के निर्दिष्ट अंश का स्थान गिनने की रीति यह है—

इसका अन्तर 0° मेष राशि से कलाओं में लो, और उनको ८०० पर भाग दो। भागफल उन सब नक्षत्रों को दिखलाता है जो उस नक्षत्र से पूर्ववर्ती हैं जिसमें कि प्रस्तुत तारा खड़ा है।

नक्षत्र के किसी निर्दिष्ट अंश का स्थान गिनने की रीति।

तब प्रस्तुत नक्षत्र में विशेष स्थान मालूम करना शेष रह जाता है। अब तारका या अंश, नक्षत्र के ८०० भागों के अनुसार, सरलतापूर्वक ठीक किया जाता, और सामान्य भाजक से घटाया जाता है, या अंशों की कलाएँ बना ली जाती हैं, या इनको ६० से गुणा और भागफल को ८०० पर भाग दिया जाता है। इस अवस्था में भागफल नक्षत्र के उस भाग को दिखलाता है, जिसको चन्द्रमा, यदि नक्षत्र को $\frac{1}{60}$ गिना जाय, उस क्षण में पहले से ही लाँघ चुका है।

परिसंख्यान की ये रीतियाँ चन्द्रमा, ग्रहों और अन्य तारकाओं सबके लिए ठीक हैं। परन्तु आगे लिखी विधि एक-मात्र चन्द्रमा पर ही लागू है—अवशेष (अर्थात्, अपूर्ण नक्षत्र के भाग) के ६० से गुणन के गुणनफल को चन्द्रमा की भुक्ति पर भाग किया जाता है। लब्धि प्रकट करती है कि चान्द्र नक्षत्र-दिन कितना बीत चुका है।

स्थिर तारकाओं के विषय में हिन्दुओं का ज्ञान बहुत अल्प है। मुझे उनमें कभी भी कोई ऐसा मनुष्य नहीं मिला जो नेत्र-दृष्टि से नक्षत्रों के एकहरे तारों को जानता हो, और जो उँगली के साथ मुझे उनको दिखला सके। मैंने इस विषय की खोज करने, और इसके अधिकांश का सब प्रकार की तुलनाओं से निश्चय करने के लिए पूरा-पूरा यत्न किया है, और अपने अनुसन्धान के परिणाम नक्षत्रों के निश्चय पर नामक पुस्तक में लिख दिये हैं। इस विषय में उनके सिद्धान्तों में से मैं केवल उतना ही दूँगा जितना मैं प्रस्तुत प्रसङ्ग के लिए उचित समझता हूँ। परन्तु उसके पूर्व मैं अक्ष और द्राघिमा में नक्षत्रों की स्थितियाँ और उनकी संख्याएँ, खण्डखाद्यक के अनुसार, दूँगा। इससे आगे दी हुई तालिका में सभी ब्योरों को समझ लेने से इस विषय के अध्ययन में सुविधा हो जायगी—

खण्डखाद्यक से ली हुई नक्षत्रों की तालिका

पृष्ठ २४३

नक्षत्रों की संख्या	नक्षत्रों के नाम	उनकी तारकाओं की संख्या	रेखांश: क्रान्ति-चक्र की राशियाँ	रेखांश: अंश	रेखांश: कला	शर: अंश	शर: कला	शर: उत्तरी है या दक्षिणी	उन तारकाओं पर टिप्पणियाँ जिनके नक्षत्र (चान्द्र स्थान) बने हुए हैं।
१	अश्विनी	२	०	८	०	१०	०	उत्तरीय	अलसरतान।
२	भरणी	३	०	२०	०	१२	०	,,	अलबुतैन।
३	कृत्तिका	६	१	७	२८	५	०	,,	अलथुरैया।
४	रोहिणी	५	१	१६	२८	५	०	दक्षिणीय	अलदबरान, वृषभराशि के सिर की तारकाओं सहित।
५	मृगशीर्ष	३	२	३	०	५	०	,,	अलहका।
६	आर्द्रा	१	२	७	०	११	०	,,	अज्ञात। अधिक सम्भव है कि यह शुनि मण्डल से अभिन्न है।
७	पुनर्वसु	२	३	३	०	६	०	उत्तरीय.	अलधिरा।
८	पुष्य	१	३	१६	०	०	०	अक्ष-रहित	अलनत्रा।
९	आश्लेष	६	३	१८	०	६	०	दक्षिणीय	अज्ञात। अधिक सम्भव यही है कि यह कर्क की दो तारकाओं और इसके बाहर की चार तारकाओं से अभिन्न है।
१०	मघा	६	४	६	०	०	०	निरक्ष	अलजभा, दो अन्य तारकाओं सहित।
११	पूर्वफाल्गुनी	२	४	२७	०	१२	०	उत्तरीय	अलज़ुबरा।
१२	उत्तरफाल्गुनी	२	५	५	०	१३	०	,,	अलसर्फा, अलज़ुफीरा के तीसरे तारे सहित।
१३	हस्त	५	५	२०	०	११	०	दक्षिणीय	'काक' की तारकाओं का बना हुआ है।
१४	चित्रा	१	६	३	०	२	०	,,	अलसिमाक, अलअज़ल।
१५	स्वाति	१	६	१६	०	३७	०	उत्तरीय	अलसिमाक, अलरामिह।
१६	विशाखा	२	७	२	५	१	३०	दक्षिणीय	अज्ञात।

पृष्ठ २४४

नक्षत्रों की संख्या	नक्षत्रों के नाम	उनकी तारकाओं की संख्या	रेखांश			अंश			उन तारकाओं पर टिप्पणियाँ जिनके नक्षत्र (चान्द्र स्थान) बने हुए हैं ।
			ज्योतिष-चक्र की राशियाँ	अंश	कला	भाग	कला	उत्तरी है या दक्षिणी	
१७	अनुराधा	४	७	१४	५	३	०	दक्षिणीय	'मुकुट', एक अन्य तारका सहित ।
१८	ज्येष्ठा	३	७	१६	५	४	०	,,	वृश्चिक का हृदय, हृदाशय सहित ।
१९	मूल	२	८	१	०	६	३०	,,	अलशौला ।
२०	पूर्वाषाढ़ा	४	८	१४	०	५	२०	,,	अलनआस अलवारिद ।
२१	उत्तराषाढ़ा	४	८	२०	०	५	०	,,	अलनआम अलसादिर ।
२२	अभिजित	३	८	२५	०	६२	०	उत्तरीय	अलनसर अलवाकिअ ।
२३ / २२	श्रवण	३	९	८	०	३०	०	,,	अलनसर अलताइर ।
२४ / २३	धनिष्ठा	५	९	२०	०	३६	०	,,	अज्ञात । अधिक सम्भव है कि यह डोल-फिन हो ।
२५ / २४	शतभिषज	१	१०	२०	०	०	१८	दक्षिणीय	अज्ञात । बहुत सम्भव है कि यह कुम्भराशि की ऊरुसंधि के उपरिभाग से अभिन्न हो ।
२६ / २५	पूर्वभाद्रपदा	२	१०	२६	०	२४	०	उत्तरीय	अज्ञात ।
२७ / २६	उत्तरभाद्रपदा	२	११	६	०	२६	०	,,	अधिक सम्भव यही है कि यह अलझर्स अलथ्राजम से अभिन्न है ।
२८ / २७	रेवती	१	०	०	०	०	०	निरक्ष	अज्ञात । सम्भवतः यह 'दो मछलियों' के बीच 'रुई के धागे' की किन्हीं तारकाओं से अभिन्न है ।

तारकाओं के विषय में हिन्दुओं की कल्पनाएँ भ्रम से रहित नहीं। वे केवल क्रियात्मक पर्यवेक्षण और गणना में थोड़े से निपुण हैं, और उन्हें स्थिर तारकाओं की गतियों की कुछ समझ नहीं। देखिए वराहमिहिर अपनी पुस्तक संहिता में कहता है—"रेवती से आरम्भ करके मृगशिरस् तक, छः नक्षत्रों में पर्यवेक्षण गणना के आगे रहता है, जिससे चन्द्रमा उनमें से प्रत्येक में गणना की अपेक्षा नेत्रदृष्टि के अनुसार पहले प्रवेश करता है।

विषुवों का अयन-चलन—वराहमिहिर अध्याय चार, श्लो० ७ से अवतरण।

"आर्द्रा से आरम्भ करके अनुराधा तक, बारह नक्षत्रों में अयन-चलन आधे नक्षत्र के बराबर है, जिससे पर्यवेक्षण के अनुसार, चाँद नक्षत्र के मध्य में है, परन्तु गणना के अनुसार वह नक्षत्र के प्रथम भाग में होता है।

"ज्येष्ठा से आरम्भ करके उत्तरभाद्रपदा तक, नौ नक्षत्रों में पर्यवेक्षण गणना से पीछे रह जाता है, जिससे चन्द्रमा उनमें से प्रत्येक में पर्यवेक्षण के अनुसार प्रविष्ट होता है, जब, गणना के अनुसार, वह अगले में जाने के लिए इसे छोड़ता है।"

तारकाओं के सम्बन्ध में हिन्दुओं की भ्रान्त कल्पनाओं के विषय में मेरी बात की पुष्टि, प्रथमोल्लिखित छः नक्षत्रों में से एक अलसरतान-अश्विनी के विषय में वराहमिहिर की टिप्पणी से, हो जाती है, यद्यपि कदाचित् स्वयं हिन्दुओं पर यह बात स्पष्ट नहीं; क्योंकि वह कहता है कि इसमें पर्यवेक्षण गणना से पहले है। अब अश्विनी के दो तारे, हमारे समय में, मेष राशि के दो तिहाई में (अर्थात्, १०—२० मेष राशि के बीच) हैं और वराहमिहिर का समय हमारे समय से कोई ५२६ वर्ष पूर्व था। इसलिए आप

ग्रन्थकार वराहमिहिर के वचन की आलोचना करता है।

किसी भी सिद्धान्त से स्थिर तारकाओं की गति (या विषुवों के अयन-चलन) का परिसंख्यान कीजिए, यह बात निश्चित है कि उसके समय में अश्विनी मेष राशि के एक-तिहाई से कम में न थे (अर्थात् वे १°—१०° मेष राशि से आगे विषुवों की पुरोगति में न आये थे)।

मान लीजिए कि उसके समय में, जैसा कि खण्डखाद्यक में वर्णित है, अश्विनी सचमुच मेष राशि के इस भाग में या इसके निकट थे। यह पुस्तक सूर्य और चन्द्र का परिसंख्यान पूर्णतया शुद्ध रूप में देती है। इसलिए हमें यह अवश्य कहना पड़ता है कि उस समय वह बात ज्ञात न थी जो अब ज्ञात है, अर्थात् आठ अंशों के अन्तर से तारे की प्रतीप गति। इसलिए, उसके समय में, पर्यवेक्षण गणना से आगे कैसे हो सकता था? क्योंकि चन्द्रमा, दो तारकाओं के साथ समागम के समय, पहले नक्षत्र का प्राय: दो तिहाई आगे ही पार कर चुका था। इसी उपमिति के अनुसार, वराहमिहिर के दूसरे कथनों की भी जाँच की जा सकती है।

नक्षत्र (चान्द्र स्थान) अपनी आकृतियों, अर्थात् तारामण्डल, के अनुसार, वे आप नहीं, छोटी या बड़ी जगह घेरते हैं, क्योंकि सभी नक्षत्र क्रान्तिवृत्त पर तुल्य स्थान घेरते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दुओं को इस बात का ज्ञान नहीं था, यद्यपि सप्तर्षि के विषय में हम उनकी इससे मिलती-जुलती कल्पनाएँ पहले ही बता चुके हैं। क्योंकि ब्रह्मगुप्त उत्तरखण्ड खाद्यक अर्थात् खण्डखाद्यक के संशोधन में कहता है—

क्रान्तिमण्डल पर प्रत्येक नक्षत्र तुल्य स्थान घेरता है।

कुछ नक्षत्रों का मान चन्द्रमा की मध्यम दैनिक गति से आधा अधिक है। उसके अनुसार उनका मान १९° ४५′ ५२″ १८‴ है। छः नक्षत्र हैं, अर्थात्

ब्रह्मगुप्त से अवतरण।

रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तरफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपदा। ये मिलकर ११८° ३५′ १३″ ४८‴ का स्थान घेरते हैं। अगले छः नक्षत्र छोटे हैं। उनमें से प्रत्येक चन्द्रमा की मध्यम दैनिक गति से आधा कम घेरता है। उसके अनुसार उनका मान ६° ३५′ १७″ २६‴ है। ये भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा, शतभिषज हैं। वे मिलकर ३९° ३१′ ४४″ ३६‴ का स्थान घेरते हैं। शेष पन्द्रह नक्षत्रों में से, प्रत्येक मध्यम दैनिक गति के बराबर घेरता है। इसके अनुसार यह १३° १०′ ३४″ ५२″ का स्थान घेरता है। वे मिलकर १९७° ३८′ ४३″ का स्थान घेरते हैं। नक्षत्रों के ये तीन समुदाय मिलकर ३५५° ४५′ ४१″ २४‴ का स्थान घेरते हैं जो कि पूर्ण चक्र ४° १४′ १८″ ३८‴ का अवशेष है, और यह अभिजित, अर्थात् 'गिरते हुए गरुड़' का स्थान है, जो कि छोड़ दिया गया है। मैंने इस विषय के निरूपण को नक्षत्रों पर अपने उपर्युक्त विशेष प्रबन्ध में पाठकों के लिए उपादेय बनाने का यत्न किया है।

स्थिर तारों की गति के विषय में हिन्दुओं के ज्ञान का अप्राचुर्य वराहमिहिर की संहिता के निम्नलिखित वचन से यथेष्ट रूप से प्रकट हो जाता है—"प्राचीनों की पुस्तकों में इस बात का उल्लेख है कि कर्कसंक्रान्ति आश्लेषा के मध्य में, और मकरसंक्रान्ति धनिष्ठा के मध्य में हुई थी। और यह बात उस समय के लिए शुद्ध है। आजकल कर्कसंक्रान्ति कर्क राशि के आरम्भ में, और मकरसंक्रान्ति मकर राशि के आरम्भ में होती है। यदि किसी को इसमें सन्देह हो, और वह मानता हो कि प्राचीनों का कथन सत्य है, हम जो कुछ कहते हैं वह ठीक नहीं, तो वह ऐसे समय में किसी समतल

वराहमिहिर-संहिता, तीसरा अध्याय १—३, से अवतरण।

पृष्ठ २४६

देश में जाय जब कि वह समझता हो कि कर्कसंक्रान्ति निकट है। वहाँ वह एक चक्र खींचे, और उसके मध्य में किसी वस्तु को रख दे जो उस समभू के लम्बरूप खड़ी हो। वह इसकी छाया के अन्त को किसी चिह्न से चिह्नित करे, और रेखा को जारी रक्खे यहाँ तक कि वह पूर्व या पश्चिम में चक्र की परिधि तक पहुँच जाय। अगले दिन भी वह उसी समय यही क्रिया फिर करे, और वही पर्यवेक्षण करे। तब जब वह देखे कि छाया का सिरा पहले चिह्न से दक्षिण की ओर को भटक गया है, तो जानना चाहिए कि सूर्य उत्तर की ओर को चला गया है और अभी अपने अयनान्तबिन्दु पर नहीं पहुँचा। परन्तु यदि वह देखे कि छाया का सिरा उत्तर की ओर को हटता है, तो वह जानता है कि सूर्य आगे ही दक्षिणतः चलना आरम्भ हो चुका है और आगे ही अपनी क्रान्ति से गुज़र चुका है। यदि मनुष्य इस प्रकार के पर्यवेक्षण को जारी रक्खे, और उससे क्रान्ति का दिन मालूम करे, तो वह देखेगा कि हमारे शब्द सत्य हैं।"

विषुवों के अयन-चलन का कर्ता।

यह वचन प्रकट करता है कि वराहमिहिर को स्थिर तारों की पूर्व की ओर की गति का कुछ ज्ञान न था। वह उनको, नाम की सदृशता से, स्थिर, अर्थात् न हिलनेवाले तारे समझता है, और अयन को पश्चिम की ओर चलता हुआ दिखलाता है। इस भावना का यह फल है कि उसने, नक्षत्रों के विषय में, दो बातों को आपस में गड़बड़ कर दिया है। इन दो के बीच अब हम, सन्देह को दूर करने, और विषय को सूक्ष्म रीति से संशोधित रूप में देने के लिए, यथोचित रूप से पहचान कर दिखायेंगे।

राशियों के क्रम में हम क्रान्तिमण्डल के उस बारहवें अंश से आरम्भ करते हैं जो दूसरी गति, अर्थात् विषुवों के अयन-चलन के

अनुसार भूमध्य रेखा और क्रान्तिवृत्त के परस्परच्छेद के विन्दु के उत्तर में है। उस अवस्था में, कर्कसंक्रान्ति सदैव चौथी राशि के आरम्भ में, और मकरसंक्रान्ति दसवीं राशि के आरम्भ में होती है। नक्षत्रों के क्रम से हम क्रान्तिवृत्त के उस सत्ताईसवें अंश से आरम्भ करते हैं जिसका सम्बन्ध पहली राशि के पहले से है। उस अवस्था में कर्कसंक्रान्ति सदैव सातवें नक्षत्र के तीन-चौथाई पर (अर्थात् नक्षत्र के ६००′ पर), और मकरसंक्रान्ति इकीसवें नक्षत्र के एक-चौथाई पर (अर्थात् नक्षत्र के २००′ पर) होती है। जब तक संसार है तब तक यह क्रम इसी प्रकार रहेगा।

अब, यदि, नक्षत्रों को विशेष राशियों द्वारा चिह्नित किया जाय, और इन राशियों के विशेष नामों से पुकारा जाय, तो नक्षत्र राशियों के साथ इकट्ठे घूमते हैं। राशियों के तारे, और नक्षत्रों के तारे, अतीतकाल में, क्रान्तिमण्डल के अधिक पहले (अर्थात् अधिक पश्चिमी) भागों को घेरे रहे हैं। उनसे चलकर वे उनमें आ गये हैं जिनको वे इस समय घेरे हुए हैं, और भविष्य में वे क्रान्तिमण्डल के और भी अधिक पूर्वी भागों में चले जायँगे, यहाँ तक कि समय पाकर वे सारे क्रान्तिमण्डल में से घूम जायँगे।

| हिन्दुओं के मतानुसार, आश्लेषा नक्षत्र के तारे कर्क के १८° में हैं। इसलिए, प्राचीन ज्योतिषियों द्वारा ग्रहण किये हुए विषुवों के अयनचलन के वेग के अनुसार, वे हमारे समय से १८०० वर्ष पूर्व चौथी राशि के ०° में थे, जब कि कर्क का तारामण्डल तीसरी राशि में था, जिसमें कि अयन भी था। अयन ने तो अपना स्थान नहीं छोड़ा, परन्तु तारामण्डल अन्यत्र चले गये हैं, और यह बात जो कुछ वराहमिहिर ने मान लिया है उसके ठीक विपरीत है। |

सत्तावनवाँ परिच्छेद

नक्षत्रों के सौर रश्मियों के नीचे से प्रकट होने पर, और उन प्रक्रियाओं और अनुष्ठानों पर जो कि हिन्दू लोग इन अवसरों पर करते हैं।

तारों और बालशशि के सौर उदय के परिसंख्यान के लिए हिन्दू-रीति, जैसा कि हम समझते हैं, वही है जो 'सिन्द हिन्द' नाम के पञ्चाङ्ग में वर्णित है। वे लोग सूर्य से तारे के अन्तर के अंशों को, जो उसके सौर उदय के लिए आवश्यक समझे गये हैं, कालांशक कहते हैं। गुर्रात-अलज़ीजात के लेखक के मतानुसार, वे ये हैं—सुहैल, अलयमानिया, अलवाक़िअ, अलअय्यूक़, अलसिमाकान, क़ल्ब-अलअ क़रब के लिए १३°; अलबुतैन, अलहक़्अ, अलनथरा, आश्लेषा, शतभिषज, रेवती के लिए २०°; दूसरों के लिए १४°,

दृश्यमान होने के लिए तारे का सूर्य से कितनी दूरी पर होना आवश्यक है।

यह बात प्रकट है कि, इस दृष्टि से, तारे तीन समूहों में बाँटे गये हैं। इनमें से पहले में वे तारे जान पड़ते हैं जिनको यूनानी लोगों ने पहले और दूसरे परिमाण के तारे गिना है, दूसरे समूह में तीसरे और चौथे परिमाण के तारे, और तीसरे में पाँचवें और छठवें परिमाण के तारे हैं।

पृष्ठ २४७

वराहमिहिर को यह वर्गीकरण अपने उत्तर-खण्डखाद्यक में देना चाहिए था, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। वह साधारण

वाक्यों में अपने आशय को प्रकट करता है और केवल इतना कहता है कि सभी नक्षत्रों के सौर उदयों के लिए सूर्य से १४° अन्तर आवश्यक है।

विजयनन्दिन् कहता है—"कुछ तारे ऐसे हैं जो न सूर्य की किरणों से ढाँपे जाते हैं और न सूर्य उनकी चमक को घटाता है; यथा अलअय्यूक, अलसिमाक, अलरामिह, दो गरुड़, धनिष्ठा, और उत्तरभाद्रपदा, क्योंकि उनका उतना अधिक उत्तरीय अक्ष है, और क्योंकि (द्रष्टा का) देश भी उतना अधिक अक्ष रखता है। कारण, अधिक उत्तरीय प्रदेशों में वे दोनों एक ही रात के आरम्भ तथा अन्त में दिखाई देते हैं, और कभी अन्तर्धान नहीं होते।"

विजयनन्दिन् से अवतरण।

अगस्त्य अर्थात् सुहैल के सौर उदय की गणना के लिए उनके पास विशेष रीतियाँ हैं। वे उसको पहले पहल उस समय देखते हैं जब सूर्य हस्त नक्षत्र में प्रवेश करता है, और जब सूर्य रोहिणी नक्षत्र में जाता है तब अगस्त्य उनकी दृष्टि से ओझल हो जाता है। पुलिस कहता है—"सूर्य के उच्च स्थान (Apsis) का दूना लो। यदि यह सूर्य के स्फुट स्थान के तुल्य हो, तो यह अगस्त्य के सौर अस्त का समय है।"

अगस्त्य के सौर उदय पर।

सूर्य का उच्च स्थान (Apsis), पुलिस के अनुसार, $२\frac{१}{३}$ राशियाँ है। इसका दूना चित्रा के १०° में जा पड़ता है, जोकि हस्त नक्षत्र का आरम्भ है। आधा उच्च स्थान वृषभ राशि के १०° पर पड़ता है, जो कि रोहिणी नक्षत्र का आरम्भ है।

उत्तर-खण्डखाद्यक में ब्रह्मगुप्त आगे लिखी बातों का प्रतिपादन करता है—

"सुहैल की स्थिति २७° मृगशिर है, इसका दक्षिणी अक्ष ७१ अंश है। इसके सौर उदय के लिए सूर्य से इसके आवश्यक अन्तर के अंश १२ हैं।

ब्रह्मगुप्त से अवतरण।

"मृगव्याध का स्थान २०° मृगशिर है, इसका दक्षिणी अक्ष ४० अंश है। इसके सौर उदय के लिए आवश्यक सूर्य से इसके अन्तर के अंश १३ हैं। यदि आप उनके चढ़ने का समय मालूम करना चाहते हैं, तो सूर्य को तारे के स्थान में कल्पना कीजिए। इस विशेष स्थान पर लग्न (Ascendens) को स्थिर कीजिए। जब सूर्य इस लग्न के अंश को पहुँचता है, तब तारा पहली बार दृष्टि-गोचर होता है।

"किसी तारे के सौर अस्त का समय मालूम करने के लिए, तारे के अंश में छः पूरी राशियाँ जोड़ दो। योगफल में से सूर्य से इसके उस अन्तर के अंश घटा दो जो इसके सौर उदय के लिए आवश्यक है, और अवशेष पर लग्न को स्थिर करो। तब, जब सूर्य लग्न के अंशों में प्रवेश करता है, वही समय इसके डूबने का है।"

संहिता नामक पुस्तक उन विशेष यज्ञों और प्रक्रियाओं का उल्लेख करती है जो विविध तारों के सौर उदयों पर की जाती हैं। अब हम उनको लिखेंगे, साथ ही उसका अनुवाद भी करेंगे जो गेहूँ की अपेक्षा भूसा अधिक है, क्योंकि हमने हिन्दुओं की पुस्तकों से पूरे-पूरे और ज्यों के त्यों अवतरण देना अपने लिए अपरिहार्य बनाया है।

विशेष तारों के सौर उदयों पर की जानेवाली प्रक्रियाओं पर।

वराहमिहिर कहता है—"जब आरम्भ में सूर्य उदय हुआ, और घूमते हुए अत्युच्च पर्वत विन्ध्य के उच्च स्थान में आकर ठहरा, तब

विन्ध्याचल ने उसके उच्च पद को स्वीकार नहीं किया, और, मानिता से प्रेरित होकर, वह, उसके कूच में बाधा देने और उसके रथ को अपने ऊपर से लाँघने से रोकने के लिए, उसकी ओर बढ़ा। विन्ध्याचल ऊँचा होकर स्वर्ग के पड़ोस और विद्याधर नामक आध्यात्मिक प्राणियों के निवास-स्थान तक जा पहुँचा। अब विद्याधर दौड़कर इस पर आ गये, क्योंकि वह सुरम्य था, और इसके उद्यान और गोचर-भूमियाँ मनोहर थीं, और वहाँ वे आनन्द से रहने लगे; उनकी पत्नियाँ इधर-उधर घूमती थीं, और उनके बच्चे एक दूसरे के साथ खेलते थे। जब उनकी पुत्रियों के श्वेत वस्त्रों के साथ पवन लगती थी तब वे लहराते हुए झण्डों के समान उड़ते थे।

वराहमिहिर-संहिता अ० १२ भूमिका, और श्लोक १--१८ से अगस्त्य और उसके लिए यज्ञ पर अवतरण।

इसकी दरियों में वनैले पशु और सिंह भ्रमर नामक जीवों के समूह के कारण गहरे काले देख पड़ते हैं। ये जीव उनके साथ चिमट जाते हैं, क्योंकि वे उनके शरीरों के मल को, जब वे मैले पशु के साथ एक दूसरे को मलते हैं, बहुत पसन्द करते हैं। जब वे मस्त हाथी पर आक्रमण करते हैं तब वह सिड़ी बन जाता है। वन्दर और रीछ विन्ध्य के शृङ्गों और उसकी ऊँची चोटियों पर चढ़े हुए देखे जाते हैं; मानों सहज ज्ञान से, उन्होंने स्वर्ग की दिशा को ग्रहण किया है। इसके जलाशयों पर तपस्वी लोग देखे जाते हैं, जो इसके फलों से ही अपना पोषण करके सन्तुष्ट हैं। विन्ध्य की और असंख्य हर्ष-दायक वस्तुएँ हैं।

पृष्ठ २४८

अब जब वरुण के पुत्र अगस्त्य (अर्थात् जल के पुत्र, सुहैल) ने विन्ध्य के इन सब व्यवहारों को देखा, तब उसने उसकी आकांक्षाओं में उसका साथी बनने के लिए अपने आपको सामने किया,

और उसे तब तक अपने ही स्थान में रहने के लिए कहा जब तक कि वह (अगस्त्य) लौटकर आवे और उस (विन्ध्य) को उस अन्धकार से मुक्त कर दे जो कि उस पर है।

श्लोक १—तब अगस्त्य समुद्र की ओर मुड़ा, और उसके जल को निगल गया, यहाँ तक कि उसका लोप हो गया। वहाँ विन्ध्याचल के निम्न भाग प्रकट हुए। मकर और अन्य जल-जन्तु इससे चिमट रहे थे। उन्होंने पर्वत को खुरच-खुरचकर उसे चीर डाला और इसमें खानें खोद दीं, जिनमें रत्न और मोती थे।

श्लोक २—उनसे,—फिर वृक्षों से—जो यद्यपि यह (जल) मन्द था उत्पन्न हो गये,—और सर्पों से—जो इसके उपरितल पर चक्करों में आगे और पीछे दौड़ते थे,—सागर अलंकृत हो गया।

श्लोक ३—पर्वत ने, उस हानि के बदले में जो सुहैल ने इसकी की है, वह अलङ्कार पाया है जिसको इसने उपार्जन किया है, जिससे देवताओं ने अपने लिए मुकुट और किरीट बनवाये हैं।

श्लोक ४—इसी प्रकार सागर ने, गहराई में उसके जल के डूब जाने के बदले में, मछलियों का इसमें इधर-उधर घूमते समय चमकना, इसकी तली पर रत्नों का प्रादुर्भाव, और इसके अवशिष्ट जल में साँपों और अजगरों का आगे और पीछे दौड़ना पाया है। जब मछलियाँ और शङ्ख तथा मोतियों की सीपियाँ, इसके ऊपर आ जाती हैं, तो आप सागर को तालाब समझेंगे, जिनके पानी का उपरिभाग शरद् और शिशिर की ऋतुओं में श्वेत कमलों से ढँका हुआ है।

श्लोक ५—आप इस जल और आकाश में मुशकिल से भेद कर सकते हैं, क्योंकि जिस प्रकार आकाश तारों से अलंकृत है वैसे ही सागर रत्नों से है; सूर्य से निकलनेवाली किरणों के धागों के सदृश अनेक सिरोंवाले साँपों से; इसके भीतर के स्फटिक से

जो चन्द्रमा के पिण्ड के सदृश है, और श्वेत कुहरे से जिसके ऊपर आकाश के बादल उठते हैं, विभूषित है।

श्लोक ६— मैं उसकी प्रशंसा कैसे न करूँ जिसने इस महान् कार्य को किया है, जिसने देवों को मुकुटों की सुन्दरता दिखलाई है, और सागर तथा विन्ध्याचल को उनके लिए एक धनागार बनाया है!

श्लोक ७—वह सुहैल है, जिससे जल पार्थिव मलिनता से रहित होता है, जिसके साथ पुण्यात्मा मनुष्य के हृदय की पवित्रता संयुक्त है, अर्थात् जो दुरात्माओं के संसर्ग में उसको अभिभूत करनेवाले मल से रहित है।

श्लोक ८—जब कभी अगस्त्य उदय होता है और उसके समय में नदियों और उपत्यकाओं में जल बढ़ जाता है, तब आप नदियों को—जो कुछ उनके जल के उपरिभाग पर है—नाना प्रकार के श्वेत और रक्त कमल और काई, वह सब कुछ जो उनमें तैरता है, मुर्ग़ाबियाँ और हंस (ये सब)—बलि के रूप में, चन्द्रमा को अर्पण करते देखते हैं, जिस प्रकार एक युवती उन (नदियों) में प्रवेश करते समय गुलाब के फूल और उपहार भेंट करती है।

श्लोक ९—दो किनारों पर खड़े लाल हंसों के जोड़ों, और मध्य में कभी आगे और कभी पीछे तैरते समय गाती हुई मुर्ग़ाबियों की उपमा किसी सुन्दरी के दो ओष्ठों से देते हैं, हर्ष से हँसते समय जिसके दाँत दिखाई देते हैं।

श्लोक १०—और भी, हम, श्वेत कमलों के बीच खड़े, कृष्ण कमल, और इसकी सुगन्धि की महक की लालसा से मधुमक्खियों के उसकी ओर दौड़ने की उपमा सुन्दरी की आँख के मण्डल की सफ़ेदी में उसकी पुतली की कालिमा के साथ देते हैं जो भौंहों के बालों से घिरी हुई चोचले और रसीलेपन से घूमती है।

श्लोक ११—तब, जब आप उन तालाबों को उस समय देखेंगे, जब उन पर चन्द्रमा की ज्योत्स्ना पड़ रही हो, जब शशि उनके धुँधले पानी को प्रकाशित कर रहा हो, जब श्वेत कमल—जिसमें मधु-मक्खियाँ बन्द थीं—खुल गया हो, तब आप उन्हें एक ऐसी सुन्दरी का मुखमण्डल समझेंगे जो सफेद पुतली से काली आँख के साथ देखती है।

श्लोक १२—जब वर्षाकाल की जल-धाराओं का प्रवाह साँपों, विष और मैल को बहाता हुआ इनमें गिरता है, तब उनके ऊपर सुहैल के उदय होने से उनकी अपवित्रता दूर हो जाती है और वे अपक्रिया से बच जाती हैं।

श्लोक १३—क्योंकि मनुष्य के द्वार के सामने सुहैल का एक पल का चिन्तन उसके दण्डनीय पापों को मिटा देता है, इसलिए उसका स्तुति-गान करनेवाली जिह्वा की वाग्मिता कितनी अधिक हृदयग्राही होगी, जब कि पाप को दूर करना और दिव्य पुरस्कार का उपार्जन ही काम हो! सुहैल के उदय होने पर कौन सा याग करना आवश्यक है इसका उल्लेख पूर्व ऋषियों ने किया है। इसका बखान करके राजाओं को एक उप-हार दूँगा, और इस बखान को मैं उस (परमेश्वर) पर बलिदान कर दूँगा। अतएव मैं कहता हूँ—

पृष्ठ २४६

श्लोक १४—उसका उदय उस समय होता है जब सूर्य का कुछ प्रकाश पूर्व से प्रकट होता है, और रात्रि का अन्धकार पश्चिम में इकट्ठा हो जाता है। उसके प्रकट होने के आरम्भ को देखना कठिन है, और न प्रत्येक मनुष्य जो उसकी ओर देखता है इसको समझता है। इसलिए उस समय ज्योतिषी से पूछो कि यह किस दिशा से उदय होता है।

श्लोक १५, १६—इस दिशा के अभिमुख अर्घ नामक याग करो, और, गुलाब तथा सुगन्धयुक्त पुष्प जो देश में उत्पन्न होते हैं, जो कुछ तुम्हारे पास हो उसे पृथ्वी पर बिछा दो। सोना, गहने, समुद्र के रत्न जो कुछ तुम योग्य समझो उन पर रख दो, और धूप, कुंकुम, चन्दन, कस्तूरी और कर्पूर, एक बैल और एक गाय, और अनेक भोजन तथा मिठाइयाँ भेंट करो।

श्लोक १७—विदित हो कि जो मनुष्य पुण्य सङ्कल्प, दृढ़ विश्वास, और श्रद्धा के साथ निरन्तर सात वर्ष तक यह करता है, उसका उन वर्षों की समाप्ति पर, यदि वह क्षत्रिय है, सारी पृथ्वी और इसको चारों ओर से घेरनेवाले सागर पर अधिकार हो जाता है।

श्लोक १८—यदि वह ब्राह्मण है तो उसकी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, वह वेद को सीख लेता है, सुन्दरी भार्या को प्राप्त करता है, और उससे सुशील सन्तान पाता है। यदि वह वैश्य है तो बहुत सी स्थावर सम्पत्ति और यशस्कर ऐश्वर्य को प्राप्त होता है। यदि वह शूद्र है तो वह धन को प्राप्त करेगा। वे सब स्वास्थ्य और अनामय, अपकृतियों का बन्द हो जाना, और फल की सिद्धि प्राप्त करते हैं।"

सुहैल के उपायन के विषय में वराहमिहिर का कथन यही है। इसी पुस्तक में वह रोहिणी के विषय में भी नियम देता है—

"गर्ग, वसिष्ठ, काश्यप और पराशर ने अपने शिष्यों को कहा कि मेरु पर्वत स्वर्ण के तख़्तों का बना हुआ है। उनमें से दो वृक्ष उगे हैं जिन पर संख्यातीत मीठी सुगन्धिवाले पुष्प और मुकुल हैं। मधुमक्खियाँ कर्ण-सुखद भिनभिनाहट के साथ उनको घेर रही हैं, और देवों की अप्सराएँ उल्लासजनक स्वर-

रोहिणी पर वराहमिहिर संहिता अध्याय २४ श्लोक १—३७।

संयोगों के साथ, मधुर बाजों और अक्षय्य आनन्द के साथ, आगे-पीछे फिर रही हैं। यह पर्वत स्वर्ग के क्रीड़ावन, नन्दन वन के मैदान में है। ऐसा ही वे कहते हैं। एक समय बृहस्पति वहाँ था, तब नारद ऋषि ने उससे रोहिणी के पूर्वचिह्नों के विषय में पूछा, जिस पर बृहस्पति ने उसको उनकी व्याख्या करके समझाई। मैं यहाँ, जहाँ तक आवश्यक है, उनका बखान करूँगा।

श्लोक ४—आषाढ़ के कृष्ण पक्ष में मनुष्य पर्यवेक्षण करे कि क्या चन्द्रमा रोहिणी में पहुँचता है। वह नगर के उत्तर या पूर्व में एक उच्च स्थान ढूँढ़े। इस स्थान को राजा के प्रासादों का अधिष्ठाता ब्राह्मण अवश्य जाय। वह वहाँ अग्नि प्रज्वलित करे और उसके गिर्द विविध तारों और नक्षत्रों का चित्र खींचे। वह वहाँ उनमें से प्रत्येक के लिए जो कुछ आवश्यक है उसका पाठ करे, और प्रत्येक को गुलाब के फूलों, जौ और तेल में से उसका भाग दे, और इन वस्तुओं को अग्नि में डालकर प्रत्येक ग्रह को अनुकूल बनावे। अग्नि के गिर्द चारों ओर यथासम्भव बहुत से रत्न और मधुरतम जल से भरे हुए लोटे हों, और जो भी अन्य वस्तुएँ फल, बूटियाँ, वृक्षों की टहनियाँ और पेड़ों की जड़ें उस समय पास हों, रक्खी हों। फिर, वह वहाँ घास बिछावे जो उसके रात्रि-चतुर्थांशों के लिए एक दरान्ती के साथ काटी गई हो। तब वह भिन्न-भिन्न प्रकार के बीज और अनाज ले, उनको जल के साथ धोवे, उनके मध्य में सोना रक्खे, और उनको एक लोटे में डाल दे। वह उसे एक विशेष दिशा की ओर रक्खे, और होम करे, अर्थात् जौ और तेल आग में डाले और साथ ही वेद के विशेष मन्त्र पढ़े जो भिन्न-भिन्न

पृष्ठ २१० \ दिशाओं से लगाव रखते हैं, यथा वरुण-मन्त्र, वायव-मन्त्र, और सोम-मन्त्र। वह एक दण्ड, अर्थात

एक लम्बा और ऊँचा भाला, खड़ा करता है, जिसकी चोटी से दो बद्धियाँ लटका करती हैं, एक तो भाले के बराबर लम्बी होती है और दूसरी उससे तिगुनी। उसे यह सब काम चन्द्रमा के रोहिणी में पहुँचने के पूर्व ही कर लेना चाहिए, इसलिए कि जब वह (चाँद) उसमें पहुँचे, वह पवन के चलने के समयों और साथ ही उसकी दिशाओं का निश्चय करने के लिए तैयार हो। उसे इसका पता भाले की बद्धियों के द्वारा होता है।।

श्लोक १०—यदि उस दिन पवन चार दिशाओं के मध्य में से चलती है, तो इसे शुभ समझा जाता है; यदि वह उनके बीच में की दिशाओं से चलती है, तो यह अशुभ समझी जाती है। यदि पवन एक ही दिशा में स्थिर, प्रबल और अपरिवर्तित रहती है, तो यह भी शुभ ही समझा जाता है। इसके चलने का समय दिन के आठ भागों से मापा जाता है, और प्रत्येक आठवाँ भाग एक मास के आधे के अनुरूप समझा जाता है।

श्लोक ११—जब चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र को छोड़े, तुम एक विशेष दिशा में रक्खे हुए बीजों को देखो। उनमें से जिसमें अंकुर फूटा हुआ है वह उस वर्ष प्रचुरता से उगेगा।

श्लोक १२—जब चन्द्रमा रोहिणी के निकट पहुँचे, तो तुम्हें ध्यान से देखते रहना चाहिए। यदि आकाश निर्मल है, उसमें किसी प्रकार का क्षोभ नहीं; यदि पवन पवित्र है और कोई विनाशक संक्षोभ उत्पन्न नहीं करती; यदि पशुओं और पक्षियों के स्वरसंयोग रम्य हैं, तो यह शुभ समझा जाता है। अब हम मेघों पर विचार करेंगे।

श्लोक १३, १४—यदि वे उपत्यका (बल ?) की शाखाओं के सदृश लहराते हैं, और उनमें से बिजली की कौंधें आँख के सामने प्रकट होती हैं; यदि वे इस प्रकार खुलते हैं जिस प्रकार

श्वेत कमल खिलता है; यदि बिजली सूर्य की किरणों के सदृश मेघ को घेरती है; यदि बादल का रङ्ग किंशुक का, या मधुमक्खियों का, या कुंकुम का है;

श्लोक १५—१९—यदि आकाश मेघों से आच्छादित है, और उनमें से स्वर्ण के सदृश बिजली कौंधती है; यदि इन्द्रधनुष अपने गोल रूप को सायंकाल के सन्धिप्रकाश की लालिमा के सदृश किसी वस्तु से, और दुलहिन के वस्त्रों के रङ्गों के सदृश रङ्गों से रँगा हुआ दिखलाता है; यदि मेघनाद मोर के, या उस पक्षी के चीत्कार के सदृश होता है जो बरसते हुए मेंह के सिवा और कहीं से पानी नहीं पी सकता, जो तब हर्ष से उसी प्रकार चिल्लाता है, जिस प्रकार मेंढक परिपूर्ण जलाशयों में प्रसन्नता के कारण प्रचण्डता से टर्राता है; यदि तुम आकाश को छोटे-छोटे पेड़ों के जङ्गल में, जिसके विविध भागों में आग धधक रही है, हाथियों और भैंसों के प्रकोप के समान कोपायमान देखो; यदि बादल हाथियों के अङ्गों के समान हिलते हैं, यदि वे मोतियों, शंखों, हिम और वरन् चन्द्रमा की किरणों की चमक के सदृश चमकते हैं, मानो चन्द्रमा ने मेघों को दीप्ति और आभा उधार दे दी हो;

श्लोक २०—यह सब अधिक वर्षा और प्रचुर वृद्धि द्वारा सुख को दिखलाता है।

श्लोक २५—जिस समय ब्राह्मण पानी के लोटों के मध्य में बैठा हो, तो तारों का गिरना, बिजली का कौंधना, मेघ का गर्जन, आकाश में लाल चमक, आँधी, भूकम्प, ओलों का बरसना, और वन-पशुओं का चिल्लाना, ये सब बातें अशुभ समझी जाती हैं।

श्लोक २६—यदि उत्तर दिशा में, लोटे में अपने आप, या छिद्र से, या टपकने से जल कम हो जाय, तो श्रावण मास में वर्षा नहीं

होगी। यदि पूर्व दिशा में, लोटे में जल कम हो जाय, तो भाद्रपद में कोई वर्षा नहीं होगी। यदि दक्षिण दिशा में यह लोटे में कम हो जाय, तो आश्वयुज में कोई वर्षा न होगी; और यदि पश्चिम दिशा में लोटे में जल घट जाय, तो कार्तिक में कोई वृष्टि न होगी। यदि लोटों से पानी न घटे, तो ग्रीष्म-वृष्टि पूर्ण रूप से होगी।

श्लोक २७—लोटों से वे भिन्न-भिन्न वर्णों के विषय में पूर्वचिह्न भी निकालते हैं। उत्तरी लोटे का लगाव ब्राह्मण से, पूर्वी का क्षत्रिय से, दक्षिणी का वैश्य से, और पश्चिमी का शूद्र से है। यदि लोगों के नाम और विशेष अवस्थाएँ लोटों पर खोदकर लिखी हों, तो उनके साथ जो भी घटना घटे—यदि, उदाहरणार्थ, वे टूट जायँ या उनमें पानी घट जाय—तो यह उन लोगों या अवस्थाओं से सम्बन्ध रखनेवाली किसी बात का पूर्वचिह्न समझा जाता है।"

"स्वाती और श्रवण नक्षत्रों से सम्बन्ध रखनेवाले नियम वैसे ही हैं जैसे कि रोहिणी के हैं। जब तुम आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष में हो, जब चन्द्रमा दो अषाढ़ा नक्षत्रों, अर्थात् पूर्व-अषाढ़ा या उत्तर-अषाढ़ा, में से किसी एक में हो, तो जैसे तुमने रोहिणी के लिए एक स्थान चुना था वैसे ही एक स्थान चुनो, और सोने का एक तराज़ू लो। यही सबसे उत्तम है। यदि यह चाँदी का है, तो मध्यम है। यदि यह चाँदी का नहीं, तो इसे खैर नामक लकड़ी का, जो खदिर-वृक्ष (अर्थात् acacia catechu) प्रतीत होता है, या ऐसे बाण के सिरे का जिसके साथ आगे ही एक मनुष्य मारा जा चुका है, बनाओ। इसकी डण्डी की लम्बाई के लिए छोटा से छोटा मान वितस्ति है। "यह जितनी

स्वाती और श्रवण पर संहिता अध्याय २५, श्लोक १।

पृष्ठ २५१
संहिता, अध्याय २६, श्लोक ६।

अधिक लम्बी हो, उतना ही अच्छा है, जितनी यह छोटी होगी, उतनी ही यह कम अनुकूल है।

श्लोक ६—तराज़ू की चार डोरियाँ होती हैं, जिनमें से प्रत्येक १० कला लम्बी होती है। इसके दो पलड़े ६ कला के परिमाण के पटुवे के वस्त्र के होते हैं। इसके दो बाट सोने के होते हैं।

श्लोक ७, ८—इससे प्रत्येक चीज़ की—कुँवों के पानी, सरोवरों के पानी, नदियों के पानी, हाथी के दाँतों, घोड़ों के बालों, स्वर्ण-मुद्राओं, जिन पर राजाओं के नाम लिखे हुए हों, और दूसरी धात के टुकड़ों, जिन पर दूसरे लोगों के नाम, या पशुओं, वर्षों, दिनों, दिशाओं या देशों के नाम बोले गये हैं—समान मात्राएँ तोलो।

श्लोक १—तोलते समय पूर्व की ओर मुड़ो, बाट दायें पलड़े में और जो वस्तुएँ तोलनी हैं वे बायें पलड़े में रक्खो। उनके ऊपर मन्त्र पढ़ो और तुला से कहो—

श्लोक २—'तू शुद्ध है। तू देव है, और देव की पत्नी है। तू ब्रह्मा की पुत्री सरस्वती है, तू यथार्थ और सत्य का प्रकाश करती है। तू शुद्धता की आत्मा से भी अधिक शुद्ध है।

श्लोक ३—तू सूर्य और ग्रहों के सदृश है जो पूर्व से पश्चिम को एक ही मार्ग पर घूमते हैं।

श्लोक ४—तेरे द्वारा संसार की व्यवस्था सीधी रहती है, और सभी देवों और ब्राह्मणों का सत्य और यथार्थता तुझमें संयुक्त है।

श्लोक ५—तू ब्रह्मा की पुत्री है; और कश्यप तेरे घर का एक पुरुष है।'

श्लोक १—तोलने की यह क्रिया सायंकाल होनी चाहिए। तब वस्तुओं को अलग रख दो, और दूसरे दिन सबेरे उन्हें फिर

तोलो। जिस वस्तु का भार बढ़ गया है वह उस वर्ष में पनपेगी और बढ़ेगी; जो घट गई है वह बुरी होगी और पीछे जायगी।

परन्तु तोलने का यह काम केवल अषाढ़ा में ही नहीं, वरन् रोहिणी और स्वाती में भी करना चाहिए।

श्लोक ११—यदि लौंद का वर्ष है, और तोलने की क्रिया संयोग से अधिक मास में होती है, तो उस वर्ष में तोलने का काम दुबारा किया जाता है।

श्लोक १२—यदि पूर्वलक्षण अभिन्न हैं, तो जिस बात की वे भविष्य-वाणी करते हैं वही होगा। यदि वे अभिन्न नहीं थे, तो रोहिणी के पूर्व लक्षणों का अवलोकन करो, क्योंकि इसका प्राधान्य है।"

अट्ठावनवाँ परिच्छेद

—:o:—

सागर में जुआर-भाटा कैसे आता है।

इस कारण के विषय में कि सागर का जल सदा ऐसा ही जैसा कि यह है क्यों रहता है, हम मत्स्यपुराण से निम्नलिखित वचन देते हैं—"आरम्भ में सोलह पर्वत थे। उनके पङ्ख थे और वे उड़कर आकाश में ऊँचा उठ सकते थे। परन्तु राजा इन्द्र की किरणों ने उनके पङ्खों को जला दिया, जिससे वे पङ्खहीन होकर सागर के आस-पास कहीं गिर पड़े। उनमें से चार-चार दिङ्निर्णय यन्त्र के प्रत्येक बिन्दु में गिरे—पूर्व में, ऋषभ, बलाहक, चक्र, मैनाक; उत्तर में, चन्द्र, कङ्क, द्रोण, सुह्म; पश्चिम में, वक्र, वध्र, नारद, पर्वत; दक्षिण में, जीमूत, द्रविण, मैनाक, महाशैल (?)। पूर्वी पर्वतों के तीसरे और चौथे के बीच संवर्तक अग्नि है, जो सागर के जल को पीती है। यदि यह न हो तो सागर भर जाय, क्योंकि नदियाँ सदैव इसमें गिरती रहती हैं।

मत्स्यपुराण से अवतरण।

"यह अग्नि उनके और्व नामक एक राजा की आग है। उसे राज्य अपने पिता से दाय में मिला था। उसका पिता भ्रूणावस्था में ही मार डाला गया था। जब और्व का जन्म हुआ और बड़े होकर उसने अपने पिता का इतिहास सुना, तब वह देवों से क्रुद्ध हो गया, और उनको मारने के लिए उसने अपनी तलवार निकाली; क्योंकि, यद्यपि संसार उनका पूजन करता था और यद्यपि उनका संसार से समीप का संसर्ग था,

राजा और्व की कथा।

तो भी उन्होंने संसार की संरक्षकता का परित्याग किया था। इस पर देवों ने उसके सामने दीनता स्वीकार की और उसे मनाने का यत्न किया, यहाँ तक कि उसने क्रोध छोड़ दिया। तब वह उनसे बोला—'परन्तु मैं अपनी क्रोधाग्नि को क्या करूँ?' और उन्होंने उसे इसको समुद्र में फेंक देने का परामर्श दिया। यह वही आग है जो समुद्र के पानी को सुखाती है। दूसरे लोग कहते हैं—'नदियों का जल समुद्र को इसलिए नहीं बढ़ाता, क्योंकि राजा इन्द्र मेघ के रूप में सागर को ऊपर उठाता, और वर्षा के रूप में नीचे भेजता है'।"

पृष्ठ २५२

मत्स्यपुराण फिर कहता है—"चन्द्रमा का कृष्ण अंश, जो शशलक्ष, अर्थात् ख़रगोश का आकार कहलाता है, चन्द्रमा के प्रकाश से उसके पिण्ड पर प्रतिबिम्बित उपर्युक्त सोलह पर्वतों के रूप की प्रतिच्छाया है।"

चन्द्रमा में मनुष्य

विष्णु-धर्म्म कहता है—"चन्द्रमा शशलक्ष इसलिए कहलाता है, क्योंकि उसके पिण्ड का गोला जलमय है, जो मुकुर के सदृश पृथ्वी का आकार प्रतिबिम्वित करता है। पृथ्वी पर भिन्न-भिन्न रूपों के पर्वत और वृक्ष हैं जो शश के आकार के रूप में चन्द्रमा में प्रतिबिम्बित होते हैं। यह मृगलाञ्छन, अर्थात् मृग का रूप भी, कहलाता है; क्योंकि कुछ लोग चन्द्रमा के मुख पर काले भाग की तुलना मृग के आकार से करते हैं"।

नक्षत्रों को वे प्रजापति की पुत्रियाँ बताते हैं, जिनके साथ कि चन्द्रमा का विवाह हुआ है। वह रोहिणी पर विशेष प्रेम रखता था, और उसे दूसरों से अच्छा समझता था। अब उसकी बहनों ने, मत्सरता के वशीभूत होकर, चन्द्रमा की शिकायत अपने पिता प्रजापति से की। प्रजा-

चन्द्रमा के कोढ़ की कथा।

पति ने उनमें शान्ति बनाये रखने का यत्न किया, और चन्द्रमा को उपदेश किया, परन्तु उसे सफलता न हुई। तब उसने चन्द्रमा को शाप दिया (कृमिभुक्त), जिसके फल से उसके मुख पर कोढ़ हो गया। अब चन्द्रमा ने अपने किये पर पश्चात्ताप किया, और खिद्यमान होकर प्रजापति के पास आया। प्रजापति ने उससे कहा—"मैं एक ही बात कहता हूँ, और इसको मेटा नहीं जा सकता, परन्तु मैं तेरी लज्जा को प्रत्येक मास में आधे समय के लिए ढक दिया करूँगा।" इस पर चन्द्रमा ने प्रजापति से कहा—"परन्तु अतीत के पाप का चिह्न मुझ पर से कैसे पोंछा जायगा?" प्रजापति ने उत्तर दिया—"अपनी पूजा के लिए महादेव के लिङ्ग की मूर्ति की स्थापना करने से।" चन्द्रमा ने ऐसा ही किया। जो लिङ्ग उसने स्थापित किया वह सोमनाथ था, क्योंकि सोम का अर्थ चन्द्रमा और नाथ का अर्थ स्वामी है, जिससे सारे शब्द का अर्थ चन्द्रमा का स्वामी होता है। इस मूर्त्ति को राजा महमूद ने—परमात्मा उस पर दया रक्खे—सन् ४१६ हिजरी में नष्ट कर दिया था। उसने आज्ञा दी कि मूर्ति का उपरिभाग तोड़ डाला जाय, और अवशेष को, उसके सभी सुनहले आच्छादनों और भूषणों, रत्नों और गुलकारीवाले परिधानों समेत, उठाकर उसके निवास-स्थान ग़ज़नी में ले जाया जाय। इसका कुछ अंश, चक्रस्वामिन् नामक काँसे की मूर्त्ति सहित, जो कि थानेशर से लाई गई थी, नगर के घुड़दौड़ के चक्कर में फेंक दिया गया है। सोमनाथ की मूर्त्ति का एक दूसरा टुकड़ा ग़ज़नी की मसजिद के द्वार के आगे पड़ा है, जिस पर लोग मैल और गीलापन दूर करने के लिए अपने पैरों को मलते हैं।

सोमनाथ की मूर्त्ति

लिङ्ग महादेव की मूत्रेन्द्रिय की मूर्त्ति है। मैंने इसके विषय में यह कथा सुनी है—"एक ऋषि ने जब महादेव को उसकी स्त्री सहित देखा तो उसे महादेव पर संदेह हो गया और उसने उसे शाप दिया कि वह लिङ्गहीन हो जाय। तत्काल उसकी मूत्रेन्द्रिय गिर पड़ी, और ऐसा हो गया मानों पोंछ डाली हो। परन्तु तत्पश्चात् ऋषि की स्थिति ऐसी हो गई जिसमें वह महादेव की निर्दोषता के चिह्नों को प्रतिष्ठित और आवश्यक प्रमाणों द्वारा निश्चित कर सकता था। जो सन्देह उसके मन को व्यथित कर रहा था वह दूर हो गया, और वह उससे बोला—'मैं तेरे खोये हुए अङ्ग की मूर्त्ति को मनुष्यों के लिए पूजा का विषय बनाकर तेरा बदला चुका दूँगा। वे उसके द्वारा परमेश्वर का मार्ग पायँगे और उसके समीप आयँगे'।"

लिङ्ग की उत्पत्ति।

लिङ्ग की बनावट के विषय में वराहमिहिर कहता है—"इसके लिए एक निर्दोष पत्थर चुनकर उसमें से उतना लम्बा ले लो जितना कि तुम मूर्त्ति को बनाने की इच्छा रखते हो। इसको तीन भागों में बाँटो। इसका सबसे निचला भाग चतुर्भुज है, मानों यह एक घन या चतुर्भुज स्तम्भ हो। बीच का भाग अष्टकोण है, जिसका पृष्ठतल चार चतुष्कोण स्तम्भों में विभक्त है। ऊपर का तीसरा भाग गोल है, इस प्रकार गोल किया हुआ है कि वह पुरुष की मूत्रेन्द्रिय की गुलथी के सदृश है।

वराहमिहिर के अनुसार लिङ्ग की रचना। बृहत्संहिता अ० ५८ श्लो० ५३

श्लोक ५४—मूर्ति को स्थापित करने के लिए, चतुर्भुज तृतीयांश को भूमि के भीतर रख दो, और अष्टकोण तृतीयांश के लिए एक ढक्कन बनाओ, जो कि पिण्ड कहलाता है। यह बाहर से चतुर्भुज परन्तु साथ ही ऐसा होता है कि भूमि के भीतर के चतुर्भुज तृती-

यांश पर भी ठीक आ जाता है। परन्तु भीतर की ओर का अष्टकोण आकार उस मध्यवर्ती तृतीयांश पर ठीक आने के लिए है जो भूमि से बाहर निकला रहता है। गोलमोल तृतीयांश ही अकेला बिना ढक्कन के होता है।"

पृष्ठ २१३

वह और कहता है—

श्लोक ५५—"यदि तुम गोल भाग को बहुत छोटा या बहुत पतला बनाओगे, तो इससे देश की हानि होगी और जिन प्रदेशों के अधिवासियों ने इसे बनाया था उन पर विपत्ति आयगी। यदि यह भूमि में पर्याप्त रूप से गहरा न जाय, या बहुत थोड़ा भूमि से बाहर रहे, तो इससे लोग बीमार पड़ जाते हैं। जब यह बन रहा हो, और इसे मेख से ठोका जाय, तो शासक और उसका परिवार नष्ट हो जायगा। यदि एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते हुए इसे चोट लगे, और चोट का उस पर चिह्न रह जाय, तो शिल्पी नष्ट हो जायगा, और उस देश में विनाश और व्याधियाँ फैलेंगी।"

अध्याय ६० श्लोक ६

सिन्ध देश के दक्षिण-पश्चिम में यह मूर्ति हिन्दुओं की पूजा के लिए नियत मन्दिरों में बहुधा मिलती है, परन्तु सोमनाथ इन स्थानों में सबसे प्रसिद्ध था। प्रतिदिन वहाँ गङ्गा-जल का एक लोटा और काश्मीर से फूलों की एक टोकरी आती थी। लोगों का विश्वास था कि सोमनाथ का लिङ्ग लोगों की प्रत्येक बद्धमूल व्याधि को शान्त और प्रत्येक हताश और असाध्य रोग को चङ्गा कर देता है।

सोमनाथ की मूर्त्ति की पूजा।

सोमनाथ विशेष रूप से इतना प्रसिद्ध क्यों हो गया है इसका कारण यह है कि यह मल्लाहों का बन्दर स्थान और उन लोगों के

लिए ठहरने की जगह थी जो ज़ुश्च देशान्तर्गत सुफ़ाला और चीन के बीच आगे और पीछे जाया करते थे।

अब भारतीय महासागर में जुआर और भाटा के विषय में, जिनमें से भाटा अर्ण (?) और जुआर वुहर (?) कहलाता है, हमारा कथन यह है कि, सामान्य हिन्दुओं के मतानुसार, महासागर में वड़वानल नाम की एक आग है, जो सदैव धधकती रहती है। इस आग के साँस खींचने और वायु के कारण इसके ऊपर को उड़ने से जुआर होता है, और आग के साँस बाहर निकालने और वायु के कारण इसके ऊपर का उड़ना बन्द हो जाने से भाटा होता है।

जुआर-भाटा के कारण के विषय में लोगों का विश्वास।

हिन्दुओं से यह सुनने के अनन्तर कि समुद्र में एक ऐसा राक्षस है जिसके श्वासोच्छ्वास से जुआर भाटा होता है, मानी इसी प्रकार के एक विश्वास पर पहुँचा है।

सुशिक्षित हिन्दू जुआर-भाटे के दैनिक रूप का निश्चय चन्द्रमा के उदय और अस्त होने से, और मासिक रूपों का चन्द्रमा के बढ़ने और घटने से करते हैं; परन्तु दोनों प्राकृतिक घटनाओं का भौतिक कारण वे नहीं जानते।

जुआर-भाटे से ही सोमनाथ का यह नाम (अर्थात्, चन्द्रमा का स्वामी) हुआ है; क्योंकि सोमनाथ का पत्थर (या लिङ्ग) पहले पहल सागर-तट पर, सरस्वती नदी के मुहाने से तीन से कुछ कम मील पर पश्चिम को, वारोई के सुवर्ण-दुर्ग के पूर्व में,—जो वासुदेव के लिए निवास-स्थान के रूप में प्रकट हुआ था, उस स्थान से बहुत दूर नहीं जहाँ वासुदेव और उनका परिवार मारा गया था, और जहाँ वे जलाये गये थे—स्थापित किया गया था। प्रत्येक बार

सोमनाथ की पवित्रता का मूल।

जब चन्द्रमा उदय और अस्त होता है, सागर का जल उमड़कर प्रस्तुत स्थान को ढक लेता है। फिर, जब चन्द्रमा मध्याह्न और मध्यरात्रि के याम्योत्तर वृत्त पर पहुँचता है, तब भाटा के कारण पानी पीछे हट जाता है, और वह स्थान पुनः व्यक्त हो जाता है। इस प्रकार चन्द्रमा सतत रूप से मूर्ति की सेवा और स्नान में लगा रहता था। इसलिए वह स्थान चन्द्रमा के लिए पवित्र समझा जाता था। वह दुर्ग, जिसमें वह प्रतिमा और उसके ख़ज़ाने थे, प्राचीन नहीं था परन्तु केवल कोई एक सौ वर्ष पहले बनाया गया था।

विष्णुपुराण से अवतरण।

विष्णुपुराण कहता है—"ज्वार के पानी की अधिकतम ऊँचाई १५०० कला है;" यह कथन कुछ अतिमात्र प्रतीत होता है; क्योंकि यदि लहरें और सागर की मध्यम ऊँचाई साठ और सत्तर गज़ के बीच तक उठती, तो किनारों और खाड़ियों में जितनी कि कभी देखी गई है उससे बहुत अधिक बाढ़ आती। फिर भी यह सर्वथा असम्भव नहीं, क्योंकि यह प्रकृति के किसी नियम के कारण अपने आप में असाध्य नहीं।

बारोई का स्वर्ण-दुर्ग। मालद्वीप और लकाद्वीप के समान्तर। पृष्ठ २.९४

यह बात कि जिस दुर्ग का अभी उल्लेख हुआ है वह सागर से आविर्भूत हुआ है, सागर के उस विशेष भाग के लिए विस्मयजनक नहीं। दीबजात के द्वीप (मालद्वीप और लकाद्वीप), पुलिनों के रूप में सागर से निकलकर, इसी प्रकार उत्पन्न हुए हैं। वे बढ़ते, और उठते, और अपने को विस्तृत करते, और कुछ काल तक इस अवस्था में रहते हैं। तब वे मानो बुढ़ापे से जीर्ण हो जाते हैं; न्यारे-न्यारे भाग घुल जाते हैं, वे अब इकट्ठे नहीं रहते और जल में अन्तर्धान हो जाते हैं मानों पिघल गये हों। इन द्वीपों

के अधिवासी उस द्वीप को छोड़ देते हैं जो साक्षात् मर जाता है, और नवयुवक और ताज़ा द्वीप पर जा बसते हैं जो सागर से ऊपर उठने को होता है। वे अपने नारियल के पेड़ अपने साथ ले जाते हैं, नवीन द्वीप में बस्ती बसाते हैं, और उस पर रहते हैं।

हो सकता है कि प्रस्तुत दुर्ग का सुनहला कहलाना केवल एक रूढ़ उपाधि हो। परन्तु, सम्भवतः इस पदार्थ को मूलार्थतः ही लेना होगा, क्योंकि ज़ाबज के द्वीप सुनहला देश (सुवर्ण द्वीप) कहलाते हैं। कारण यह कि यदि तुम उस देश की थोड़ी सी मिट्टी को भी धोवो तो तुम्हें बहुत सा सुवर्ण तलछट के रूप में मिल जाता है।

उनसठवाँ परिच्छेद

—※—

सूर्य और चन्द्र के ग्रहणों पर।

हिन्दू ज्योतिषियों को यह बात पूर्ण रूप से ज्ञात है कि पृथ्वी की छाया से चन्द्र-ग्रहण, और चन्द्र की छाया से सूर्य-ग्रहण होता है। इस पर उन्होंने ज्योतिष के गुटकों और दूसरे ग्रन्थों में अपने परिसंख्यानों की नींव रक्खी है।

संहिता में वराहमिहिर कहता है—

श्लोक १—"कुछ विद्वानों का मत है कि शिर राहु दैत्यों का था, और उसकी माता सिंहिका थी। जब देवताओं ने सागर से अमृत बाहर निकाला, तब उन्होंने विष्णु से कहा कि इसे हममें बाँट दीजिए। जब उसने बाँटा, तब राहु भी, जो आकार में देवताओं से मिलता-जुलता था, आ गया; और उनमें आकर मिल गया। जब विष्णु ने उसे अमृत का भाग दिया तब वह लेकर पी गया। परन्तु विष्णु ने उसे ताड़ लिया कि वह कौन है। उसने अपना गोल चक्र उसे मारा, और उसका सिर काट डाला। परन्तु उसके मुख में अमृत होने के कारण राहु जीता रहा, किन्तु शरीर मर गया, क्योंकि इसको अमृत का भाग नहीं मिला था, और अमृत की शक्ति अभी इसमें नहीं फैली थी। तब राहु ने विनीत भाव से कहा—'किस अपराध के लिए यह किया गया है?' इस पर उसको ऊपर आकाश में भेजकर, और वहाँ का अधिवासी बनाकर, उसका बदला चुकाया गया।

वराहमिहिर की संहिता, अध्याय ५ से अवतरण।

श्लोक २—दूसरे कहते हैं कि सूर्य और चन्द्र के सदृश शिर (राहु) की देह है, परन्तु वह काली और अँधेरी है, इसलिए आकाश में देखी नहीं जा सकती। आदि-पिता, ब्रह्मा ने, आज्ञा दी कि वह ग्रहण के समय के सिवा और कभी आकाश में प्रकट न हो।

श्लोक ३—दूसरे कहते हैं कि उसका सिर साँप के सिर के समान, और पूँछ साँप की पूँछ के समान है, परन्तु दूसरे कहते हैं कि काले रंग के सिवा, जो कि दिखाई देता है, उसका और कोई शरीर नहीं।"

इन असंगत बातों को सुना चुकने के पश्चात् वराहमिहिर कहता है—

श्लोक ४—यदि शिर का शरीर होता, तो वह तात्कालिक संसर्ग से कार्य करता, परन्तु हम देखते हैं कि वह दूर से ग्रहण लगाता है, जब उसके और चन्द्रमा के बीच छः राशियों का अन्तर होता है। इसके अतिरिक्त, उसकी गति न बढ़ती है और न घटती है, इसलिए हम उसके शरीर के चान्द्र ग्रहण के स्थान पर पहुँचने से ग्रहण के होने की कल्पना नहीं कर सकते।

श्लोक ५—और यदि कोई मनुष्य ऐसे मत को मानता है, तो वह हमें बताये कि शिर के भ्रमणों के चक्रों की किसलिए गणना की गई है, और इस बात के फल-स्वरूप कि उसका भ्रमण नियम-पूर्वक है उनके ठीक होने से क्या लाभ है? यदि शिर की कल्पना शिर और पूँछवाले साँप की की गई है, तो यह छः राशियों से अधिक या कम अन्तर से क्यों ग्रहण नहीं लगाता?

श्लोक ६—उसका शरीर वहाँ शिर और पूँछ के बीच वर्तमान है; दोनों शरीर के द्वारा इकट्ठे लटक रहे हैं। फिर भी यह न तो सूर्य को, न चन्द्रमा को और न नक्षत्रों के स्थिर तारों को ग्रहण लगाता है; वहाँ पर तभी ग्रहण होता है जब दो शिर एक दूसरे के विरुद्ध हों।

श्लोक ७—यदि शेषोक्त अवस्था हो, और चन्द्रमा उन दो में से एक के द्वारा ग्रहण लगा हुआ चढ़े, तो सूर्य, दूसरे से ग्रहण लगने के कारण, अवश्यमेव अस्त हो जायगा। इसी प्रकार यदि चन्द्रमा ग्रहण लगा हुआ अस्त हो जाय, तो सूर्य-ग्रहण लगा हुआ उदय होगा। और इस प्रकार की कोई भी घटना कभी नहीं होती।

पृष्ठ २१९

श्लोक ८—जैसा कि ईश्वरीय सहायता से सम्पन्न विद्वानों ने उल्लेख किया है, चान्द्र-ग्रहण चन्द्रमा का पृथ्वी की छाया में प्रवेश करना है, और सूर्य का ग्रहण इस बात में है कि चन्द्रमा सूर्य को ढँकता और हमसे छिपाता है। इसलिए चान्द्र ग्रहण पश्चिम से और सौर ग्रहण पूर्व से कभी नहीं घूमेगा।

श्लोक ९—पृथ्वी से एक लम्बी छाया दूर तक फैलती है, उसी प्रकार जिस प्रकार कि वृक्ष की छाया।

श्लोक १०—सूर्य से अपने अन्तर की सातवीं राशि में ठहरे हुए चन्द्रमा का जब केवल थोड़ा सा अक्ष हो, और यदि यह उत्तर या दक्षिण में बहुत दूर न खड़ा हो, तो उस अवस्था में चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में प्रवेश करता है और इससे उसे ग्रहण लग जाता है। पहला संसर्ग पूर्व के पार्श्व पर होता है।

श्लोक ११—जब सूर्य के निकट चन्द्रमा पश्चिम से पहुँचता है, तब वह सूर्य को ढक लेता है, जैसे बादल के टुकड़े ने उसे ढँक लिया हो। आच्छादन का परिमाण भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न होता है।

श्लोक १२—क्योंकि जो चन्द्रमा को आच्छादित करता है वह बड़ा है, इसलिए जब इसके आधे को ग्रहण लग जाता है तब इसका प्रकाश घट जाता है; और क्योंकि जो सूर्य को आच्छादित करता है वह बड़ा नहीं है, इसलिए ग्रहण के रहते भी किरणें प्रचण्ड होती हैं।

श्लोक १३—शिर (राहु) के स्वरूप का चान्द्र और सौर ग्रहणों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं। इस विषय पर विद्वान् अपनी पुस्तकों में सहमत हैं।"

दोनों ग्रहणों का स्वरूप, जैसा कि वह उनको समझता है, वर्णन करने के पश्चात्, वह उन लोगों की शिकायत करता है जो इसको नहीं जानते, और कहता है—"परन्तु, सर्वसाधारण बड़े ऊँचे स्वर से शिर को ग्रहण का कारण विघोषित करते हैं, और वे कहते हैं, 'यदि शिर प्रकट न हो और ग्रहण न लगाये, तो ब्राह्मण उस समय आवश्यक स्नान नहीं करेंगे'।"

वराहमिहिर कहता है—

श्लोक १४—"इसका कारण यह है कि काटा जा चुकने के पश्चात् शिर ने अपने को विनीत बनाया, और ब्रह्मा से उस नैवेद्य का एक भाग प्राप्त किया जो ब्राह्मण ग्रहण के समय अग्नि की भेंट करते हैं।

श्लोक १५—इसलिए वह अपने भाग की तलाश में ग्रहण के स्थान के निकट है। इसी लिए उस समय लोग उसका बहुत बार उल्लेख करते, और उसे ग्रहण का कारण समझते हैं, यद्यपि उसका इसके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं; क्योंकि ग्रहण का सारा निर्भर चन्द्रमा की कक्षा की एकरूपता और च्युति पर है।"

वराहमिहिर की प्रशंसा।

वराहमिहिर ने, पूर्व उद्धृत वचनों में, पहले ही अपने को हमारे सामने एक ऐसा मनुष्य प्रकट किया है जो संसार का आकार यथार्थत: जानता है। अब उसके ये पिछले शब्द विलक्षण और विस्मयजनक हैं। किन्तु, कभी-कभी वह ब्राह्मणों का पक्ष लेता हुआ प्रतीत होता है। वह ब्राह्मणों में से था, और उनसे अपने को अलग नहीं कर सकता था।

फिर भी वह दोष देने के योग्य नहीं, क्योंकि, सर्वतोभावेन, उसका पैर सत्य के आधार पर दृढ़ खड़ा है, और वह स्पष्ट रूप से सत्य कह देता है। उदाहरणार्थ, संधि के विषय में उसके कथन की तुलना कीजिए, जिसका उल्लेख हमने ऊपर किया है।

परमेश्वर करे कि सभी प्रतिपन्न मनुष्य उसके उदाहरण का अनुकरण करें! परन्तु, उदाहरणार्थ, ब्रह्मगुप्त को देखिए। वह निश्चय ही उनके ज्योतिषियों में सबसे अधिक ख्यात है। वह उन ब्राह्मणों में से एक था जो पुराणों में पढ़ते हैं कि सूर्य चन्द्रमा की अपेक्षा नीचे है, और इस कारण जिनको एक शिर (अर्थात् राहु को मानने) का प्रयोजन होता है जो सूर्य को ग्रहण लगाने के लिए उसे काटे, अतएव वह सचाई से बचता है और छल का समर्थन करता है। यदि उसने, उनसे तीव्र घृणा के कारण, समर्थन नहीं किया—और इसको हम किसी प्रकार असम्भव नहीं समझते—तो उसका कथन ऐसा है मानो उसने उन पर केवल हँसी करने के लिए, या किसी मानसिक विभ्रम के वशीभूत होकर उस मनुष्य के सदृश कहा हो जिसकी संज्ञा को मृत्यु उससे छीननेवाली है। प्रस्तुत शब्द उसके ब्रह्मसिद्धान्त के प्रथम परिच्छेद में पाये जाते हैं:—"कुछ लोगों का विचार है कि ग्रहण का कारण शिर नहीं। परन्तु, यह एक मूढ़ विचार है, क्योंकि वास्तव में यही ग्रहण लगाता है, और संसार के सभी अधिवासी कहते हैं कि ग्रहण लगानेवाला शिर ही है। वेद, जो ब्रह्मा के मुख से भगवद्वाणी है, कहता है कि शिर ग्रहण लगाता है, इसी प्रकार मनु-प्रणीत स्मृति, और ब्रह्मा के पुत्र गर्ग-रचित संहिता कहती है। इसके

ब्रह्मगुप्त में सरलता के अभाव पर आक्षेप।

ब्रह्मसिद्धान्त से अवतरण।

पृष्ठ २९६

विपरीत, वराहमिहिर, श्रीशेण, आर्यभट, और विष्णुचन्द्र का मत है कि ग्रहण का कारण शिर नहीं, चन्द्रमा और पृथ्वी की छाया है। यह मत सबके (सभी मनुष्यों के) सर्वथा प्रतिकूल, और जिस मत का अभी उल्लेख हुआ है उसके विरुद्ध द्वेष से है। क्योंकि यदि शिर ग्रहण नहीं लगाता तो वे सब व्यवहार, जो ग्रहण के समय ब्राह्मण लोग करते हैं, यथा, उनका अपने शरीर पर गरम तेल मलना, और निर्दिष्ट पूजन के अन्य कर्म, मायामय ठहरेंगे, और उनके फल से स्वर्गीय आनन्द प्राप्त न होगा। यदि मनुष्य इन बातों को मायामय बताता है, तो वह सामान्यतः स्वीकृत मत के बाहर ठहरता है, और इस बात की आज्ञा नहीं। मनु अपनी स्मृति में कहता है—'जब शिर सूर्य या चन्द्र को ग्रहण में रखता है, तब पृथ्वी पर सब पानी पवित्र हो जाते हैं, ऐसे पवित्र जैसे कि गङ्गाजल।' वेद कहता है—'शिर दैत्यों की पुत्रियों की एक स्त्री का, जो सैनकाग्र (सिंहिका ?) कहलाती है, पुत्र है। इसलिए लोग भक्ति के प्रसिद्ध कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, और इसलिए उन लेखकों को सर्व साधारण का विरोध करना छोड़ देना चाहिए, क्योंकि जो कुछ भी वेद, स्मृति और संहिता में है वह सत्य है'।"

यदि, इस सम्बन्ध में, ब्रह्मगुप्त उनमें से एक है जिनके विषय में परमेश्वर कहता है (कुरान सूरा २७ श्लोक १४), "उन्होंने दुर्जनता और दर्प से हमारे चिह्नों से इन्कार कर दिया है, यद्यपि उनके हृदय उनको स्पष्ट रूप से जानते हैं," तो हम उसके साथ वादानुवाद न करेंगे, परन्तु उसके कान में इतना ही धीरे से कह देंगे; यदि अवस्थाओं के अधीन होकर लोगों को धर्म्म-शास्त्रों का विरोध करना छोड़ देना चाहिए (जैसा कि तुम्हारी अवस्था प्रतीत होती है), तो फिर लोगों को तुम धर्म्मात्मा बनने का आदेश क्यों देते हो, यदि तुम स्वयं ऐसा

बनना भूल जाते हो ? तब ऐसे शब्द बोलने के पश्चात्, तुम क्यों चन्द्रमा के सूर्य को ग्रहण लगाने की व्याख्या करने के लिए चन्द्रमा के व्यास की गणना, और पृथ्वी की छाया के चन्द्रमा को ग्रहण लगाने की व्याख्या करने के लिए पृथ्वी की छाया के व्यास की गणना करने लगते हो ? क्यों तुम उन नास्तिकों के सिद्धान्त के साथ सहमत होकर दोनों ग्रहणों का परिसंख्यान करते हो, और उनके विचारों के अनुसार नहीं करते जिनके साथ सहमत होना तुम उचित समझते हो ? यदि ग्रहण लगने पर ब्राह्मणों को पूजा का कोई कर्म अथवा कुछ करने का आदेश है, तो ग्रहण इन बातों की केवल तिथि है, उनका कारण नहीं। इस प्रकार, सूर्य के प्रकाश और उसके परिभ्रमण के विशेष समय पर, हम मुसलमानों के लिए कुछ प्रार्थनाओं का पढ़ना अनिवार्य है, और कुछ के पढ़नें का निषेध है। ये बातें उन क्रियाओं के लिए केवल कालगणना-सम्बन्धी तिथियाँ हैं, इससे बढ़कर कुछ नहीं, क्योंकि हमारी (मुसलमानों की) पूजा के साथ सूर्य का कुछ भी सम्बन्ध नहीं।

ब्रह्मगुप्त कहता है—"सर्वसाधारण का विचार है।" यदि उसका इससे अभिप्राय वासयोग्य जगत् के अधिवासियों के साकल्य से है, तो हम इतना ही कह सकते हैं कि वह, यथार्थ अनुसन्धान से या ऐतिहासिक ऐतिह्य द्वारा, उनकी सम्मतियों का अन्वेषण करने में बहुत कम समर्थ होगा। क्योंकि स्वयं भारतवर्ष, सारे वासयोग्य जगत् की तुलना में, एक छोटी सी वस्तु है, और उन लोगों की संख्या जिनका, धर्म्म और क़ानून दोनों में, हिन्दुओं से मतभेद है, उनकी संख्या से अधिक है जो उनके साथ एकमत हैं।

या यदि ब्रह्मगुप्त का तात्पर्य हिन्दुओं के सर्वसाधारण से है, तो हम इस बात में सहमत हैं कि उनमें अशिक्षितों की संख्या शिक्षितों से

बहुत अधिक है; परन्तु हम यह भी बताते हैं कि हमारे ईश्वरीय ज्ञान की सभी धर्म्म-स्मृतियों में अशिक्षित समूह को अज्ञानी, सदैव शङ्का करनेवाले और कृतघ्न होने का दोष दिया गया है।

ब्रह्मगुप्त के लिए संभाव्य बहाने।

मुझसे पूछो तो मेरा मन तो यही कहता है कि जिस बात ने ब्रह्मगुप्त से उपर्युक्त शब्द (जिनमें अन्तरात्मा के विरुद्ध पाप मिला हुआ है) कहलाये वह, सुक़रात के सदृश, कोई विपज्जनक मृत्यु थी, जो उसके ज्ञान की प्रचुरता और बुद्धि की कुशाग्रता के रहते भी, और जो, यद्यपि वह उस समय बिलकुल युवा था, उसके शिर पर आ पड़ती। क्योंकि उसने ब्रह्मसिद्धान्त केवल तीस ही वर्ष की अवस्था में लिखा था।

पृष्ठ २५७

यदि वास्तव में यही उसका बहाना है, तो हम इसे स्वीकार करते हैं, और इसके साथ इस विषय को छोड़ देते हैं। अब उपर्युक्त लोगों (हिन्दू-धर्म्म-पण्डितों) को लीजिए, जिनसे तुम्हें ध्यान रखना चाहिए कि तुम्हारा मत-भेद न होने पाये। वे चन्द्रमा के सूर्य को ग्रहण लगाने के विषय में, ज्योतिष के सिद्धान्त को समझने में, कैसे समर्थ हो सकते हैं, क्योंकि वे, अपने पुराणों में, चन्द्रमा को सूर्य के ऊपर रखते हैं, और जो ऊपर है वह उसको जो उससे नीचे है उन लोगों की दृष्टि में, जो उन दोनों से नीचे हैं, ढँक नहीं सकता। इसलिए उनको एक ऐसी सत्ता का प्रयोजन हुआ जो चन्द्रमा और सूर्य को उसी प्रकार निगल जाती है जिस प्रकार कि मछली चारा निगल जाती है, और जो उनको उन रूपों में प्रकट करती है जिनमें कि उनके व्यवहित भाग वास्तव में प्रकट होते हैं। परन्तु, प्रत्येक जाति में अज्ञानी लोग होते हैं, और नेता स्वयं उनसे भी अधिक अज्ञानी होते हैं, जो (जैसा कि क़ुरान, सूरा २६, श्लोक १२, कहता है)

"अपने बोझ और उनके अतिरिक्त दूसरे बोझ उठाते हैं" और जो समझते हैं कि वे उनके मन के प्रकाश को बढ़ा सकते हैं; सच्ची बात तो यह है कि गुरु भी वैसे ही अज्ञानी हैं जैसे कि शिष्य।

वह बात बड़ी ही विलक्षण है जो वराहमिहिर कुछ प्राचीन लेखकों के विषय में सुनाता है, जिन (लेखकों) पर हमें कुछ ध्यान नहीं देना चाहिए यदि हम उनका विरोध नहीं करना चाहते, जैसा कि, वे चान्द्र दिनों की आठवीं को एक चिपटी तलीवाले बड़े बासन में थोड़े से पानी में उतना ही तेल मिलाकर डालने से ग्रहण के लगने की भविष्य-वाणी करने की चेष्टा करते थे। तब वे उन स्थानों की परीक्षा करते थे जहाँ तेल संयुक्त और बिखरा हुआ होता था। संयुक्त भाग को वे ग्रहण के आरम्भ का भविष्य-सूचन, और बिखरे हुए भाग को इसके अन्त का भविष्य-सूचन समझते थे।

वराहमिहिर-संहिता अध्याय ५, श्लोक १०, १६,६३ के अवतरण।

फिर, वराहमिहिर कहता है कि कोई व्यक्ति यह समझा करता था कि ग्रहों का संयोग ग्रहण का कारण (श्लोक १६) है, जब कि दूसरे लोग अशुभ प्राकृतिक घटनाओं से, जैसा कि, तारों का गिरना, पूछल तारे, परिवेश, अन्धकार, झंझावात, भूमि का ऊँचे स्थान से टूटकर नीचे गिरना, और भूकम्प से, ग्रहण के लगने का भविष्यद्ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करते थे। ऐसे ही वह कहता है, "ये बातें सदैव ग्रहण के साथ समकालीन नहीं होतीं, और न वे इसका कारण हैं; अशुभ घटना का स्वरूप ही एक ऐसी चीज़ है जो ग्रहण और इन व्यापारों में साझे की है। युक्तिसङ्गत व्याख्या ऐसी असङ्गतियों से सर्वथा भिन्न है।"

वही मनुष्य, जो अपने देश-बन्धुओं के चरित्र को बहुत अच्छी तरह जानता है, जो मटरों को लोबिये के साथ, मोतियों को लीद के

साथ मिला देना पसन्द करते हैं; अपने शब्दों के लिए कोई प्रमाण दिये बिना, कहता है (श्लोक ६३)—"यदि ग्रहण के समय प्रचण्ड वायु चलती है, तो अगला ग्रहण छः मास के पश्चात् होगा। यदि कोई तारा टूट पड़ता है, तो अगला ग्रहण बारह मास के पश्चात् होगा। यदि पवन में धूल उड़ रही है, तो यह अठारह मास के पश्चात् होगा। यदि भूकम्प होता है, तो यह चौबीस मास के पश्चात् होगा। यदि पवन गहरी है, तो यह तीस मास के पश्चात् होगा। यदि ओले गिरते हैं, तो यह छत्तीस मास के पश्चात् होगा।"

ऐसी बातों के लिए मौन ही उचित उत्तर है।

मैं इस बात का उल्लेख करने से नहीं चूकूँगा कि जिन भिन्न-भिन्न प्रकार के ग्रहणों का वर्णन अलख्वारिज़्मी के पञ्चाङ्ग में है, यद्यपि वे यथार्थतः दिखलाये गये हैं, परन्तु वे वास्तविक पर्यवेक्षण के परिणामों से नहीं मिलते।

ग्रहणों के रङ्गों पर।

हिन्दुओं का एक वैसा ही मत अधिक ठीक है, जैसा कि, यदि ग्रहण चन्द्रमा के पिण्ड को आधे से कम आच्छादित करता है तो इस ग्रहण का रंग धूयें का है; यदि यह उसके अर्धभाग को पूर्ण रूप से ढँक देता है तो यह कोयले का सा काला है; यदि चन्द्रमा का पिण्ड आधे से अधिक आच्छादित हो जाता है तो ग्रहण का वर्ण काले और लाल के बीच होता है; और, अन्ततः, यदि यह चन्द्रमा के सारे पिण्ड को ढँक देता है तो यह पीला-भूरा होता है।

साठवाँ परिच्छेद

पर्वन् पर।

वे अन्तर जिनके बीच ग्रहण हो सकता है और उनके चन्द्र-परिवर्तनकालों की संख्या अलमजस्त के छठे अध्याय में पर्याप्त रूप से वर्णित है। हिन्दू लोग समय की उस अवधि को, जिसके आदि और अन्त में चान्द्र ग्रहण होते हैं, पर्वन् कहते हैं। इस विषय पर आगे लिखी जानकारी संहिता से ली गई है। इसका रचयिता, वराहमिहिर, कहता है—"प्रत्येक छः मास का एक पर्वन् होता है, जिसमें कि ग्रहण लग सकता है। ये ग्रहण सात का एक काल-चक्र बनाते हैं। इनमें से प्रत्येक का एक विशेष अधिष्ठाता और निमित्त होता है, जैसा कि सामने के पृष्ठ की तालिका में दिखलाया गया है—

पृष्ठ २४८
पर्वन् परिभाषा की व्याख्या।

वराहमिहिर-संहिता अध्याय ५ श्लोक १९-२३।

जिस पर्वन् में तुम दैवयोग से हो उसका परिसंख्यान, खण्ड-खाद्यक के अनुसार, यह है—"इस पञ्चाङ्ग के अनुसार गिने हुए अहर्गण को दो स्थानों में लिखो। एक को ५० से गुणा करो और गुणनफल को १२९६ पर भाग दो, और यदि अपूर्णाङ्क आधे से कम न हो तो उसे एक पूरा गिन लो। भजनफल में १०६३ बढ़ाओ। इस संख्या को दूसरे स्थान में लिखी हुई संख्या में जोड़ दो, और योगफल को १८० पर भाग दो। भजनफल के पूर्णाङ्क पूर्ण पर्वनों की संख्या हैं। इसको ७ पर भाग दो, और जो ७ से कम अवशेष प्राप्त होता है उसका

खण्डखाद्यक से पर्वन् के परिसंख्यान के नियम।

अर्थ पहले पर्वन् से, अर्थात् ब्रह्मा के पर्वन् से निर्दिष्ट पर्वन् का अन्तर है। परन्तु, भाग देने से १८० से कम जो अवशेष तुम्हें प्राप्त होता है वह जिस पर्वन् में तुम हो उसका अतीतांश है। तुम इसे १८० में से घटाते हो। यदि अवशेष १५ से कम है, तो एक चन्द्र-ग्रहण सम्भव या आवश्यक है; यदि अवशेष उससे बड़ा है, तो यह असम्भव है। इसलिए तुम सदैव वैसी ही रीति से उस काल का परिसंख्यान करो जो उस निर्दिष्ट पर्वन् से पहले बीत चुका है जिसमें कि तुम दैवयोग से हो।"

पृष्ठ २५९

पर्वनों की संख्या	पर्वनों के अधिष्ठाता	उनके निमित्त
१	ब्रह्मा	ब्राह्मणों के लिए अनुकूल; पशु पनप रहे हैं, फ़सलें फूल-फल रही हैं, और सार्वत्रिक कुशल-क्षेम और अनामय है।
२	शशिन्, अर्थात् चन्द्रमा	वही जो पहले पर्वन् में है, परन्तु इसमें वर्षा स्वल्प है, और पण्डित रोगी हैं।
३	राजा इन्द्र	राजाओं का एक दूसरे से अपराग हो जाता है, अनामय घट जाता है, और शरद ऋतु की फ़सलें नष्ट हो जाती हैं।
४	उत्तर का रक्षक कुबेर	प्रचुरता और धन होता है; धनाढ्य लोग अपनी सम्पत्ति का नाश करते हैं।
५	जल का रक्षक वरुण	राजाओं के लिए शुभ नहीं, परन्तु दूसरों के लिए शुभ है; फ़सलें हरी-भरी हो रही हैं।
६	अग्नि जो मित्राख्य भी कहलाती है	जल की बहुतायत है, फ़सलें उत्तम हैं; सार्वत्रिक कुशल-क्षेम और अभय; महामारियाँ और मृत्यु-संख्या घट रही है।
७	मृत्यु का देवता यम	वर्षा कम है, फ़सलें नष्ट होती हैं, और इससे दुर्भिक्ष होता है।

उस पुस्तक के एक दूसरे वचन में हम आगे लिखा नियम पाते हैं—"कल्प अहर्गण, अर्थात् एक कल्प के दिनों का अतीतांश लो। उसमें से ९६,०३१ घटाओ, और अवशेष को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में लिखो। निचली संख्या में से ८४ घटाओ, और उस राशि को ५६१ पर भाग दो। भजनफल को ऊपर की संख्या में से घटाओ, और अवशेष को १७३ पर भाग दो। भजनफल को छोड़ दो, परन्तु अवशेष को ७ पर भाग दो। भजनफल, ब्रह्मादि से आरम्भ करके, पर्वन् देता है।"

ये दो रीतियाँ एक दूसरे से मिलती नहीं। हमें यह संस्कार है कि दूसरे वचन में से या तो कोई बात गिर पड़ी है या प्रतिलिपि करनेवालों ने बदल दी है।

पर्वनों के ज्योतिष-सम्बन्धी पूर्वलक्षणों के विषय में वराहमिहिर जो कुछ कहता है वह उसकी गम्भीर विद्वत्ता के उपयुक्त नहीं।

वराहमिहिर-संहिता अध्याय ४ श्लोक २३ ख से अवतरण।

वह कहता है—"यदि किसी पर्वन् में कोई ग्रहण न हो, किन्तु दूसरे कालचक्र में एक हो, तो वर्षा नहीं होगी, भूख और मृत्यु बहुत होगी।" यदि इस वचन में अनुवादक ने भारी भूल नहीं की, तो हम इतना ही कह सकते हैं कि यह वर्णन ऐसे पर्वन् के पूर्ववर्ती प्रत्येक पर्वन् पर लागू होता है जिसमें कोई ग्रहण होता है।

उसकी यह टिप्पणी (श्लोक २४) और भी अधिक विचित्र है—"गणना से जो समय निकाला गया है यदि उससे पूर्व ग्रहण लग जाता है, तो वर्षा बहुत कम होगी और तलवार निकलेगी। यदि यह गणना से निकाले हुए समय के पीछे लगता है, तो महामारी, और मृत्यु, और अन्न, फल और फूलों में विनाश होगा। (श्लोक

२५) यह उसका एक अंश है जो मैंने प्राचीनों की पुस्तकों में पाया है और इस स्थल में स्थानान्तरित कर दिया है। यदि मनुष्य को यथार्थ रूप से गणना करना आता है, तो उसकी गणनाओं में उसके साथ यह बात कभी न होगी कि ग्रहण बहुत पहले अथवा बहुत पीछे आ जाय। यदि पर्वन् के बाहर सूर्य को ग्रहण लग जाता और वह काला हो जाता है, तो तुम्हें जानना चाहिए कि त्वष्टृ नामक देवता ने उसे ग्रहण लगाया है।"

अध्या० ३, श्लो० ६

जो कुछ वह एक दूसरे वचन में कहता है वह भी इसी के सदृश है—"यदि मकर राशि में प्रवेश करने के पूर्व, सूर्य उत्तर की ओर मुड़ जाय, तो दक्षिण और पश्चिम का ध्वंस होगा। यदि कर्क राशि में सूर्य के प्रवेश के पूर्व वह दक्षिण की ओर मुड़ जाय, तो पूर्व और उत्तर का नाश होगा। यदि सूर्य का मुड़ना उसके इन दो राशियों के पहले अंशों में प्रवेश के साथ ही साथ, या इसके पीछे होता है, तो चारों दिशाओं में सुख सामान्य होगा, और उनमें आनन्द बढ़ेगा।"

अ० ३ श्लो० ४, ५

ऐसे वाक्य, यदि समझे जायँ, क्योंकि वे समझे जाने के लिए प्रतीत होते हैं, तो कान को वे एक पागल मनुष्य के बकवाद के सदृश जान पड़ते हैं, परन्तु कदाचित् उनके पीछे कोई गूढ़ अर्थ छिपे हुए हैं जिनको हम नहीं जानते।

इसके पश्चात् हमें समय के स्वामियों (कालाधिपतियों) का वर्णन करते रहना चाहिए, क्योंकि इन दो का स्वरूप कालचक्र का सा है, और ऐसी बातें कहनी चाहिएँ जो उनके साथ सम्बन्ध रखती हैं।

इकसठवाँ परिच्छेद

——✲——

धर्म्म तथा नक्षत्र-विद्या दोनों की दृष्टि से काल के भिन्न-भिन्न मानों के अधिष्ठाताओं पर, और तत्सम्बन्धी विषयों पर।

संस्थिति, या व्यापक समय, उसकी आयु होने से केवल स्रष्टा पर ही लागू होता है, और आदि और अन्त से उसका निश्चय नहीं हो सकता। वास्तव में यह उसका नित्यत्व है। वे इसको बहुधा आत्मा, अर्थात् पुरुष कहते हैं। परन्तु साधारण समय गति द्वारा निर्णेय है। इसके जुदा-जुदा अंश स्रष्टा के सिवा दूसरे प्राणियों पर, और पुरुष के सिवा दूसरे प्राकृतिक चमत्कारों पर लागू होते हैं। इस प्रकार कल्प का उपयोग सदा ब्रह्मा के सम्बन्ध में होता है, क्योंकि यह उसका दिन और रात है, और उसकी आयु इससे निश्चित होती है।

काल के किन भिन्न-भिन्न मानों के अधिष्ठाता हैं और किनके नहीं।

प्रत्येक मन्वन्तर का एक विशेष अधिष्ठाता है, जिसे मनु कहते हैं। मनु का वर्णन विशेष गुणों से किया जाता है, जिनका उल्लेख किसी पूर्ववर्ती परिच्छेद में पहले ही हो चुका है। इसके विपरीत, मैंने चतुर्युगों अथवा युगों के अधिष्ठाताओं के विषय में कभी कुछ नहीं सुना।

पृष्ठ २६०

वराहमिहिर अपने बृहज्जातकम् में कहता है—

"अब्द, अर्थात् वर्ष, का सम्बन्ध शनि से; अयन, अर्थात् आधे

वर्ष, का सूर्य से; ऋतु, अर्थात् वर्ष के छठवें भाग का बुध से; मास का बृहस्पति से; पक्ष, अर्थात् आधे मास का शुक्र से; दिन का मङ्गल से, मुहूर्त का चन्द्रमा से है।"

उसी पुस्तक में वह वर्ष के छठवें भागों का लक्षण इस प्रकार करता है—"मकरसंक्रान्ति से आरम्भ होनेवाला, पहला, शनि का; दूसरा, शुक्र का; तीसरा, मङ्गल का; चौथा, चन्द्रमा का; पाँचवाँ, बुध का; छठवाँ, बृहस्पति का है।"

हम आगे ही, पहले परिच्छेदों में; घण्टों, मुहूर्तों, अर्धचान्द्र दिनों, मास के शुक्ल और कृष्ण पक्षों में एकहरे दिनों, ग्रहणों के पर्वनों, और एकहरे मन्वन्तरों के अधिष्ठाताओं का वर्णन कर चुके हैं। उसी प्रकार का जो कुछ और है वह हम इस स्थान में देंगे।

वर्ष के अधिष्ठाता के परिसंख्यान में, हिन्दू लोग पाश्चात्य जातियों से भिन्न रीति का उपयोग करते हैं। पाश्चात्य जातियाँ, कुछ विख्यात नियमों के अनुसार, वर्ष की जन्मपत्रिका लग्नराशि के अनुसार, इसको गिनती हैं। वर्ष का अधिपति तथा मास का अधिपति नियत समय में पुनः लौटकर आनेवाले काल के विशेष भागों के अधीश हैं, और एक विशेष गणना से घंटों के अधिपतियों और दिनों के अधिपतियों से निकाले जाते हैं।

खण्डखाद्यक के अनुसार वर्षाधिपति का परिसंख्यान।

यदि तुम वर्ष का अधिपति मालूम करना चाहते हो, तो प्रस्तुत तिथि के दिनों की संख्या का खण्डखाद्यक के नियमों के अनुसार परिसंख्यान करो। इस पुस्तक का उनमें सबसे अधिक व्यापक उपयोग होता है। दिनों की उस संख्या में से २२०१ घटाओ, और अवशेष को ३६० पर भाग दो। भजनफल को ३ से गुणा करो, और गुणनफल में सदा ३ बढ़ा दो। योगफल को ७ पर भाग दो।

अवशेष को, जो ७ से कम संख्या है, रविवार से आरम्भ करके, सप्ताह के दिनों पर गिनो। उस दिन का अधिपति, जिस पर तुम पहुँचे हो, साथ ही वर्ष का अधिपति भी है। भाग देने से जो अवशेष प्राप्त होते हैं वे उसके शासन के वे दिन हैं जो आगे ही बीत चुके हैं। ये, और उसके शासन के वे दिन जो अभी नहीं बीते, मिलकर ३६० की संख्या देते हैं।

चाहे हम इस प्रकार गिनें जैसा कि हमने अभी बताया, चाहे दिनों की उस संख्या में, जिसका उल्लेख अभी हुआ है, घटाने के स्थान में, ३१९ बढ़ा दें, बात एक ही है।

यदि तुम मास का अधिपति मालूम करना चाहते हो, तो प्रस्तुत तिथि के दिनों की संख्या में से ७१ घटाओ और अवशेष को ३० पर भाग दो। भजनफल को दुगना करके उसमें १ जोड़ दो। योगफल को ७ पर भाग दो, और जो शेष बचे उसे, रविवार से आरम्भ करके, सप्ताह के दिनों पर गिनो। दिन का अधिपति जिस पर तुम पहुँचते हो साथ ही मास का अधिपति भी है। भजन से जो अवशेष तुम्हें प्राप्त होता है वह उसके शासन का वह भाग है जो पहले ही बीत चुका है। यह, और उसके शासन का वह भाग जो अभी व्यतीत नहीं हुआ, मिलकर ३० दिन की संख्या देते हैं। चाहे तुम उस प्रकार गिनो जिस प्रकार हमने अभी बताया है, और चाहे तिथि के दिनों में, उनमें से घटाने के स्थान में, १९ बढ़ा दो, और फिर जो जोड़ हो उसके दुगने में १ के स्थान में २ बढ़ा दो, बात एक ही है।

मास का अधिपति मालूम करने की विधि।

यहाँ दिन के अधिपति की बात करना व्यर्थ है, क्योंकि तुम इसे तिथि के दिनों की संख्या को ७ पर भाग देने से प्राप्त करते हो; या घण्टे के अधिपति की बात करना निरर्थक है, क्योंकि तुम

इसे विवर्तमान गोळे को १५ पर भाग देने से पाते हो। परन्तु, जो लोग वक्रहोरा का उपयोग करते हैं, वे सूर्य के अंश और लग्नराशि (Acendens) के अंश के बीच के अन्तर को १५ पर भाग देते हैं। यह अन्तर सम्माल अंशों द्वारा मापा जाता है।

महादेव की पुस्तक, सूधव, कहती है—"दिन और रात के तीसरों में से प्रत्येक का एक अधिपति है। दिन-रात के प्रथम तृतीयांश का अधिपति ब्रह्मा है, दूसरे का विष्णु, और तीसरे का रुद्र है।"

पृष्ठ २६१

महादेव का अवतरण

यह विभाग तीन सनातन शक्तियों (सत्व, रजस्, तमस्) के क्रम पर अवलम्बित है।

हिन्दुओं की एक और भी रीति है, जैसा कि, वर्ष के अधिपति के साथ-साथ नागों में से एक का उल्लेख करना। उस ग्रह के अनुसार जिसके सम्बन्ध में इन नागों का उपयोग किया जाता है, इनके विशेष नाम होते हैं। हमने उनको इस तालिका में मिला दिया है—

ग्रहों के सम्बन्ध में नाग।

नागों की तालिका

वर्ष का अधिपति	उन नागों के नाम जो वर्ष के अधिपति के साथ रहते हैं, दो भिन्न-भिन्न रूपों में दिये गये	
रवि	सुकु (? वासुकि),	नन्द
सोम	पुष्कर	चित्राङ्गद
मङ्गल	पिण्डारक, भर्म (?),	तक्षक
बुध	चन्नहस्त (?),	कर्कोट
बृहस्पति	एलापत्र,	पद्म
शुक्र	कर्कोटक,	महापद्म
शनि	चन्नभद्र (?)	शङ्ख

हिन्दू लोग ग्रहों को सूर्य के साथ जोड़ते हैं क्योंकि वे सूर्य पर आश्रित हैं, और स्थिर तारों को वे चन्द्रमा के साथ जोड़ते हैं क्योंकि उसके नक्षत्रों के तारों का सम्बन्ध उनके साथ है। यह बात हिन्दू और मुसलिम गणकों को मालूम है कि ग्रह राशियों पर शासन करते हैं। इसलिए वे विशेष दिव्य सत्ताओं को ग्रहों के अधिपति मान लेते हैं। वे दिव्य सत्ताएँ, विष्णुधर्म्म से ली हुई, इस तालिका में दिखाई गई हैं—

विष्णुधर्म्म के अनुसार ग्रहों के अधिपति।

ग्रहों के अधिपतियों की तालिका

ग्रह और दो पात	उनके अधिपति
सूर्य	अग्नि
चन्द्र	व्यान (?)
मङ्गल	कल्माष (?)
बुध	विष्णु
बृहस्पति	शुक्र
शुक्र	गौरी
शनि	प्रजापति
राहु	गणपति
केतु	विश्वकर्मेन्

वही पुस्तक ग्रहों की तरह नक्षत्रों के साथ भी विशेष अधिपति आरोपित करती है। वे अधिपति इस तालिका में हैं—

नक्षत्रों के अधिपति।

नक्षत्र	उनके अधिपति
कृत्तिका	अग्नि पृष्ठ २६२
रोहिणी	कैश्वर
मृगशीर्ष	इन्दु, अर्थात् चाँद
आर्द्रा	रुद्र
पुनर्वसु	अदिति
पुष्य	गुरु, अर्थात् बृहस्पति
आश्लेषा	सर्पास्
मघा	पितरस्
पूर्वफल्गुनी	भग
उत्तरफल्गुनी	अर्यमन्
हस्त	सवितृ, अर्थात् सविता
चित्रा	त्वष्टृ
स्वाती	वायु
विशाखा	इन्द्राग्नि
अनुराधा	मित्र
ज्येष्ठा	शुक्र
मूल	निर्ऋति
पूर्वाषाढ़ा	आपस्
उत्तराषाढ़ा	विश्वे [देवास्]
अभिजित	ब्रह्मा
श्रवण	विष्णु
धनिष्ठा	वसवस्
शतभिषज्	वरुण
पूर्वभाद्रपदा	[अज एकपाद]
उत्तरभाद्रपदा	अहिर्बुध्न्य
रेवती	पूषन्
अश्विनी	अश्विन् (?)
भरणी	यम

बासठवाँ परिच्छेद

साठ वर्षों के संवत्सर पर जिसे 'षष्ट्यब्द' भी कहते हैं।

पृष्ठ २६२

संवत्सर शब्द, जिसका अर्थ वर्ष है, सूर्य और बृहस्पति के परिभ्रमणों के आधार पर बनाये हुए वर्षों के चक्रों के लिए एक वैज्ञानिक परिभाषा है। इसमें बृहस्पति के सौर लग्न को आरम्भ गिना जाता है। संवत्सर साठ वर्ष में घूमता है, और इसलिए इसे षष्ट्यब्द, अर्थात् साठ वर्ष कहते हैं।

संवत्सर और षष्ट्यब्द परिभाषा की व्याख्या।

हम पहले ही कह चुके हैं कि नक्षत्रों के नाम, मासों के नामों से, समूहों में विभक्त हैं, प्रत्येक मास का नक्षत्रों के अनुरूप समूह में एक-एक समनामधारी है। इस विषय को सरल बनाने के लिए, हमने इन बातों को एक तालिका में दिखला दिया है। उस नक्षत्र को जानकर जिसमें बृहस्पति का सौर लग्न होता है, और इस नक्षत्र को उपर्युक्त तालिका में ढूँढ़कर, तुम इसकी बाईं ओर उस मास का नाम पाते हो जो प्रस्तुत वर्ष पर शासन करता है। तुम वर्ष को मास के सम्बन्ध में लाते हो, और कहते हो, उदाहरणार्थ, चैत्र का वर्ष, वैशाख का वर्ष, इत्यादि। इन वर्षों में से प्रत्येक के लिए फलितज्योतिष-संबंधी नियम मौजूद हैं। ये उनके साहित्य में विख्यात हैं।

वर्ष का प्रधान वह मास होता है जिसमें बृहस्पति के सूर्यलोक-सम्बन्धी लग्न की घटना होती है।

बृहस्पति के सौर लग्न का नक्षत्र कैसे मालूम किया जाता है? वराहमिहिर-संहिता, अध्याय ८ श्लोक २०, २१ का अवतरण।

जिस नक्षत्र में बृहस्पति का सौर लग्न होता है उसके परिसंख्यान के लिए वराहमिहिर अपनी संहिता में यह नियम देता है—

"शककाल लो, उसको ११ से गुणा करो, और गुणनफल में ४ का गुणा करो। चाहे आप यह करें, या चाहे शककाल में ही ४४ का गुणा कर दें। गुणन-फल में ८५८९ बढ़ा दो, और जोड़ को ३७५० पर भाग दो। भजनफल वर्षों, मासों, दिनों आदि को दिखलाता है।

"उनको शककाल में जोड़ दो, और योगफल को ६० पर भाग दो। भजनफल बड़े साठ वर्षों के युगों, अर्थात् पूर्ण षष्ट्यब्दों को दिखलाता है, जो, आवश्यक न होने के कारण, छोड़ दिये जाते हैं। अवशेष को ५ पर भाग दो, और भजनफल छोटे, पूर्ण पञ्चवर्षीय युगों को दिखलायगा। जो कुछ शेष रह जाता है वह, एक युग से कम होने के कारण, संवत्सर, अर्थात् वर्ष कहलाता है।

"श्लोक २२—शेषोक्त संख्या को दो भिन्न-भिन्न स्थानों पर लिखो। एक को ९ से गुणा करो, और गुणनफल में दूसरे स्थान की संख्या का $\frac{1}{12}$ बढ़ा दो। योगफल में से चतुर्थांश ले लो। यह संख्या पूर्ण नक्षत्रों को, और इसके अपूर्णाङ्क इसके बाद आनेवाले अगले प्रचलित नक्षत्र के भाग को दिखलाते हैं। धनिष्ठा से आरम्भ करके, नक्षत्रों की यह संख्या गिन डालो। जिस नक्षत्र पर तुम पहुँचते हो वह वह नक्षत्र है जिसमें बृहस्पति का सौर लग्न होता है।" इससे तुम, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, वर्षों का मास जान लेते हो।

पष्ठ्यब्द के प्रत्येक वर्ष की संख्या		वे नाम जो प्रत्येक [illegible] वर्षों में सामान्य हैं	उनके अधिपति
मान १ के साथ संख्याएँ	१, ११, २१, ३१, ४१, ५१	संवत्सर	अग्नि अर्थात् आग
मान ६ के साथ संख्याएँ	६, १६, २६, ३६, ४६, ५६		
मान २ के साथ संख्याएँ	२, १२, २२, ३२, ४२, ५२	परिवत्सर	अर्क अर्थात् सूर्य
मान ७ के साथ संख्याएँ	७, १७, २७, ३७, ४७, ५७		
मान ३ के साथ संख्याएँ	३, १३, २३, ३३, ४३, ५३	इदावत्सर	शीतमयूखमालिन् अर्थात् ठण्डी किरण-वाला, यथा, चन्द्रमा
मान ८ के साथ संख्याएँ	८, १८, २८, ३८, ४८, ५८		
मान ४ के साथ संख्याएँ	४, १४, २४, ३४, ४४, ५४	अनुवत्सर	नक्षत्रों का पिता, प्रजा-पति
मान ९ के साथ संख्याएँ	९, १९, २९, ३९, ४९, ५९		
मान ५ के साथ संख्याएँ	५, १५, २५, ३५, ४५, ५५	उद्वत्सर	शैलसुतापति, अर्थात् पर्वत की पुत्री का पति, अर्थात् महादेव
मान के बिना संख्याएँ	१०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०		

(विवरण के लिए देखिए पृष्ठ १६४)

पृष्ठ २६४

बड़े युग धनिष्ठा नक्षत्र के आरम्भ और माघ मास के आरम्भ में बृहस्पति के सौर लग्न के साथ आरम्भ होते हैं। छोटे युगों का बड़े युगों के भीतर एक विशेष क्रम है। वे समूहों में बँटे हुए हैं। इन समूहों में वर्षों की विशेष संख्याएँ सम्मिलित हैं, और इनमें से प्रत्येक का एक विशेष अधिपति है। यह विभाग पृष्ठ १६३ की तालिका में दिखलाया गया है।

षष्ट्यब्द के अन्तर्गत छोटे कालचक्र।

यदि तुम्हें मालूम है कि बड़े युग में प्रस्तुत वर्ष की कौन सी संख्या है, और तुम उस संख्या को तालिका के उपरिभाग में वर्षों की संख्याओं में ढूँढ़ लेते हो, तो तुम इसके नीचे, अनुरूप स्तम्भों में, वर्ष का नाम और इसके अधिपति का नाम पाओगे।

फिर, साठ वर्षों में से प्रत्येक एकहरे वर्ष का अपना एक नाम है, और युगों के भी ऐसे नाम हैं जो उनके अधिपतियों के नाम हैं। ये सब नाम आगे लिखी तालिका में दिखलाये गये हैं।

संवत्सर के एकहरे वर्षों के नाम।

इस तालिका का उपयोग भी पूर्ववर्ती तालिका के सदृश ही करना चाहिए, क्योंकि तुम (साठ वर्षों के) सारे कालचक्र के प्रत्येक वर्ष का नाम उसकी अनुरूप संख्या के नीचे पाते हो। एकहरे नामों के अर्थों और उनके पूर्व लक्षणों की व्याख्या करना एक बहुत लम्बा काम है। यह सब संहिता नाम की पुस्तक में मिलता है।

पृष्ठ २६५						
१—पञ्चाब्द । अनुकूल । इसका स्वामी मनु, अर्थात् नारायण है ।		१ प्रभाव	२ विभव	३ शुक्ल	४ प्रमोद	५ प्रजापति
२—पञ्चाब्द । अनुकूल । इसका स्वामी सुरेज्य, अर्थात् बृहस्पति है ।		६ अङ्गिरस्	७ श्रीमुख	८ भाव	९ युवन	१० धातृ
३—पञ्चाब्द । अनुकूल । इसका स्वामी बलभित्, अर्थात् इन्द्र है ।		११ ईश्वर	१२ बहुधान्य	१३ प्रमाथिण्	१४ विक्रम	१५ विष(वृषभ?)
४—पञ्चाब्द । अनुकूल । इसका स्वामी हुताश, अर्थात् अग्नि है ।		१६ चित्रभानु	१७ सुभानु	१८ पार्थिव (?)	१९ तारण	२० व्यय
५—पञ्चाब्द । निष्पत्त । इसका स्वामी त्वष्ट, चित्रा नक्षत्र का स्वामी है ...		२१ सर्वजित्	२२ सर्वधारिन्	२३ विरोधिन्	२४ विकृत	२५ खर
६—पञ्चाब्द । निष्पत्त । इसका स्वामी प्रोष्ठपद, उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र का स्वामी है...		२६ नन्दन	२७ विजय	२८ जय	२९ मन्मथ	३० चदुर (?)

पृष्ठ २६६

७—पञ्चाब्द । निष्पत्त । इसका स्वामी पितरास, अर्थात् पिता ।	३१ हेमलम्ब	३२ विलम्बिन्	३३ विकारिन्	३४ शर्वरी (?)	३५ प्लव
८—पञ्चाब्द । निष्पत्त । इसका स्वामी शिव अर्थात् भूत ।	३६ शोभकृत	३७ शुभकृत	३८ क्रोधिन्	३९ विश्वावसु	४० परावसु
९—पञ्चाब्द । अशुभ । इसका स्वामी सोम अर्थात् चन्द्र ।	४१ प्लवङ्ग	४२ कीलक	४३ सौम्य	४४ साधारण	४५ रोधकृत
१०—पञ्चाब्द । अशुभ । इसका स्वामी शक्रानल अर्थात् इन्द्र और आग इकट्ठे ।	४६ परिधाविन्	४७ प्रमादिन	४८ विक्रम	४९ राक्षस	५० अनल
११—पञ्चाब्द । अशुभ । इसका स्वामी अश्विन्, अश्विनी नक्षत्र का स्वामी ।	५१ पिङ्गल	५२ कालयुक्त	५३ सिद्धार्थ	५४ रौद्र	५५ दुर्मति
१२—पञ्चाब्द । अशुभ । इसका स्वामी भग, पूर्व-फल्गुनी नक्षत्र का स्वामी ।	५६ दुन्दुभि	५७ अङ्गार	५८ रक्ताक्ष(?)	५९ क्रोध	६० क्षय

यह है रीति जो उनकी पुस्तकों में षष्ट्यब्द के वर्षों का निश्चय करने के लिए लिखी हुई है। परन्तु, मैंने ऐसे भी हिन्दू देखे हैं जो विक्रमादित्य के संवत् में से ३ घटाते, और अवशेष को ६० पर भाग देते हैं। अवशेष को वे महायुग के आरम्भ से गिन लेते हैं। यह रीति किसी काम की नहीं। अच्छा, चाहे तुम उक्त रीति से गिनो, या शककाल में १२ बढ़ाओ, बात एक ही है।

पृष्ठ २६७

मुझे कनौज देश के कुछ लोग मिले हैं, जिन्होंने मुझे बताया है कि वे संवत्सरों के चक्र में १२४८ वर्ष मानते हैं, बारह संवत्सरों में से प्रत्येक एकहरे संवत्सर में १०४ वर्ष हैं। इस कथन के अनुसार हमें शककाल में से ५५४ घटाने चाहिएँ, और अवशेष के साथ आगे दी हुई तालिका की तुलना करनी चाहिए। अनुरूप स्तम्भ में तुम देखते हो कि प्रस्तुत वर्ष किस संवत्सर में आता है, और संवत्सर के कितने वर्ष आगे बीत चुके हैं—

कनौज के लोगों का संवत्सर।

वर्ष	१	१०५	२०९	३१३	४१७	५२१
उनके नाम	रुक्माच (?)	पीलुमन्त (?)	कदर	कालवृन्त	नौमन्द (?)	मेरु
वर्ष	६२५	७२९	८३३	९३७	१०४१	११४५
उनके नाम	बर्बर	जम्बु	कृति	सर्प	हिन्धु	सिन्धु

जब संवत्सरों के इन कल्पित नामों में मैंने जातियों, वृक्षों और पर्वतों के नाम सुने, तो मुझे अपने संवाददाताओं पर सन्देह हुआ; विशेषतः इसलिए कि उनका मुख्य कर्म (मदारियों के

सदृश ?) तन्त्र-मन्त्र और प्रतारणा करना था; और रँगी हुई दाढ़ी अपने धारण करनेवाले को मिथ्यावादी सिद्ध करती है। मैंने उनमें से एक-एक की बड़ी सावधानता-पूर्वक परीक्षा की। मैंने उनसे वही प्रश्न भिन्न-भिन्न समयों पर, भिन्न-भिन्न क्रम और पूर्वापर में पूछे। परन्तु देखिए, मुझे कैसे भिन्न-भिन्न उत्तर मिले! परमात्मा सर्वज्ञ है!

तिरसठवाँ परिच्छेद

विशेषतः ब्राह्मणों से सम्बन्ध रखनेवाली बातों और जीवन में उनके कर्तव्य-कर्मों पर।

ब्राह्मण का जीवन, सात वर्ष की आयु के पश्चात्, चार आश्रमों में विभक्त है। पहला भाग आठवें वर्ष के साथ आरम्भ होता है, जब कि ब्राह्मण उसे शिक्षा देने, उसको उसके कर्तव्य-कर्म सिखलाने, उन पर दृढ़ रहने और यावज्जीवन उनको धारण करने की ताकीद करने आते हैं। तब वे उसकी कमर के गिर्द एक कटिबन्ध बाँधते और उसे यज्ञोपवीतों का एक जोड़ा, अर्थात् नौ एकहरे तारों को इकट्ठा बटकर बनाई हुई एक सुदृढ़ रस्सी, और एक तीसरा यज्ञोपवीत, जो कपड़े का बना हुआ एकहरा होता है, देते हैं। यह बायें कन्धे से दायें कूले तक जाता है। फिर, उसे धारण करने के लिए एक दण्ड, और दर्भ नामक विशेष घास की एक अँगूठी (पैंती) दी जाती है, जिसको वह दायें हाथ की अनामिका उँगली में पहनता है। यह छाप अँगूठी-पवित्र भी कहलाती है। दायें हाथ की अनामिका उँगली में इस छल्ले को पहनने से उसका उद्देश्य यह होता है कि यह उन सबके लिए, जो उस हाथ से दान प्राप्त करें, शुभ शकुन और सुखदायक हो। इस अँगूठी को पहनने की

ब्राह्मण के जीवन का प्रथम आश्रम।

कर्तव्यता उतनी कठिन नहीं जितनी कि यज्ञोपवीत धारण करने की है, क्योंकि यज्ञोपवीत से उसे अपने को किसी भी अवस्था में अलग नहीं करना होता। यदि खाते समय या किसी प्राकृतिक हाजत को पूरा करते समय वह इसे उतार देता है, तो वह एक ऐसा पाप करता है जो प्रायश्चित्त के किसी कर्म, उपवास या दान के सिवा धुल नहीं सकता।

पृष्ठ २६८

ब्राह्मण के जीवन की यह पहली अवस्था उसकी आयु के पचीसवें वर्ष तक, या, विष्णुपुराण के अनुसार, उसके अड़तालीसवें वर्ष तक रहती है। उसका कर्तव्य ब्रह्मचर्य का पालन, भूमि को अपना बिछौना बनाना, वेद और उसके भाष्य का, तथा ब्रह्म-विद्या और धर्म्म-शास्त्र का अध्ययन आरम्भ करना है। यह सब उसको एक गुरु पढ़ाता है जिसकी वह दिन-रात सेवा करता है। वह दिन में तीन बार स्नान, और दिन के आदि और अन्त में अग्नि में होम करता है। होम के पश्चात् वह अपने गुरु का पूजन करता है। वह एक दिन उपवास करता और एक दिन उसे तोड़ता है, परन्तु उसे मांस-भक्षण की कभी आज्ञा नहीं। वह गुरु-गृह में ही निवास करता है। वह केवल भिक्षा लाने के लिए ही यहाँ से अनुपस्थित होता है और दिन में एक बार, दोपहर को या साँझ को, पाँच से अधिक घरों से नहीं माँगता। जो कुछ भिक्षा उसे मिलती है वह उसको गुरु के सामने रख देता है ताकि वह जो कुछ चाहे उसमें से ले ले। तब गुरु उसे अवशेष को खाने की आज्ञा देता है। इस प्रकार शिष्य अपने गुरु के बचे-खुचे भोजन से अपना पोषण करता है। इसके अतिरिक्त, वह अग्नि के लिए समिधा, दो प्रकार के वृक्षों—पलाश और दर्भ—की लकड़ी, हवन करने के लिए, लाता है; क्योंकि हिन्दू लोग अग्नि का बहुत पूजन करते,

और उसको फूल चढ़ाते हैं। दूसरी सब जातियों की भी ऐसी ही अवस्था है। वे सदा यही समझती थीं कि देवता द्वारा बलि तभी स्वीकृत होती है जब उस पर आग उतरती है, और कोई भी दूसरा पूजन,—न प्रतिमा-पूजन, न तारकाओं, न गउओं, न गधों, और न मूर्तियों का पूजन—उनको इससे हटाने में समर्थ नहीं हुआ। इस-लिए बश्शार इब्न बुर्द कहता है—"क्योंकि यहाँ आग है, इसलिए इसका पूजन होता है।"

ब्राह्मण के जीवन की दूसरी अवस्था।

उनके जीवन की दूसरी अवस्था पच्चीसवें वर्ष से आरम्भ होकर पचासवें तक, या, विष्णुपुराण के अनुसार, सत्तरवें वर्ष तक है। गुरु उसे विवाह करने की आज्ञा देता है। वह विवाह करके, एक परिवार की स्थापना और वंशजों की इच्छा करता है, परन्तु वह मास में एक ही बार स्त्री के रजस्वला हो चुकने के पश्चात् उससे सम्भोग करता है। उसे बारह वर्ष से बड़ी आयु की स्त्री के साथ विवाह करने की आज्ञा नहीं। वह अपनी आजी-विका या तो उस दक्षिणा से करता है जो उसे ब्राह्मणों और क्षत्रियों को पढ़ाने से प्राप्त होती है, वेतन के तौर पर नहीं वरन् उपहार के रूप में, या उन उपहारों से जो वह किसी ऐसे व्यक्ति से पाता है जिसके लिए कि वह होम करता है, या राजाओं और रईसों से भिक्षा माँग-कर, परन्तु शर्त यह है कि वह हठ-पूर्वक न माँगे, और देनेवाले में कोई अनिच्छुकता न हो। उन लोगों के घरों में सदा एक ब्राह्मण रहता है, जो वहाँ धर्म्म के कृत्य और पुण्यशीलता के काम कराता है। वह पुरोहित कहलाता है। अन्ततः, ब्राह्मण उस पर निर्वाह करता है जो वह पृथ्वी पर या वृक्षों से एकत्र करता है। वह कपड़ों और सुपारियों के व्यापार में अपने भाग्य की परीक्षा कर सकता है,

परन्तु अच्छा यही है कि वह आप व्यापार न करे, और एक वैश्य उसके लिए व्यापार करे, क्योंकि वस्तुतः वाणिज्य, धोखा देने और झूठ बोलने के कारण, जो इसके साथ मिले हुए हैं, निषिद्ध है। वाणिज्य की आज्ञा उसे केवल घोर आवश्यकता की अवस्था में ही है, जब उसके पास आजीविका का और कोई साधन न हो। दूसरे वर्णों के सदृश, ब्राह्मण के लिए कर देना और राजाओं की सेवा करना अनिवार्य नहीं। फिर, उसे निरन्तर गउओं और घोड़ों में, पशुओं की देख रेख में, या अधिक सूद से धन कमाने में लीन रहने की आज्ञा नहीं।

पृष्ठ २६६

उसके लिए नीला रङ्ग अपवित्र है, यहाँ तक कि यदि यह उसके शरीर से लग जाय, तो उसे स्नान करना पड़ता है। अन्ततः, उसे सदा अग्नि के सामने ढोल बजाना, और इसके लिए निर्दिष्ट पवित्र मन्त्रों का पाठ करना चाहिए।

तीसरी अवस्था।

ब्राह्मण के जीवन की तीसरी अवस्था पचासवें वर्ष से पचहत्तरवें वर्ष तक, या, विष्णुपुराण के अनुसार, नव्वेवें वर्ष तक है। वह ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहता है, अपनी गृहस्थी को छोड़ देता है, और इसको तथा अपनी भार्या को अपनी सन्तान के सिपुर्द कर देता है, यदि उसकी स्त्री वानप्रस्थाश्रम में उसके साथ रहना पसन्द नहीं करती। वह बस्ती से बाहर रहता है, और वही जीवन फिर व्यतीत करता है जो उसने पहले आश्रम में किया था। वह छत के नीचे शरण नहीं लेता, और न वृक्ष की छाल के सिवा और कोई वस्त्र पहनता है, वह भी केवल उतनी जो उसके कटिभाग को ढँकने के लिए पर्याप्त हो। वह पृथ्वी पर बिना बिछौने के सोता है, और केवल फल, वनस्पतियाँ, और मूल खाकर अपना पोषण करता है। वह बालों को बढ़ा लेता है, और तैल की मालिश नहीं करता।

चौथा आश्रम जीवन के अन्त तक जाता है। वह गेरुवे वस्त्र पहनता और हाथ में एक छड़ी रखता है। वह सदा ध्यान में मग्न रहता है; वह मन को मित्रता और शत्रुता से रहित कर देता, और काम, क्रोध, और लालसा का उन्मूलन कर डालता है। वह किसी के साथ बात बिलकुल नहीं करता। स्वर्गीय पुरस्कार की प्राप्ति के उद्देश्य से जब वह किसी विशेष पुण्यस्थान की यात्रा करता है, तब मार्ग में वह गाँव में एक दिन से अधिक, या नगर में पाँच दिन से अधिक नहीं ठहरता। यदि उसे कोई कुछ देता है, तो वह उसमें से अगले दिन के लिए शेष कुछ नहीं रखता। मुक्ति-मार्ग की चिन्ता करने और उस मोक्ष तक पहुँचने के सिवा, जहाँ से इस संसार में फिर लौटना नहीं होता, उसका और कोई काम नहीं।

चौथा आश्रम।

ब्राह्मण के सारे जीवन में उसका सामान्य धर्म पुण्यशीलता के काम, दान देना और दान लेना हैं। क्योंकि जो कुछ ब्राह्मण देते हैं वह पितरों के पास लौट जाता है (वास्तव में पितरों के लिए लाभ है)। उसे अनवरत रूप से पढ़ना, यज्ञ करना, उस आग की रक्षा करना जिसको वह सुलगाता है, उस पर नैवेद्य चढ़ाना, उसकी पूजा करना, और बुझने से इसे बचाना चाहिए, ताकि वह मृत्यु के पश्चात् इससे जलाया जाय। इसे होम कहते हैं।

ब्राह्मणों के सामान्य धर्म्म।

प्रति दिन वह तीन बार अवश्य स्नान करे; उदयकाल की सन्धि में, अर्थात् सवेरे तड़के, अस्तकाल की सन्धि में, अर्थात् गोधूलि समय, और इन दोनों के बीच मध्याह्न में। पहला स्नान निद्रा के कारण है, क्योंकि शरीर के छिद्र इस काल में शिथिल हो गये हैं। स्नान नैमित्तिक मल से शुद्धि और भगवत्-प्रार्थना के लिए तैयारी है।

उनकी प्रार्थना में स्तुति, कीर्तन, और अपनी विशेष रीति के अनुसार प्रणिपात होता है, अर्थात् वे अपने दोनों अँगूठों पर साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं, जब कि हाथों की दोनों हथेलियाँ जुड़ी हुई होती हैं, और वे अपने मुख सूर्य की ओर फेरते हैं। कारण सूर्य, दक्षिण के सिवा और चाहे वह कहीं भी हो, उनका किबला है। क्योंकि वे दक्षिणाभिमुख होकर पुण्यशीलता का कोई भी काम नहीं करते; जब वे किसी बुरी और अशुभ बात में लगे हों तभी वे दक्षिणाभिमुख होते हैं।

जिस समय सूर्य याम्योत्तरवृत्त (मध्याह्न) से झुक जाता है वह समय स्वर्गीय पुरस्कार प्राप्त करने के लिए बहुत उपयुक्त है। इसलिए इस समय ब्राह्मण को अवश्य शुद्ध होना चाहिए।

सायङ्काल रात के खाने और प्रार्थना का समय है। ब्राह्मण स्नान किये बिना ही रात का भोजन और प्रार्थना कर सकता है। इसलिए यह बात स्पष्ट है कि तीसरे स्नान के विषय में नियम उतना कड़ा नहीं जितना कि पहले और दूसरे स्नानों के सम्बन्ध में है।

रात्रि-स्नान ब्राह्मण के लिए केवल ग्रहणों के समयों में ही आवश्यक है, ताकि वह उस अवसर के लिए निर्दिष्ट नियमों और यज्ञों को करने के लिए तैयार हो।

ब्राह्मण जब तक जीता है, दिन में केवल दो ही बार, मध्याह्न और प्रदोष को, खाता है; और जब वह भोजन करने लगता है, तब पहले वह उतना भोजन जितना कि एक-दो मनुष्यों के लिए पर्याप्त हो, भिक्षा के रूप में, अलग रख लेता है, विशेषतः उन अपरिचित ब्राह्मणों के लिए जो सायङ्काल कुछ माँगने के लिए अचानक आ निकलें। उनके प्रतिपालन की उपेक्षा करना भारी पाप है। फिर, वह कुछ गउओं, पक्षियों, और

अग्नि के लिए अलग रख लेता है। जो शेष बचता है उस पर मन्त्र पढ़कर वह उसको खाता है। उसकी थाली में जो कुछ बच रहता है उसे वह अपने घर के बाहर रख देता है, और फिर उसके निकट नहीं जाता, क्योंकि अब वह उसके लिए ग्राह्य नहीं रहा। यह संयोगवश पास से लाँघनेवाले उस प्राणी के लिए निरूपित है जिसको इसकी आवश्यकता हो, चाहे वह मनुष्य हो, पक्षी हो, कुत्ता हो, या कुछ और हो।

ब्राह्मण के पास पानी के लिए पात्र अवश्य होना चाहिए। यदि कोई दूसरा उसका उपयोग कर ले, तो इसे तोड़ दिया जाता है। यही बात उसके खाने के यन्त्रों पर लागू होती है। मैंने ऐसे ब्राह्मण देखे हैं जो अपने सम्बन्धियों को अपने साथ एक ही थाली में खाने देते थे, परन्तु उनमें से बहुत से इसे पसन्द नहीं करते।

उसे उत्तर में सिन्धु नदी और दक्षिण में चर्मण्वती नदी के बीच-बीच निवास करना होता है। उसे इन सीमान्त में से किसी एक को पार करके तुर्कों या कर्णाट के देशमें प्रवेश करने की आज्ञा नहीं। इसके अतिरिक्त, उसके लिए पूर्व और पश्चिम में महासागर के बीचों बीच रहना आवश्यक है। लोग कहते हैं कि उसको ऐसे देश में रहने की आज्ञा नहीं जिसमें वह घास नहीं उगती जिसको वह अनामिका उँगली पर पहनता है, और जहाँ काले बालोंवाले मृग नहीं चरते। यह वर्णन उस सारे देश के लिए है जो उन सीमाओं के अन्दर है जिनका अभी उल्लेख हुआ है। यदि वह उनके पार चला जाता है तो वह पाप करता है।

ऐसे देश में जहाँ घर में वह सारे का सारा स्थान जो इसलिए बनाया जाता है कि उस पर बैठकर लोग भोजन करें चिकनी मिट्टी से लीपा नहीं जाता, जहाँ लोग, इसके विपरीत, प्रत्येक भोजन करने-

वाले व्यक्ति के लिए एक स्थान पर जल डालकर और इसे गउओं के गोबर के साथ लीपकर अलग-अलग खाना खाने की जगह तैयार करते हैं, वहाँ ब्राह्मण के खाना खाने की जगह का आकार वर्ग होना चाहिए। जिन लोगों में ऐसी खाना खाने की जगहें तैयार करने की रीति है वे इस रीति का कारण यह देते हैं—खाने का स्थान भोजन करने से मैला हो जाता है। यदि खाने की क्रिया समाप्त हो चुकी है, तो स्थान को धो और लीप दिया जाता है ताकि यह पुनः पवित्र हो जाय। अब, यदि, मैले स्थान को एक अलग चिह्न द्वारा जुदा नहीं किया गया, तो आप दूसरे स्थानों को भी जूठा ही मान लेंगे, क्योंकि वे एक दूसरे के सदृश हैं और उनकी आपस में पहचान नहीं हो सकती।

धर्म्म-शास्त्र में उनके लिए पाँच वस्तुओं का निषेध है—प्याज़, लहसुन, एक प्रकार का कद्दू, गाजरों की तरह के एक पेड़ की जड़ जो कि क्रञ्चन (?) कहलाता है, और एक और तरकारी जो उनके पोखरों के गिर्द, जिन्हें नाली कहते हैं, उगती है।

चौंसठवाँ परिच्छेद

उन अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों पर जो ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य जातियाँ अपने जीवन-काल में करती हैं।

क्षत्रिय वेद को पढ़ता और सीखता है, परन्तु इसे पढ़ाता नहीं। वह आग में नैवेद्य चढ़ाता है, और पुराणों के नियमों के अनुसार आचरण करता है। जिन स्थानों में, जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं, भोजन करने के लिए चौका बनाया जाता है, वहाँ वह इस चौके को नुकीला बनाता है। वह प्रजा पर शासन करता और उनकी रक्षा करता है, क्योंकि वह इस काम के लिए उत्पन्न किया गया है। वह तिहरे यज्ञोपवीत की एक रस्सी से और सूत की एकहरी एक दूसरी रस्सी से अपने को लपेटता है। यह काम तब किया जाता है जब उसकी आयु का बारहवाँ वर्ष समाप्त हो चुकता है।

अकेले वर्णों के कर्तव्य।

वैश्य का यह धर्म है कि वह कृषि करे और भूमि को जोते, पशु पाले, और ब्राह्मणों की आवश्यकताओं को निवृत्त करे। उसे केवल एकहरा यज्ञोपवीत धारण करने की आज्ञा है जो कि दो तारों का बना होता है।

शूद्र ब्राह्मण के नौकर के सदृश है, जो उसके काम-काज की देख-भाल और उसकी सेवा करता है। यदि, परले दर्जे का निर्धन

होने पर भी, वह यज्ञोपवीत के बिना नहीं रहना चाहता, तो वह केवल सन का यज्ञोपवीत पहन लेता है। प्रत्येक ऐसा काम जो ब्राह्मण का विशेषाधिकार समझा जाता है, जैसा कि ईश्वर-प्रार्थना करना, वेद-पाठ, और होम, उसके लिए यहाँ तक निषिद्ध है कि जब, उदाहरणार्थ, यह प्रमाणित हो जाय कि शूद्र या वैश्य ने वेद का उच्चारण किया है, तब ब्राह्मण लोग राजा के सम्मुख उस पर दोष लगाते हैं, और राजा उसकी जीभ काट डालने की आज्ञा दे देता है। परन्तु, भगवान् का चिन्तन, धर्म्मशीलता के काम, और दान देने का उसके लिए निषेध नहीं।

पृष्ठ २७१

जो मनुष्य कोई ऐसा व्यवसाय करने लगता है जिसके करने का उसके वर्ण को अधिकार नहीं, जैसा कि, उदाहरणार्थ, ब्राह्मण का वाणिज्य, या शूद्र का कृषि करना, तो वह एक ऐसा पाप या अपराध करता है, जिसे वे चोरी के अपराध से कुछ ही कम समझते हैं।

हिन्दुओं के ऐतिह्यों में से एक यह है—

राजा रामचन्द्रजी के समय में मानवी आयु बहुत लम्बी, सदा सुनिश्चित और सुविख्यात लम्बाई की, होती थी। यहाँ तक कि कभी कोई बच्चा अपने पिता के सामने न मरता था। किन्तु, तब एक बार ऐसा हुआ कि एक ब्राह्मण का पुत्र पिता के जीवन-काल में ही मर गया। अब ब्राह्मण बच्चे को राजा के द्वार पर लाकर कहने लगा—"यह नई बात तेरे समय में केवल इसी कारण से हुई है, कि देश की अवस्था में कोई वस्तु विगलित है, और एक वज़ीर तेरे राज्य में कोई उपद्रव की बात करता है।" तब राम

राजा राम, चाण्डाल और ब्राह्मण की कथा।

इसका कारण मालूम करने लगा, और अन्ततः लोगों ने उसे एक चाण्डाल दिखलाया जो भगवत्पूजा और आत्म-पीड़ा में अत्यन्त परिश्रम कर रहा था। राजा सवार होकर उसके पास गया। उसने देखा कि वह गङ्गा के किनारे, नीचे को सिर किये, किसी चीज़ पर लटक रहा है। राजा ने अपना धनुष झुकाया, और बाण मारकर उसकी अंतड़ियाँ चीर डालीं। तब वह बोला—"यह लो! मैं तुझे एक ऐसे कर्म के लिए मारता हूँ, जिसके करने का तुझे अधिकार नहीं।" जब राजा लौटकर घर पहुँचा तब उसने ब्राह्मण के पुत्र को, जो उसके दरवाज़े के सामने रक्खा हुआ था, जीता पाया।

चाण्डाल के सिवा शेष सब लोग, जहाँ तक वे हिन्दू नहीं, म्लेच्छ अर्थात् अपवित्र कहलाते हैं, वे सब जो मनुष्यों को मारते और पशुओं का वध करते और गउओं का मांस खाते हैं।

इन सब चीज़ों का मूल वर्णों या श्रेणियों का भेद है। एक जन-समुदाय दूसरों को मूर्ख समझता है। इस बात को अलग रख-कर, सब मनुष्य एक दूसरे के बराबर हैं, जैसा कि वासुदेव उस मनुष्य के विषय में कहता है जो मोक्ष का इच्छुक है—"ज्ञानी पुरुष के विचार में ब्राह्मण और चाण्डाल, मित्र और शत्रु, विश्वासपात्र और कपटी, ऐसे ही, साँप और छछूँदर (Weasel) एक बराबर हैं। यदि बुद्धिमान् की दृष्टि में सब बराबर हैं, तो अज्ञानी को वे एक दूसरे से अलग और भिन्न-भिन्न प्रतीत होती हैं।"

सब चीज़ों के बराबर होने के विषय में दार्शनिक मत।

वासुदेव अर्जुन को कहता है—"यदि संसार की सभ्यता वह है जो कि अभिप्रेत है, और यदि इसका अधिकार तब तक आगे नहीं बढ़ सकता जब तक कि बुराई को दबाने के लिए हम युद्ध नहीं करते, तो हम जो विज्ञ हैं हमारा कर्तव्य है कि कर्म करें

और शुद्ध करें, जो चीज़ हमारे भीतर न्यून है उसका अन्त करने के लिए नहीं, किन्तु इसलिए कि यह जो कुछ अस्वस्थ है उसको निरामय करने और विनाशक तत्त्वों को निर्वासित करने के लिए आवश्यक है। तब, जिस प्रकार बच्चे अपने बड़ों का अनुकरण करते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी लोग, कर्मों का वास्तविक आशय और तात्पर्य जाने बिना, कर्म करने में हमारा अनुकरण करते हैं। क्योंकि उनकी प्रकृति को बौद्धिक रीतियों से विरक्ति है और वे काम और क्रोध के प्रभावों के अनुसार कर्म करने के लिए अपनी इन्द्रियों पर केवल बल का प्रयोग करते हैं। इन सबमें, ज्ञानवान् और शिक्षित मनुष्य उनके बिलकुल विपरीत है।"

पैंसठवाँ परिच्छेद

———:०:———

यज्ञों पर ।

वेद के अधिकांश में यज्ञों का वर्णन है और वह प्रत्येक यज्ञ का वर्णन करता है। यज्ञ विस्तार में भिन्न-भिन्न हैं, यहाँ तक कि उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनको उनके राजाओं में से सबसे बड़ा ही कर सकता है। ऐसा, उदाहरणार्थ, अश्वमेध है। एक घोड़ी देश में चरने के लिए खुली छोड़ दी जाती है, और कोई मनुष्य उसे नहीं रोकता। सिपाही उसके पीछे जाते हैं, उसे हाँकते हैं, और उसके आगे उच्च स्वर से कहते हैं—"यह (घोड़ी) जगत् का राजा है। जो इसे नहीं मानता, वह सामने आवे।" ब्राह्मण उसके पीछे चलते हैं और जहाँ-जहाँ वह लीद करती है वहाँ वे होम करते हैं। इस प्रकार जब वह संसार के सभी भागों में से घूम चुकती है तब वह ब्राह्मणों पर और उस पर जिसकी कि वह सम्पत्ति है अनुरक्त हो जाती है।

अश्वमेध।

पृष्ठ २७२

फिर, यज्ञ संस्थिति की दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं, जिससे उनमें से विशेष यज्ञों को केवल वही कर सकता है जिसका जीवन बहुत लम्बा हो; और ऐसे लम्बे जीवन इस हमारे युग में अब नहीं होते। इसलिए उनमें से बहुत से उठा दिये गये हैं, और केवल थोड़े से ही रह गये हैं और आजकल किये जाते हैं।

हिन्दुओं के मतानुसार, अग्नि सब कुछ खा लेती है। इसलिए, यदि कोई अपवित्र वस्तु—जैसा कि जल—इसके साथ मिला दी जाय, तो यह अपवित्र हो जाती है। इसलिए वे आग और पानी के विषय में, यदि वे अहिन्दुओं के हाथों में हों, बहुत ही सूक्ष्माचारनिष्ठ हैं, क्योंकि ये वस्तुएँ उनके स्पर्श से अपवित्र हो जाती हैं।

सामान्य यज्ञ पर।

अग्नि अपने भाग के लिए जो कुछ खाती है, वह देवों के पास लौट जाता है, क्योंकि अग्नि उनके मुखों से निकलती है। ब्राह्मण जो चीज़ें खाने के लिए अग्नि की भेंट करते हैं वे तेल और भिन्न-भिन्न अन्न—गेहूँ, जौ और चावल—हैं जिनको वे आग में फेंकते हैं। फिर, यदि वे अपने लिए यज्ञ कर रहे हों तो वे वेद के निर्दिष्ट मन्त्रों का पाठ करते हैं। परन्तु यदि वे किसी दूसरे के नाम पर बलि दें, तो वे कुछ नहीं पढ़ते।

विष्णुधर्म आगे लिखे ऐतिह्य का उल्लेख करता है—"एक समय की बात है कि दैत्य-जाति का हिरण्याक्ष नामक एक शक्तिशाली और वीर मनुष्य एक विस्तृत देश पर राज्य करता था। उसके दृकीष (?) नाम की एक पुत्री थी, जो सदा पूजा में लगी रहती और उपवास तथा संयम द्वारा अपनी जाँच करती रहती थी। इससे पुरस्कार के रूप में उसने स्वर्ग में एक स्थान उपार्जित किया था। उसका महादेव के साथ विवाह हुआ था। जब महादेव उसके साथ एकांत में हुए और देवों की रीति के अनुसार उसका साथ किया, अर्थात् बहुत लम्बा मैथुन और वीर्य को बहुत धीरे धीरे डालना, तब अग्नि को इसका पता लग गया और उसे शङ्का हुई कि

विष्णुधर्म्म नामक पुस्तक से अग्नि के कोढ़ी होने की कथा।

कहीं दोनों अपने सदृश एक अग्नि न उत्पन्न कर लें। इसलिए उसने उनको अपवित्र और नष्ट करने का निश्चय किया।

जब महादेव ने अग्नि को देखा, तो क्रोध की प्रचण्डता से उसका मस्तक स्वेद से भर गया, यहाँ तक कि उसका कुछ अंश पृथ्वी पर गिर पड़ा। पृथ्वी उसे पी गई, और इसका फल यह हुआ कि उसके गर्भ में मंगल, अर्थात् स्कन्द, या देवों की सेना का नायक उत्पन्न हो गया।

नाश करनेवाले रुद्र ने महादेव के वीर्य का एक बिन्दु पकड़ लिया, और लेकर फेंक दिया। यह पृथ्वी के भीतरी भाग में बिखर गया, और सब परमाणु-सदृश पदार्थों (?) को दिखलाता है।

परन्तु अग्नि को कोढ़ हो गया, और वह इतना लज्जित हुआ और घबराया कि वह डुबकी मारकर पाताल, अर्थात् सबसे निचली पृथ्वी में चला गया। अब, क्योंकि देवों के पास आग न रही, वे इसे ढूँढ़ने निकले।

पहले, मेंढकों ने उनको आग दिखाई। आग ने, देवों को देखकर, अपना स्थान छोड़ दिया और अपने को अश्वत्थ वृक्ष में छिपा लिया। उसने साथ ही मेंढकों को शाप दिया कि उनकी घिनौनी टरटर होगी और वे शेष सबके लिए गर्ह्य होंगे।

फिर, तोतों ने आग के छिपने का स्थान देवों को बता दिया। इस पर आग ने उन्हें शाप दिया, कि उनकी जीभें उलट-पुलट मुड़ेगीं, और उनकी जड़ वहाँ होगी जहाँ उनकी नोक होनी चाहिए। परन्तु देव उनसे बोले—यदि तुम्हारी जीभ उलट-पुलट मुड़ जायगी, तो तुम मनुष्यों के आवासों में बोलोगे और स्वादिष्ट पदार्थ खाओगे।

आग अश्वत्थ वृक्ष से दौड़कर शमी वृक्ष में चली गई। इस पर हाथी ने देवों को संकेत से उसके छिपने का स्थान बता दिया। अब इसने हाथी को शाप दिया कि उसकी जीभ उलट-पुलट हो जाय। परन्तु तब देव उससे बोले—"यदि तुम्हारी जिह्वा उलट-पुलट हो जायगी, तो तुम खाद्य द्रव्यों में मनुष्य के साझी होगे और उसकी बोली को समझोगे।"

अन्ततः वे आग के पास जा पहुँचे, परन्तु आग ने उनके साथ रहने से इनकार कर दिया क्योंकि वह कोढ़ी थी। अब देवों ने आग को नीरोग और कोढ़ से मुक्त कर दिया। देवगण बड़े सम्मान के साथ आग को अपने साथ लिवा लाये और उसे, मनुष्यों से उन भागों को लेकर जो वे देवों की भेंट करें उन तक पहुँचाने के लिए, अपने तथा मानवों के बीच मध्यस्थ बनाया।

छियासठवाँ परिच्छेद

—:o:—

पवित्र स्थानों के दर्शनों और तीर्थयात्रा पर

हिन्दुओं के लिए यात्राएँ आवश्यक ही नहीं, अनुमत और श्लाघ्य हैं। एक मनुष्य किसी पवित्र प्रदेश को, किसी बहुत ही पूज्य मूर्ति को या किसी पवित्र नदी को जाने के लिए चल पड़ता है। वह उनमें पूजा करता है, मूर्ति की पूजा करता है, उसको भेंट चढ़ाता है, स्तुति और प्रार्थना करता है, उपवास करता है, और ब्राह्मणों, पुरोहितों, और दूसरों को दान देता है। वह अपना सिर और दाढ़ी मुँड़ा देता है, और घर को लौट आता है।

पृष्ठ २७३

वहुत पूज्य पवित्र सरोवर मेरु के गिर्द ठण्डे पर्वतों में हैं। उनके विषय में आगे लिखी जानकारी वायु और मत्स्य दोनों पुराणों में मिलती है—

"मेरु के पैर पर अर्हत (?) एक बहुत बड़ा सरोवर है, जो चन्द्रमा के सदृश चमकता हुआ बताया जाता है। इसमें से जम्बा (? जंबु) नदी निकलती है, जो बहुत शुद्ध है, और शुद्धतम स्वर्ण पर से बहती है।

मत्स्य और वायु पुराणों से पवित्र सरोवरों के संबंध में एक अवतरण।

"श्वेत पर्वत के निकट उत्तरमानस सरोवर है, और इसके गिर्द बारह और सरोवर हैं, जिनमें से प्रत्येक एक झील के सदृश है।

वहाँ से दो नदियाँ, साण्डो (?) और मद्ध्यन्दा (?), निकलती हैं, जो बहती हुई किम्पुरुष को जाती हैं।

"नील पर्वत के समीप कमलों से अलङ्कृत प य व द (पितन्द ?) सरोवर है।

"निषध पर्वत के समीप विष्णुपद सरोवर है, जहाँ से सरस्वती, अर्थात् सरसुती, नदी आती है। इसके अतिरिक्त, गन्धर्वी नदी वहाँ से आती है।

"कैलास पर्वत में, समुद्र के समान विशाल, मन्द नाम का सरोवर है, जहाँ से मन्दाकिनी नदी आती है।

"कैलास के उत्तर-पूर्व में चन्द्रपर्वत है, और उसके पैर पर आचूद (?) सरोवर है, जहाँ से आचूद नदी आती है।

"कैलास के दक्षिण-पूर्व में लोहित पर्वत है, और उसके पैर पर लोहित नाम का एक सरोवर। वहाँ से लोहित नदी आती है।

"कैलास के दक्षिण में सरयुशती (?) पर्वत है, और इसके पैर पर मानस सरोवर है। वहाँ से सरयू नदी आती है।

"कैलास के पश्चिम में, हिम से सदा आच्छादित, अरुण पर्वत है, जिस पर चढ़ा नहीं जा सकता। उसके पैर पर शैलोदा सरोवर है, जहाँ से शैलोदा नदी आती है।

"कैलास के उत्तर में गौर (?) पर्वत है; और इसके पैर पर च-न-द-सर (?) अर्थात् सुवर्ण की रेतवाला सरोवर है। इस सरोवर के निकट राजा भगीरथ ने तपस्या की थी।

"उसकी कथा यों है—हिन्दुओं के सगर नाम के एक राजा के ६०,००० पुत्र थे, जो सबके सब दुरात्मा और नीच थे। एक बार उनका एक घोड़ा खो गया। वे तत्काल उसे ढूँढ़ने लगे, और ढूँढ़ते समय वे सतत रूप

भगीरथ की कथा।

से इधर उधर इतनी प्रचण्डता से दौड़े कि उसके फल से पृथ्वी का पृष्ठतल टूट गया। उन्होंने पृथ्वी के अभ्यंतर में घोड़े को एक मनुष्य के सामने खड़ा पाया। वह मनुष्य भीतर को घुसी हुई आँखों के साथ नीचे की ओर देख रहा था। जब वे उसके निकट पहुँचे तो उसने उन पर एक ऐसी दृष्टि डाली कि उसके फल से वे वहीं जल गये और अपने दुष्कर्मों के कारण नरक में चले गये।

"पृथ्वी का बैठा हुआ भाग समुद्र, एक महासागर, बन गया। उस राजा के वंशजों में से भगीरथ नाम का एक राजा, अपने पूर्वजों का इतिहास सुनकर, बड़ा प्रभावित हुआ।

पृष्ठ २७४

वह उपर्युक्त सरोवर पर गया, जिसकी तह परिष्कृत स्वर्ण था, और वहाँ ठहरकर दिन को उपवास तथा रातों को पूजा करने लगा। अन्ततः, महादेव ने उससे पूछा कि क्या चाहते हो; इस पर उसने उत्तर दिया, 'मैं गङ्गा नदी चाहता हूँ, जो स्वर्ग में बहती है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि जिसके ऊपर से इसका पानी बहता है उसके सब पाप क्षमा कर दिये जाते हैं'। महादेव ने उसकी कामना स्वीकार कर ली। किन्तु, मन्दाकिनी गङ्गा का पात्र थी, और गङ्गा बड़ी गर्विता थी, क्योंकि कोई भी मनुष्य कभी उसके सामने खड़ा नहीं हो सका था। अब महादेव ने गङ्गा को लेकर अपने सिर पर रख लिया। जब गङ्गा वहाँ से बाहर न जा सकी, तो वह बड़े क्रोध से भयङ्कर कोलाहल करने लगी। किन्तु, महादेव उसे दृढ़ता-पूर्वक थामे रहे, जिससे किसी व्यक्ति के लिए उसमें डुबकी लगाना सम्भव न था। तब उसने गङ्गा का भाग लेकर भगीरथ को दे दिया, और इस राजा ने इसकी सात शाखाओं में से मध्यवर्ती को अपने पूर्वजों की अस्थियों पर से बहाया, जिससे वे दण्ड से छूट गये। इसलिए हिन्दू लोग अपने मृतकों की जली हुई

हड्डियाँ गङ्गा में डालते हैं। गङ्गा भी उस राजा के, अर्थात् भगीरथ के, नाम से जो उसे मर्त्यलोक में लाया था, पुकारी जाने लगी।"

हम आगे ही इस संबंध में हिन्दू ऐतिह्य उद्धृत कर चुके हैं कि द्वीपों में ऐसी नदियाँ हैं जो गङ्गा के समान पवित्र हैं। प्रत्येक ऐसे स्थान में, जिसके साथ कोई विशेष पवित्रता लगाई जाती है, हिन्दू स्नान के लिए सरोवर बनाते हैं। इसमें उन्होंने शिल्प की पराकाष्ठा को प्राप्त किया है, यहाँ तक कि हमारे लोग (मुसलिम) जब उनको देखते हैं, तो उन पर आश्चर्य करते हैं, और उनके समान कोई चीज़ बनाना तो दूर की बात रही, वे उनका वर्णन तक नहीं कर सकते। वे उनको बृहत् डील के बड़े बड़े पत्थरों का बनाते हैं। ये पत्थर, बहुत से पतों के सदृश पैड़ियों (या चौंतरों) के रूप में, तीखी और सुदृढ़ लौहशृङ्खलाओं द्वारा, एक दूसरे के साथ जोड़े हुए होते हैं; और ये चौंतरे मनुष्य के क़द से भी अधिक ऊँचाई तक, तालाब के चारों ओर जाते हैं। वे दो चौंतरों के बीच पत्थरों के बहिर्भाग पर कँगूरों के सदृश ऊपर को उठती हुई सीढ़ियाँ बनाते हैं। इस प्रकार पहली पैड़ियाँ या चौंतरे (तालाब के गिर्दागिर्द जाने वाली) सड़कों के सदृश हैं और कँगूरे (ऊपर और नीचे जाने-वाली) पैड़ियाँ हैं। यदि कभी बहुत से लोग तालाब के नीचे उतरते और बहुत से ऊपर चढ़ते हैं, तो वे एक दूसरे से मिलते नहीं, और सड़क कभी भीड़ से बंद नहीं हो जाती, क्योंकि चौंतरे बहुत से होते हैं, और ऊपर चढ़नेवाला व्यक्ति उस चौंतरे को छोड़कर जिस पर कि उतरनेवाले लोग जाते हैं सदा किसी दूसरे चौंतरे की ओर मुड़कर एक ओर को हो सकता है। इस व्यवस्था से कष्टदायक भीड़ नहीं होने पाती।

पवित्र सरोवरों की रचना पर।

मुलतान में एक ताल है जिसमें हिन्दू, यदि उन्हें रोका न जाय, स्नान करके पूजन करते हैं। एकहरे पवित्र तालों पर।

वराहमिहिर की संहिता कहती है कि तानेशर में एक ताल है जिसके जल में स्नान करने के लिए हिन्दू दूर दूर से आते हैं। इस रीति के कारण के विषय में वे यों कहते हैं—ग्रहण के समय दूसरे सब पवित्र तालों का पानी इस विशेष ताल में आता है। इसलिए, यदि मनुष्य इसमें स्नान करता है, तो यह ऐसी ही बात हो जाती है मानो उसने उन सब में से प्रत्येक में स्नान कर लिया। तब वराहमिहिर फिर कहता है—"लोग कहते हैं कि यदि सूर्य और चन्द्र के ग्रहण का कारण सिर (उच्चस्थान) न होता, तो दूसरे ताल इस ताल के पास न आते।"

जलाशय पवित्रता के लिए विशेष रूप से इसलिए प्रसिद्ध हो जाते हैं कि या तो वहाँ कोई महत्त्वपूर्ण घटना घटी है, या धर्म्म-ग्रन्थ में कोई ऐसा वचन या ऐतिह्य है जो उनके साथ सम्बन्ध रखता है। हम शौनक के कहे हुए शब्द आगे ही उद्धृत कर चुके हैं। ये शुक्र ने उसको ब्रह्मा के प्रमाण पर सुनाये थे। ये मूलतः ब्रह्मा को सम्बोधन करके कहे गये थे। इस पाठ में राजा बलि का, और जो कुछ वह उस समय तक करेगा जब कि नारायण उसको डुबाकर पाताल में भेज देगा उसका भी उल्लेख है। उसी पुस्तक में आगे लिखा वचन मिलता है—"मैं उसको केवल इसी प्रयोजन से करता हूँ कि मनुष्यों में समता, जिसका अनुभव वह करना चाहता है, नष्ट हो जायगी, जीवन की अवस्थाओं में मनुष्य भिन्न भिन्न होंगे, और इस भिन्नता को संसार की व्यवस्था का आधार बनाया जायगा; फिर, लोग उस के पूजन से मुड़कर मेरा पूजन और

स्पष्ट भूतों की असमता और देश-भक्ति के मूल पर शौनक से एक ऐतिह्य।

मुक में विश्वास करेंगे। सभ्य लोगों की पारस्परिक सहायता पहले से यह मान लेती है कि उनके बीच एक विशेष भेद है, जिसके फल से एक को दूसरे का प्रयोजन है। उसी सिद्धान्त के अनुसार, परमेश्वर ने जगत् को अपने में अनेक भिन्नताएँ रखनेवाला बनाया है। इस प्रकार एक-हरे देश एक दूसरे से भिन्न हैं, एक ठण्डा है, तो दूसरा गरम; एक की भूमि, जल, और वायु अच्छी है, तो दूसरे की भूमि कड़वी नमकीन, पानी गन्दा और दुर्गन्धयुक्त, और वायु अस्वास्थ्यकर। इस प्रकार की अभी और भी भिन्नताएँ हैं; कुछ अवस्थाओं में सब प्रकार के लाभ असंख्य और दूसरी में अल्प होते हैं। कुछ भागों में विशेष अवधि के पश्चात् बार बार लौट आनेवाले भौतिक विनिपात होते हैं; दूसरों में उनको कोई जानता भी नहीं। ये सब बातें सभ्य जनता को उन स्थानों को सावधानता-पूर्वक चुनने के लिए प्रेरित करती हैं जहाँ वे नगर बनाना चाहते हैं।

पृष्ठ २७५

"जो चीज़ जनता से ये बातें कराती है वह रीति और लोकाचार है। किन्तु, धार्मिक आज्ञाएँ लोकाचारों और रीतियों से बहुत अधिक शक्तिशालिनी हैं और मनुष्य की प्रकृति को बहुत अधिक प्रभावित करती हैं। लोकाचारों और रीतियों के आधारों का अन्वेषण और निरूपण किया जाता है, और उसके अनुसार वे या तो रख लिये जाते हैं या त्याग दिये जाते हैं। परन्तु धार्मिक आज्ञाओं के आधारों को ज्यों का त्यों रहने दिया जाता है। उनकी पूछताछ नहीं की जाती। अधिकांश लोग केवल निष्ठा से ही उन पर दृढ़ रहते हैं। वे उन पर तर्क-वितर्क नहीं करते, जिस प्रकार किसी अनुत्पादक प्रदेश के अधिवासी उस पर तर्क नहीं करते, क्योंकि वे उसमें उत्पन्न हुए हैं और उनको और किसी चीज़ का ज्ञान नहीं,

क्योंकि वे उस देश पर, उसे अपनी पितृभूमि समझकर, प्रेम करते
और उसको छोड़ना उन्हें कठिन जान पड़ता है। अब, यदि, भौति
भिन्नताओं के अतिरिक्त, राजनियम और धर्म में भी देश एक दूसरे
भिन्न हैं तो उन लोगों के हृदयों में, जो उनमें रहते हैं, इसके प्रति इत
अधिक अनुराग होता है कि इसका उन्मूलन कभी नहीं हो सकता।

हिन्दुओं के कुछ स्थान ऐसे हैं जो उनके राजनियम और धर्म
से सम्बद्ध कारणों से पूजित हैं, उदाहरणार्थ, बनारस (वाराणसी)

संश्रय के रूप में बनारस पर।

क्योंकि उनके तपस्वी वहाँ जाते और सदा के
लिए वहीं ठहर जाते हैं, जिस प्रकार काब़ा
के रहनेवाले सदा मक्के में ठहरे रहते हैं।
वे अपने जीवनों की समाप्ति तक वहाँ रहना चाहते हैं, ताकि मृत्यु
के पश्चात् उनका पुरस्कार इसके कारण अच्छा हो जाय। वे कहते
हैं कि घातक अपने अपराध के लिए उत्तरदाता ठहराया और अपनी
दुष्कृति के लिए दण्डित किया जाता है, सिवा उस अवस्था के जब
कि वह बनारस के नगर में प्रवेश करता है, जहाँ कि वह क्षमा
प्राप्त करता है। इस संश्रय की पवित्रता के विषय में वे आगे लिखी
कथा सुनाते हैं—

"ब्रह्मा आकार में चार-सिरवाला था। अब उसमें और शङ्कर
में, अर्थात् महादेव में, कुछ झगड़ा हो गया, और इसके पश्चात् जो
युद्ध हुआ उसका परिणाम यह हुआ कि ब्रह्मा का एक सिर कट
गया। उस समय यह रिवाज था कि विजयी निहत शत्रु के सिर
को अपने हाथ में लेकर मृतक के लिए अवमान के कर्म और
अपनी वीरता के चिह्न के रूप में उसे हाथ से नीचे लटका देता था।
फिर, मुँह में एक लगाम डाली गई। इस प्रकार ब्रह्मा का सिर
महादेव के हाथ से अवमानित हुआ। महादेव जहाँ जाता और जो

कुछ भी करता सदा सिर को अपने साथ रखता। नगरों में प्रवेश करते समय उसने एक बार भी कभी उसको अपने से अलग नहीं किया, यहाँ तक कि अन्त को वह बनारस में आया। बनारस में प्रवेश करने के पश्चात् सिर उसके हाथ से गिरकर अन्तर्धान हो गया।"

पूकर, तानेशर, माहूर काश्मीर और मुलतान के पवित्र सरोवरों पर।

इसी प्रकार का स्थान पूकर है, जिसकी कथा यह है—ब्रह्मा वहाँ एक बार यज्ञ कर रहा था, जब कि आग में से एक सूअर निकला। इसलिए वे वहाँ उसकी मूर्त्ति को सूअर की मूर्त्ति की सी दिखलाते हैं। नगर के बाहर, तीन स्थानों में, उन्होंने तालाब बना रक्खे हैं जो बड़े सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं, और पूजा के स्थान हैं।

इस प्रकार का एक दूसरा स्थान तानेशर है, जो कुरुक्षेत्र, अर्थात् कुरु की भूमि भी कहलाता है। कुरु एक किसान और धर्मपरायण, पुण्यात्मा मनुष्य था। वह दिव्य शक्ति से लोकोत्तर कर्म करता था। इसलिए देश उसके नाम पर कहलाता और उसके कारण पूजा जाता था। इसके अतिरिक्त, तानेशर भारत और दुष्टों के विनाश के युद्धों में वासुदेव के विक्रमों का रङ्गमञ्च है। इसी कारण से लोग वहाँ जाते हैं।

माहूर भी, ब्राह्मणों से भरा हुआ, एक पवित्र स्थान है। इसका सम्मान इसलिए होता है कि वहाँ पड़ोस में नन्दगोल नामक स्थान में वासुदेव का जन्म और पालन-पोषण हुआ था।

पृष्ठ २७६

आजकल हिन्दू काश्मीर की भी यात्रा करते हैं। अन्ततः, जब तक मुलतान का मूर्त्ति-मन्दिर नष्ट नहीं किया गया था वे वहाँ जाया करते थे।

सड़सठवाँ परिच्छेद

—:※:—

दान पर और इस बात पर कि मनुष्य को अपनी कमाई कैसे व्यय करना चाहिए।

प्रति दिन जितना भी सम्भव हो दान देना उनके लिए आवश्यक ठहराया गया है। वे रुपये को एक वर्ष, वरन् एक मास भी पुराना नहीं होने देते, क्योंकि यह अज्ञात भविष्य पर एक हुण्डी होगी, जिसके विषय में मनुष्य नहीं जानता कि वह उस (भविष्य) तक पहुँचेगा या नहीं।

जो कुछ वह फसलों से या पशुओं से कमाता है उसके विषय में वह सबसे पहले देश के शासक को वह कर देने के लिए बाध्य है जो कृषि-भूमि या गोचारण भूमि के साथ लगा रहता है। फिर, वह उसको आय का छठवाँ भाग उस रक्षा का स्वीकार करते हुए देता है जो वह अपनी प्रजा, उनकी सम्पत्ति, और उनके परिवारों की करता है। यही कर्तव्यता साधारण जनता के सिर पर भी है, परन्तु वे अपनी सम्पत्ति के विषय में घोषणाएँ करते हुए सदा झूठ बोलते और छल करते हैं। इसके अतिरिक्त, व्यापारी लोग भी उसी कारण से राजस्व देते हैं। केवल ब्राह्मण ही इन सब करों से मुक्त हैं।

करों को निकाल लेने के बाद बच रहनेवाले आय के शेषांश को किस प्रकार काम में लाना चाहिए, इस विषय में भिन्न-भिन्न सम्मतियाँ हैं। कुछ लोग उसका नवाँ भाग दान के लिए नियत

करते हैं। क्योंकि वे इसको तीन भागों में बाँटते हैं। उनमें से एक भाग हृदय को चिन्ता से बचाये रखने के लिए सञ्चित रक्खा जाता है। दूसरा भाग लाभ की प्राप्ति के लिए व्यापार में लगाया जाता है, और तीसरे भाग का तृतीयांश (अर्थात्, सारे का नवाँ भाग) दान में व्यय किया जाता है, जब कि दो दूसरे तृतीयांश उसी नियम के अनुसार व्यय किये जाते हैं।

दूसरे लोग इस आय को चार भागों में बाँटते हैं। एक चौथाई सामान्य व्ययों के लिए नियत किया जाता है, दूसरा चौथाई उदार मन के उदात्त कार्यों के लिए, तीसरा दान के लिए और चौथा सञ्चय में रखने के लिए, अर्थात् इसका उतना भाग जो तीन वर्षों के लिए सामान्य खर्चों से अधिक न हो। यदि वह चतुर्थांश जो सञ्चित रक्खा जायगा इस परिमाण से बढ़ता हो, तो केवल इसी परिमाण को सञ्चित रक्खा जाता है, और शेष को दान में व्यय कर दिया जाता है।

अर्थप्रयोग या प्रति सैकड़ा शुल्क लेने का निषेध है। ऐसा करने से मनुष्य को जो पाप होता है वह उस परिमाण के अनुरूप होता है जिससे कि शतोत्तर परिमाण मूल धन से अधिक बढ़ गये हैं। केवल शूद्र को ही प्रतिशतक लेने की आज्ञा है, (और वह भी तब तक) जब तक उसका लाभ मूलधन के पचासवें भाग से अधिक नहीं होता (अर्थात् वह दो प्रति सैकड़ा से अधिक न ले)।

अड़सठवाँ परिच्छेद

भक्ष्याभक्ष्य और पेयापेय पदार्थों पर।

आदि में प्रायः वध करने का उनके लिए निषेध था, जैसा कि ईसाइयों और मनीचियों के लिए है। परन्तु, लोगों में मांस की चाह है, और वे इसके विपरीत प्रत्येक आज्ञा को सदा एक ओर फेंक देते हैं। इसलिए अत्रोल्लिखित नियम विशेष रूप से केवल ब्राह्मणों पर ही लागू होता है, क्योंकि वे धर्म के रक्षक हैं, और धर्म्म उनको लालसाओं के सामने झुकने का निषेध करता है। यही नियम ईसाई पुरोहितवर्ग के उन सदस्यों पर लागू होता है जो पद में बिशपों से ऊपर हैं, यथा मेट्रोपॉलीटन, उदार, और कुलपति; निचले पदों पर, जैसे कि प्रसबाईटर (पुरोहित) और डीकन (कलीसिया के सांसारिक काम का प्रबन्धकर्त्ता), यह लागू नहीं होता, सिवा उस अवस्था के जब कि मनुष्य जिसके पास इनमें से कोई पद है वह साथ ही मंक (यति) भी हो।

क्योंकि अवस्था ऐसी है, इसलिए जन्तुओं को गला दबाकर मारने की आज्ञा है, परन्तु केवल विशेष-विशेष जन्तुओं को ही, दूसरों को छोड़ दिया गया है। ऐसे जन्तुओं का मांस, जिनके मारने की आज्ञा है, उस अवस्था में निषिद्ध है जब उनकी मृत्यु अकस्मात् हो जाय। जिन जन्तुओं को मारने की आज्ञा है वे ये हैं—भेड़ें, बकरियाँ, हिरण,

भक्ष्याभक्ष्य जन्तुओं की सूची।

शश, गैंडे (गन्ध), भैंसे, मछलियाँ, जल और स्थल-पक्षी, जैसा कि चिड़ियाँ, पंडुकियाँ, तीतर, मोर और दूसरे ऐसे जन्तु जो मनुष्य के लिए बीभत्स और हिंस्र नहीं।

पृष्ठ २७७

जिनका निषेध है वे ये हैं—गउएँ, घोड़े, खच्चर, गधे, ऊँट, हाथी, पालतू कुक्कुट, तोते, बुलबुलें, सब प्रकार के अण्डे और मदिरा। मदिरा की शूद्र को आज्ञा है। वह उसे पी सकता है, परन्तु इसे बेचने का उसे मजाल नहीं, क्योंकि उसे मांस बेचने की आज्ञा नहीं।

गो-मांस का निषेध क्यों किया गया था।

कुछ हिन्दू कहते हैं कि भारत के पूर्व के समय में गो-मांस-भक्षण की आज्ञा थी, और उस समय ऐसे यज्ञ होते थे जिनका गो-वध भाग था। परन्तु, उस समय के पश्चात् मनुष्यों की निर्बलता के कारण इसका निषेध कर दिया गया था, क्योंकि वे इतने दुर्बल थे कि अपने कर्तव्यों को पूरा नहीं कर सकते थे, जैसा कि वेद भी, जो मूलतः केवल एक था, बाद को, मनुष्यों के लिए इसका अध्ययन सुगम करने के उद्देश्य से ही, चार भागों में विभक्त कर दिया गया था। परन्तु यह कल्पना बहुत कम उपपादित है, क्योंकि गउओं के मांस का निषेध हलका करनेवाला या कम कड़ा उपाय नहीं, वरन्, इसके विपरीत, वह पहले नियम की अपेक्षा अधिक कठिन और अधिक व्यावर्तक है।

दूसरे हिन्दुओं ने मुझे बताया कि ब्राह्मण गो-मांस-भक्षण से दुःख पाया करते थे। क्योंकि उनका देश गरम है, शरीरों के भीतरी भाग ठण्डे हैं, इसलिए नैसर्गिक उष्णता उनमें मन्द हो जाती है, और पाचन-शक्ति इतनी निर्बल है कि भोजन के पश्चात् पान के पत्ते खाकर और सुपारी चबाकर उन्हें उसको तेज़ करना आवश्यक है। गरम पान शरीर के ताप को भड़काता है, पान के पत्ते के

ऊपर का चूना प्रत्येक गीली वस्तु को सुखा देता है, और सुपारी दाँतों, मसूढ़ों, और आमाशय पर सङ्कोचनशील औषध के रूप में क्रिया करती है। ऐसी अवस्था होने से ही उन्होंने गो-मांस के खाने का निषेध कर दिया, क्योंकि यह स्वारतः मोटा और ठण्डा होता है।

मैं, अपनी ओर से, अनिश्चित हूँ, और दो भिन्न भिन्न मतों के बीच इस रीति की उत्पत्ति के विषय में सन्देह करता हूँ।

(हस्तलेख में दीमक चाट गई)

आर्थिक हेतु के विषय में, हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि गौ वह जन्तु है जो यात्रा में मनुष्य का बोझ उठाकर, कृषि में हल चलाने और बोने के कामों में, गृहस्थी में दूध और उससे बनने-वाली चीज़ों से मनुष्य की सेवा करता है। इसके अतिरिक्त, मनुष्य इसके गोबर का, और शीत-काल में इसके श्वास का भी उपयोग करता है। इसलिए गो-मांस खाने का निषेध किया गया था; जैसा कि जब लोगों ने अलहज्जाज के पास शिकायत की कि बाबल अधि-काधिक उजाड़ होता जा रहा है, तो उसने भी गोमांस-भक्षण का निषेध कर दिया था।

मुझे बताया गया है कि आगे लिखा वचन किसी भारतीय पुस्तक से है—"सब वस्तुएँ एक हैं, चाहे उनकी आज्ञा हो या निषेध, वे दार्शनिक दृष्टि से बराबर हैं। उनका भेद केवल दुर्बलता और सब वस्तुएँ समान हैं। शक्ति में है। भेड़िये में भेड़ को चीरने की शक्ति है; इसलिए भेड़ भेड़िये का आहार है, क्योंकि भेड़ भेड़िये का विरोध नहीं कर सकती, और उसका अहेर है।" मैंने हिन्दू-पुस्तकों में इसी आशय के वचन पाये हैं। परन्तु, ऐसी बुद्धि समझ-दार मनुष्य को केवल ज्ञान से ही आती है, जब इसमें उसकी

गति इतनी हो जाती है कि ब्राह्मण और चण्डाल उसके लिए एक समान होते हैं। यदि वह इस अवस्था को पहुँच चुका है, तो दूसरी सब चीज़ें भी, जहाँ तक वह उनसे परहेज़ करता है, उसके लिए बराबर हैं। उसके लिए एक ही बात है, चाहे उन सबकी उसके लिए आज्ञा है, क्योंकि वह उनके बिना निर्वाह कर सकता है, या चाहे उनका उसके लिए निषेध है, क्योंकि उसको उनकी चाह नहीं। परन्तु, उन लोगों के लिए जो, अविद्या के जूए में जकड़े होने से, इन वस्तुओं की आवश्यकता रखते हैं, कुछ चीज़ों की आज्ञा है और कुछ का निषेध, और इससे दोनों प्रकार की वस्तुओं में एक दीवार खड़ी की गई है।

———

उनहत्तरवाँ परिच्छेद

विवाह, स्त्रियों के मासिक धर्म्म, भ्रूण और प्रसवावस्था पर।

किसी भी जाति का अस्तित्व नियमित विवाहित जीवन के बिना नहीं रह सकता, क्योंकि यह उन मनोविकारों के तुमुल को रोकता है जिनसे संस्कृत मन घृणा करता है, और यह उन सब कारणों को दूर करता है जो जन्तु में उस संकोप को भड़काते हैं जिसका परिणाम सदा अपकार होता है। जोड़ों में जन्तुओं के जीवन का विचार करने से, जोड़े का एक सदस्य दूसरे की किस प्रकार सहायता करता है, और उसी वर्ग के दूसरे जन्तुओं की कामुकता उनसे किस प्रकार अलग रक्खी जाती है, आप विवाह को एक आवश्यक संस्था विघोषित किये बिना नहीं रह सकते; परन्तु मनुष्य के लिए अव्यवस्थित संभोग या वेश्यापन एक लज्जाजनक क्रिया है, जो उन जन्तुओं के विकास की स्थिति को भी नहीं पहुँचती जो प्रत्येक दूसरी दृष्टि से मनुष्य से बहुत नीचे हैं।

विवाह की आवश्यकता।

पृष्ठ २७८

प्रत्येक जाति के यहाँ, और विशेषतः उन जातियों के यहाँ, जो ईश्वर-मूलक धर्म्म और नियम रखने का दावा करती हैं, विवाह की विशेष रीतियाँ होती हैं। हिन्दू बहुत छोटी आयु में विवाह करते हैं; इसलिए माता-पिता

विवाह का नियम।

अपने पुत्रों के लिए विवाह की व्यवस्था करते हैं। उस अवसर पर ब्राह्मण यज्ञों के अनुष्ठान करते हैं और उनको तथा दूसरों को दान मिलता है। विवाहोत्सव के उपकरण आगे लाये जाते हैं। उनमे कोई उपायन नहीं ठहराया जाता। पुरुष भार्या को केवल एक उपहार, जैसा वह उचित समझे, और एक विवाह-उपायन अग्रिम देता है, जिसको वापस माँगने का उसे कोई अधिकार नहीं, परन्तु स्त्री चाहे तो अपनी इच्छा से उसे वापस दे सकती है। पति-पत्नी का वियोग केवल मृत्यु द्वारा ही हो सकता है, क्योंकि उनमें विवाह-संबंधभेद (तलाक़) की प्रथा नहीं है।

पुरुष एक से चार तक स्त्रियाँ कर सकता है। उसे चार से अधिक लेने की आज्ञा नहीं; परन्तु यदि उसकी स्त्रियों में से कोई एक मर जाय, तो वह धर्म्य संख्या को पूर्ण करने के लिए एक दूसरी ले सकता है। किन्तु उसको इससे आगे न जाना चाहिए।

विधवा।

यदि मृत्यु के कारण स्त्री का पति न रहे, तो वह दूसरे पुरुष से विवाह नहीं कर सकती। उसे केवल दो बातों में से एक चुननी पड़ती है—या तो वह यावज्जीवन विधवा रहे या अपने को जला डाले; और पिछली घटना को ही अच्छा समझा जाता है, क्योंकि विधवा के रूप में वह जब तक जीती है उसके साथ बुरा व्यवहार किया जाता है। राजाओं की भार्याओं के विषय में, चाहे उनकी इच्छा हो या न हो, उनके यहाँ अपने को जला देने की रीति है, जिससे वे यह चाहते हैं कि उनमें से कोई स्त्री दैवात् कोई ऐसी बात न कर सके जो विश्रुत पति के अनुपयुक्त हो। इसमें अपवाद वे केवल प्रौढ़ अवस्था की या बच्चोंवाली स्त्रियों को ही बनाते हैं; क्योंकि पुत्र अपनी माता का ज़िम्मेदार रक्षक है।

उनके विवाह के नियमानुसार एक संबंधी की अपेक्षा एक अपरिचित से विवाह करना अच्छा है। पति के विषय में स्त्री का संबंध जितना दूर का हो उतना ही अच्छा है।

विवाह की निषिद्ध दशाएँ।

अपनी वंशज, जैसा कि पोती या परपोती, और अपनी पूर्वज, जैसा कि माता, दादी, या परदादी, दोनों प्रकार की प्रत्यक्ष संबंधिनी स्त्रियों के साथ विवाह का सर्वथा निषेध है। सपिण्ड संबंधियों के साथ भी, जैसा कि बहिन, भतीजी, मौसी या फूफी और उनकी पुत्रियाँ, विवाह का निषेध है, सिवा उस दशा के जब कि संबंधियों का जोड़ा, ज़ो आपस में विवाह करना चाहता है, पाँच क्रमागत पीढ़ियों द्वारा एक दूसरे से दूर हो चुका हो। उस अवस्था में निषेध हटा दिया जाता है, परन्तु, इतना होने पर भी, ऐसा विवाह उनमें पसन्द नहीं किया जाता।

कुछ हिन्दुओं का विचार है कि भार्याओं की संख्या वर्ण पर अवलम्बित है; इसके अनुसार, ब्राह्मण चार, क्षत्रिय तीन, वैश्य दो स्त्रियाँ, और शूद्र एक स्त्री ले सकता है। एक वर्ण का पुरुष अपने वर्ण की या अपने से निचले वर्ण या वर्णों की स्त्री से विवाह कर सकता है; परन्तु किसी मनुष्य को अपने से ऊँचे वर्ण की स्त्री से विवाह करने की आज्ञा नहीं।

भार्याओं की संख्या।

बच्चा माता के वर्ण का होता है, न कि पिता के वर्ण का। इस प्रकार, उदाहरणार्थ, यदि ब्राह्मण की स्त्री ब्राह्मण है, तो उसका बच्चा भी ब्राह्मण है; यदि वह शूद्र है तो उसका बच्चा भी शूद्र है। परन्तु, हमारे समय में, ब्राह्मण लोग, यद्यपि उनको आज्ञा है, अपने वर्ण की स्त्री के सिवा दूसरी स्त्री से विवाह नहीं करते।

रजःस्राव की जो लम्बी से लम्बी मुद्दत देखी गई है वह सोलह दिन है, परन्तु वास्तव में वह केवल पहले चार दिन रहता है, और

तब पति को अपनी पत्नी के साथ संभोग करने, वरन् घर में उसके समीप आने की भी आज्ञा नहीं होती, क्योंकि इस काल में वह अपवित्र होती है। चार दिन बीत जाने के पश्चात् स्नान करने पर वह पुनः शुद्ध होती है, और, चाहे रक्त अभी सर्वथा अन्तर्धान न भी हुआ हो, पति उसके साथ संभोग कर सकता है; क्योंकि यह रक्त रजःस्राव का रक्त नहीं, वरन् वहीं सार-द्रव्य समझा जाता है जिसके कि भ्रूण बनते हैं।

रजःस्राव की संस्थिति।

(ब्राह्मण का) यह कर्तव्य है कि यदि वह सन्तान की प्राप्ति के लिए भार्या के साथ संभोग करना चाहता है, तो वह गर्भाधान नामक यज्ञ करे; परन्तु वह इसे नहीं करता, क्योंकि इसमें स्त्री की उपस्थिति का प्रयोजन है, और इसलिए उसे इसको करते लज्जा होती है। इसका परिणाम यह होता है कि वह इस संस्कार को स्थगित करके, इसके अगले संस्कार सीमन्तोन्नयन, के साथ मिला देता है, जो गर्भ के चौथे मास में होता है। जब भार्या बच्चा जन चुकती है, तब जन्म और उस समय के बीच जब माँ बच्चे का पोषण आरम्भ करती है एक तीसरा यज्ञ किया जाता है। यह जात-कर्मन् कहलाता है।

गर्भ और प्रसव पर।

पृष्ठ २७९

प्रसूति के दिनों के बीत जाने के पश्चात् बच्चे का नाम रक्खा जाता है। नाम रखने के अवसर का यज्ञ नामकर्मन् कहलाता है।

जब तक स्त्री प्रसूतावस्था में होती है, वह किसी बर्तन का स्पर्श नहीं करती, और उसके घर में कुछ नहीं खाया जाता, न वहाँ ब्राह्मण आग जलाता है। ये दिन ब्राह्मण के लिए आठ, क्षत्रिय के लिए बारह, वैश्य के लिए पन्द्रह, और शूद्र के लिए तीस हैं।

नीच जातियों के लोगों के लिए, जिनकी गिनती किसी वर्ण में नहीं होती, कोई अवधि निश्चित नहीं।

बच्चे को स्तन से दूध पिलाने का लम्बे से लम्बा समय तीन वर्ष है, परन्तु इस विषय में कोई नियम नहीं है। बच्चे के बालों के पहली बार काटे जाने के अवसर का यज्ञ तीसरे वर्ष में किया जाता है, कानों का छेदन सातवें और आठवें वर्ष में होता है।

वेश्यापन के विषय में लोगों का विचार है कि इसकी उनके लिए आज्ञा है। इस प्रकार, जब काबुल को मुसलमानों ने विजय किया और काबुल के इस्पाहबाद ने इसलाम धर्म्म ग्रहण किया, तो उसने यह शर्त की कि उसे गोमांस खाने और अस्वाभाविक मैथुन करने के लिए विवश न किया जायगा (जिससे सिद्ध होता है कि उसे दोनों बातों से एक सी घृणा थी)। वास्तव में, जैसा लोग समझते हैं बात वैसी नहीं, परन्तु यों है कि वेश्यावृत्ति को दण्डित करने में हिन्दू उतनी कड़ाई से काम नहीं लेते। परन्तु, इसमें दोष राजा का है, जाति का नहीं। यदि ऐसा न हो, तो कोई भी ब्राह्मण या पुरोहित अपने मूर्त्ति-मन्दिरों में उन स्त्रियों को सहन न करे, जो गाती, नाचती, और क्रीड़ा करती हैं। राजा लोग उनको, केवल आर्थिक कारणों से, अपने नगरों के लिए आकर्षण, और अपनी प्रजा के लिए प्रमोद का प्रलोभन बनाते हैं। वे इस व्यापार से, अर्थदण्ड और राजस्व दोनों के रूप में, जो आय प्राप्त करते हैं, उससे वे उन व्ययों को पूरा करना चाहते हैं जो उनके कोष को सेना पर व्यय करने पड़ते हैं।

वेश्यावृत्ति के कारणों पर।

इसी रीति पर बूइयां राजा अ.ज़ुदुद्दौला काम करता था। इसके अतिरिक्त उसका एक दूसरा उद्देश्य भी था, अर्थात् अपने अविवाहित सैनिकों की कामुकता से अपनी प्रजा की रक्षा करना।

सत्तरवाँ परिच्छेद

——:※:——

व्यवहार-पदों पर।

न्यायाधीश वादी से अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध एक ऐसी प्रसिद्ध लिपि में लिखा हुआ निदर्शन-पत्र माँगता है जो इस प्रकार के लेखों के लिए उपयुक्त समझा जाता है, और निदर्शनपत्र में उसकी प्रार्थना की यथार्थता का सुप्रतिपादित प्रमाण चाहता है। यदि कोई लिखित निदर्शनपत्र न हो, तो लिखित टीप के बिना ही साक्षियों द्वारा विवाद का निश्चय कर दिया जाता है।

विधि।

साक्षी चार से कम नहीं होने चाहिएँ, किन्तु वे अधिक हो सकते हैं। केवल उसी अवस्था में ही जब कि किसी साक्षी का साक्षित्व विचारपति के सामने पूर्णरूप से स्थापित और निश्चित हो, वह उसे स्वीकार कर सकता, और प्रश्न का निर्णय केवल इसी साक्षी के साक्षित्व के आधार पर कर सकता है। परन्तु, वह गुप्तरूप से भेद लेने, प्रकाश्य में संकेत या लक्षण मात्र से युक्तियाँ निकालने, एक बात से जो किसी दूसरे के विषय में निश्चित प्रतीत होती है निर्णय करने, और सचाई को निकालने के लिए सब प्रकार की ठग-विद्या करने को, जैसा कि इयास इब्न मुआविया किया करता था, स्वीकार नहीं करता।

साक्षियों की संख्या।

यदि वादी अपना अधिकार सिद्ध नहीं कर सकता, तो प्रतिवादी को प्रतिज्ञा करनी पड़ती है, परन्तु वह यह कहकर वादी को शपथ भी दे सकता है कि "तू शपथ ले कि तेरा अधिकार सच्चा है और जिस चीज़ के लिए तू दावा करता है वह मैं तुझे दे दूँगा।"

अधिकार के विषय के अनुसार, शपथ के अनेक प्रकार हैं। यदि विषय कोई बड़े महत्त्व का नहीं होता और वादी इस बात पर सहमत हो जाता है कि अभियुक्त व्यक्ति शपथ खा ले, तो प्रतिवादी पाँच विद्वान् ब्राह्मणों के सामने इन शब्दों में केवल शपथ लेता है; "यदि मैं झूठ बोलूँ तो उसे हानिमूल्य के रूप में मैं अपने माल का उतना दूँगा जितना कि उसकी प्रतिज्ञा के परिमाण के आठ गुना के बराबर होगा।"

भिन्न भिन्न प्रकार के शपथ और परीक्षाएँ।

एक उच्च प्रकार का शपथ यह है; अभियुक्त व्यक्ति को ब्राह्मण (?) नामक बीष (विष ?) पीने के लिए बुलाया जाता है। यह बहुत बुरे प्रकारों में से एक है; परन्तु यदि वह सत्य कह देता है, तो इस पान से उसकी कुछ हानि नहीं होती।

इससे भी उच्चतर प्रकार की परीक्षा यह है—वे मनुष्य को एक गहरी और वेगवती नदी, या बहुत पानीवाले गहरे कुएँ के पास ले जाते हैं। तब वह जल से कहता है—"क्योंकि तेरा संबंध निष्कलङ्क देवों से है, और तू गुप्त और प्रकट सब कुछ जानता है, यदि मैं झूठ कहता हूँ तो तू मुझे मार डाल, और यदि मैं सत्य कहता हूँ तो तू मेरी रक्षा कर।" तब पाँच मनुष्य उसको अपने में लेकर जल में फेंक देते हैं। यदि उसने सत्य कहा है तो वह डूबे और मरेगा नहीं।

पृष्ठ २८०

इससे भी उच्चतर प्रकार यह है—विचारपति वादी और प्रतिवादी दोनों को नगर या देश की सबसे अधिक मान्य प्रतिमा के मन्दिर में भेजता है। वहाँ प्रतिवादी को उस दिन उपवास करना होता है। दूसरे दिन वह नवीन वस्त्र धारण करता है, और वादी के साथ उसी मन्दिर में चौकी पर रहता है। तब पुजारी लोग प्रतिमा पर जल डालते और वह जल उसे पीने के लिए देते हैं।

तब, यदि उसने सत्य नहीं कहा होता, तो तत्काल उसे रक्त का वमन हो जाता है।

इससे भी उच्चतर प्रकार यह है—प्रतिवादी को तराज़ू के पलड़े पर रखकर तोला जाता है; इस पर उसे तराज़ू पर से उतार लिया जाता, और तराज़ू को ज्यों का त्यों छोड़ दिया जाता है। तब वह अपने साक्षित्व की सचाई के लिए साक्षियों के रूप में अमूर्त प्राणियों, देवों, दिव्य सत्ताओं को, एक दूसरे के पश्चात्, आह्वान करता है, और जो कुछ वह बोलता है वह सब एक काग़ज़ के टुकड़े पर लिखकर अपने सिर के साथ बाँध लेता है। उसे एक बार फिर तराज़ू के पलड़े पर रक्खा जाता है। यदि उसने सत्य कहा है तो उसका वज़न पहली बार की अपेक्षा बढ़ जाता है।

इससे भी बढ़कर एक प्रकार है। वह यह है—वे मक्खन और तिलों का तेल बराबर बराबर लेकर एक देगची में उबालते हैं। तब वे उसमें एक पत्ता डालते हैं, जो पिलपिला और दग्ध हो जाने से उनके लिए मिश्रण के उबलने का लक्षण है। जब उबलने की क्रिया खूब ज़ोरों पर होती है, तब वे एक सुवर्ण-मुद्रा देगची में फेंकते हैं, और प्रतिवादी को हाथ के साथ उसे बाहर निकालने की आज्ञा देते हैं। यदि उसने सत्य कहा है, तो वह उसे निकाल लेता है।

उच्चतम प्रकार की परीक्षा यह है—वे लोहे के एक टुकड़े को इतना गरम करते हैं कि वह पिघलने के निकट पहुँच जाता है। तब उसे चिमटे से पकड़कर प्रतिवादी के हाथ पर रख दिया जाता है। लोहे और उसके हाथ के बीच किसी पेड़ के एक चौड़े पत्ते, और उसके नीचे कुछ थोड़े से और बिखरे हुए चावलों के धानों के सिवा और कुछ नहीं होता। वे उसे इसको सात पग ले जाने की आज्ञा देते हैं; और इसके पश्चात् चाहे वह इसको भूमि पर गिरा दे।

इकहत्तरवाँ परिच्छेद

———:o:———

दण्ड और प्रायश्चित्त पर ।

इस विषय में हिन्दुओं की रीति-नीति ईसाइयों से मिलती है, क्योंकि वह, ईसाइयों की रीति-नीति के सदृश, पुण्य और पाप से निवृत्ति के सिद्धान्त पर अवलम्बित है, जैसा कि, किसी भी अवस्था में हत्या न करना, जिसने तुम्हारा कोट उतार लिया है उसे कमीज़ भी दे देना; जिसने तुम्हारे एक गाल पर मारा है उसके सामने दूसरा गाल भी कर देना, अपने शत्रु को आशीर्वाद देना और उसके लिए ईश्वर से प्रार्थना करना। मुझे अपने प्राणों का शपथ, यह एक श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान है; परन्तु इस संसार के लोग सभी तत्त्वज्ञानी नहीं। उनमें से बहुत से अज्ञानी और भूल करनेवाले हैं. जो खड्ग और कोड़े के बिना सन्मार्ग पर रक्खे नहीं जा सकते। और, वास्तव में, जब से विजयी कान्स्टंटायन ईसाई हुआ, तब से खड्ग और कोड़े का सदा प्रयोग होता रहा है, क्योंकि उनके बिना शासन करना असम्भव होगा।

भारत का विकास इसी ढंग से हुआ है। क्योंकि हिन्दू बताते हैं कि आदि में शासन और युद्ध के कार्य ब्राह्मणों के हाथ में थे,

आदि में जाति के शासक ब्राह्मण।

परन्तु देश की व्यवस्था बिगड़ गई, क्योंकि वे अपने धर्म्म-शास्त्रों के दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुसार शासन करते थे, जो प्रजा के अनिष्टशील और उच्छृङ्खल तत्त्वों के सामने असम्भव सिद्ध हुआ। उनसे धर्म्म-कार्यों का शासन भी छिन जाने को था। इसलिए वे अपने धर्म्म के स्वामी के पास

गिड़गिड़ाये। इस पर ब्रह्मा ने उनके सिपुर्द केवल वही काम कर दिये जो अब उनके पास हैं, और शासन तथा युद्ध के कर्तव्य क्षत्रियों को दिये।

पृष्ठ २८१

तब से ब्राह्मण माँगकर और भिक्षा से अपना निर्वाह करते हैं, और दण्डनीति का प्रयोग विद्वानों के अधिकार में नहीं, राजाओं के अधिकार में किया जाता है।

हत्या के विषय में राजनियम यह है—यदि हत्यारा ब्राह्मण और

हत्या का क़ानून।

निहत व्यक्ति किसी दूसरे वर्ण का हो, तो उसे उपवास, प्रार्थना, और दान के रूप में केवल प्रायश्चित्त ही करना पड़ता है।

यदि निहत व्यक्ति ब्राह्मण है, तो ब्राह्मण हत्यारे को अगले जन्म में इसका उत्तर देना होगा; कारण यह कि उसे प्रायश्चित्त करने की आज्ञा नहीं दी जाती, क्योंकि प्रायश्चित्त पापी से पाप को पोंछ डालता है, किन्तु कोई भी चीज़ ब्राह्मण से किसी मर्त्य अपराध को नहीं पोंछ सकती। इन अपराधों में सब से बड़े ये हैं—ब्राह्मण को मारना, जो वज्रब्रह्महत्या कहलाता है; फिर, गो-हत्या, सुरापान, व्यभिचार, विशेषतः अपने पिता की और गुरु की पत्नी के साथ। किन्तु, राजा लोग इन अपराधों में से किसी के लिए ब्राह्मण या क्षत्रिय को नहीं मारते, परन्तु उसकी सम्पत्ति का अपहरण करके उसे अपने देश से निर्वासित कर देते हैं।

यदि ब्राह्मण और क्षत्रिय से नीचे के किसी वर्ण का मनुष्य उसी वर्ण के किसी मनुष्य की हत्या कर दे, तो उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है, परन्तु इसके अतिरिक्त उदाहरण प्रतिष्ठित करने के उद्देश से राजा लोग उसे दण्ड देते हैं।

चोरी का क़ानून आज्ञा देता है कि चोर का दण्ड चुराई हुई वस्तु के मूल्य के अनुसार होना चाहिए। तदनुसार, कभी तो अत्यन्त या मध्यम कड़ाई का दण्ड आवश्यक होता है, कभी ताड़न

और शोधन लगाना, और कभी केवल सबके सामने लज्जित करना और हँसी उड़ाना ही। यदि वस्तु बहुत बड़ी हो, तो राजा लोग ब्राह्मण को अन्धा और उसका अङ्गच्छेदन कर देते हैं। वे उसका बायाँ हाथ और दायाँ पैर, या दायाँ हाथ और बायाँ पैर काट डालते हैं। किन्तु वे क्षत्रिय का अङ्गच्छेदन, उसको अन्धा किये बिना ही, कर देते हैं, और अन्य वर्णों के चोरों को मार डालते हैं।

चोरी का क़ानून।

व्यभिचारिणी को पति के घर से बाहर निकालकर निष्कासित कर दिया जाता है।

जारिणी का दण्ड।

मैंने यह कई बार सुना है कि जब (मुसलिम देशों से) हिन्दू दास भागकर अपने देश और धर्म्म में वापस जाते हैं, तब हिन्दू उन्हें प्रायश्चित्त के रूप में उपवास करने का आदेश करते हैं। फिर वे उन्हें गउओं के गोबर, मूत्र और दूध में दिनों की नियत संख्या तक दबाये रखते हैं, यहाँ तक कि उनका खमीर उठ आता है। तब वे उनको खींचकर उस मैल में से बाहर निकाल लेते हैं। और वैसा ही मैल खाने को देते हैं, और ऐसा ही और अधिक।

लड़ाई के हिन्दू बंदियों के साथ अपने देश में लौटने पर कैसा वर्त्ताव किया जाता है।

मैंने ब्राह्मणों से पूछा है कि क्या यह सत्य है, परन्तु वे इससे इन्कार करते हैं, और कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति के लिए कोई भी प्रायश्चित्त सम्भव नहीं, और उसको जीवन की उन स्थितियों में लौट आने की कभी आज्ञा नहीं दी जाती जिनमें वह बन्दी के रूप में ले जाने के पहले था। और वह सम्भव कैसे हो सकता है? यदि ब्राह्मण शूद्र के घर में कई एक दिन तक खाता है, तो वह अपने वर्ण से निकाल दिया जाता है, और फिर कभी उसे लाभ नहीं कर सकता।

बहत्तरवाँ परिच्छेद

—:※:—

दाय पर और इस बात पर कि मृत व्यक्ति का उस पर क्या अधिकार है।

उनके रिक्थलाभ के क़ानून का मुख्य नियम यह है कि स्त्रियाँ, सिवा पुत्री के, दायाद नहीं हो सकतीं। मनु-पुस्तक के एक वचन के अनुसार, पुत्री पुत्र के भाग का चतुर्थांश पाती है। यदि वह विवाहिता नहीं, तो यह धन उसके विवाह के समय तक उस पर व्यय किया जाता है, और उसका दहेज़ उसके भाग के द्वारा क्रय किया जाता है। तदनन्तर उसको अपने पिता के घर से और आय नहीं होती।

दाय का क़ानून।

यदि विधवा अपने को जला नहीं डालती, परन्तु जीवित रहना पसन्द करती है, तो उसके मृत पति के उत्तराधिकारी को उसे आमरण भोजन और वस्त्र देना पड़ता है।

मृत व्यक्ति के ऋण उसके उत्तराधिकारी को या तो अपने भाग में से या अपनी सम्पत्ति के सञ्चय में से अवश्य चुकाने चाहिएँ, इसमें इस बात का कोई विचार नहीं होगा कि मृत कोई सम्पत्ति छोड़ गया है या नहीं। इसी प्रकार, वह, कुछ भी अवस्था हो, विधवा के लिए उन सब व्ययों को सहन करे जिनका अभी उल्लेख हुआ है।

नर-उत्तराधिकारियों से सम्बन्ध रखनेवाले नियम के विषय में, यह बात स्पष्ट है कि पूर्वजों, अर्थात् पिता और पितामह की अपेक्षा वंशज, अर्थात् पुत्र और पौत्र, दाय पर निकटतर अधिकार रखते हैं। फिर, पूर्वजों और वंशजों में एकहरे सम्बन्धियों के विषय में, जिस मनुष्य का सम्बन्ध जितना अधिक निकट का है उतना ही अधिक उसका दाय पर अधिकार है। इस प्रकार पौत्र की अपेक्षा पुत्र का, और पितामह की अपेक्षा पिता का अधिकार निकटतर है।

पृष्ठ २८२

सपिण्ड सम्बन्धियों, यथा, उदाहरणार्थ, भाइयों का अधिकार कम है, और उनको केवल उसी अवस्था में दाय मिलता है जब उनसे अच्छा अधिकार रखनेवाला कोई न हो। अतएव यह स्पष्ट है कि बहिन के पुत्र की अपेक्षा पुत्री के पुत्र का अधिकार अधिक है, और भाई का पुत्र इन दोनों से बढ़कर अधिकार रखता है।

यदि एक सी आत्मीयतावाले जैसा कि, उदाहरणार्थ, पुत्र या भाई, अनेक अभियोक्ता हों, तो वे सब बराबर बराबर भाग पाते हैं। हिजड़ा नर-प्राणी समझा जाता है।

यदि मृत कोई उत्तराधिकारी नहीं छोड़ जाता, तो दाय राजा के कोष में चला जाता है, सिवा उस अवस्था के जब कि मृत व्यक्ति ब्राह्मण हो। उस दशा में राजा को दाय में हाथ डालने का कोई अधिकार नहीं, किन्तु यह केवल दान-पुण्य में व्यय कर दिया जाता है।

मृतक के प्रति उत्तराधिकारी के कर्तव्य।

पहले वर्ष में मृतक के प्रति उत्तराधिकारी का कर्तव्य सोलह भोज देना है, जहाँ प्रत्येक अभ्यागत को उसके भोजन के अतिरिक्त दान भी मिलता है, अर्थात् मृत्यु के पश्चात् पन्द्रहवें और सोलहवें दिन; फिर, सारे वर्ष

मास में एक बार। छठे मास का भोज दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रचुर और बहुमूल्य होना चाहिए। फिर, वर्ष के एक छोड़कर अन्तिम दिन; यह भोज मृतक और उसके पूर्वजों की भेंट किया जाता है; और अन्ततः, वर्ष के अन्तिम दिन। वर्ष की समाप्ति के साथ ही मृतक के प्रति कर्तव्य पूरे हो जाते हैं।

यदि उत्तराधिकारी पुत्र है, तो उसे वर्ष भर शोक-परिच्छद धारण करना चाहिए; यदि वह औरस सन्तान और अच्छे वंश में से है, तो उसे शोक करना और स्त्रियों के साथ संसर्ग न करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, आपको यह जानना चाहिए कि शोक के वर्ष के प्रथम भाग में उत्तराधिकारियों को एक दिन के लिए आहार का निषेध है।

जिन सोलह भोजों का अभी उल्लेख हुआ है उन पर दान देने के अतिरिक्त, उत्तराधिकारियों को चाहिए कि, घर के द्वार के ऊपर, खुले आकाश में दीवार से बाहर निकली हुई काष्ठफलक जैसी कोई वस्तु बनावें, जिस पर उन्हें मृत्यु के पश्चात् दस दिन के अन्त तक, प्रतिदिन किसी पकाई हुई चीज़ की एक थाली और पानी का एक बासन रखना होता है। क्योंकि सम्भव है कि मृतक की आत्मा को अभी विश्राम न मिला हो, और वह, भूखी और प्यासी, अभी तक घर के इर्द गिर्द आगे पीछे फिर रही हो।

अफलातू से समानता।

ऐसा ही मत अफ़लातू ने फीडो (Phaedo) में दिखलाया है, जहाँ वह आत्मा को कब्रों के गिर्द चक्कर लगाती हुई बताता है, क्योंकि सम्भवतः अभी तक उसमें शरीर के प्रति प्रेम के कुछ चिह्न शेष हैं। आगे वह कहता है—"लोगों ने आत्मा के विषय में कहा है कि जब यह शरीर को छोड़ती है, और शरीर की मृत्यु से इससे पृथक् हो जाती है,

तब शरीर के, जो कि इस और दूसरे लोक में इसका निवासस्थान है, अकेले अकेले अंगों में से, कोई संलग्न वस्तु लेकर मिला देने का इसका स्वभाव है।"

शेषोक्त दिनों में से दसवें दिन, उत्तराधिकारी, मृतक के नाम पर, बहुत सा भोजन और शीतल जल व्यय करता है। ग्यारहवें दिन के पश्चात्, उत्तराधिकारी प्रति दिन एक व्यक्ति के लिए पर्याप्त भोजन और एक दिर्हम ब्राह्मण के घर भेजता है, और शोक के वर्ष के अन्त तक इसके सभी दिनों में बिना किसी व्याघात के इस क्रिया को जारी रखता है।

तिहत्तरवाँ परिच्छेद

निर्जीव तथा सजीव व्यक्तियों के शरीरों के अधिकारों के विषय में (अर्थात् अन्त्येष्टि-संस्कार और आत्महत्या के विषय में)

शव को गाड़ने की प्राक्कालीन रीतियाँ।

बहुत प्राचीन समयों में मृतकों के शरीर बिना किसी आच्छादन के खेतों में वायु में खुले फेंक दिये जाते थे; रोगियों को भी खेतों और पर्वतों में खुले रखकर वहीं छोड़ दिया जाता था। यदि वे वहाँ मर जाते थे तो उनकी वही गति होती थी जिसका अभी उल्लेख हुआ; परन्तु यदि वे नीरोग हो जाते थे, तो वे अपने घरों में लौट आते थे।

पृष्ठ २८३

इस पर एक व्यवस्थापक का प्रादुर्भाव हुआ जिसने लोगों को अपने मृतकों को वायु में खुला रखने की आज्ञा दी। फलतः लोगों ने लोहे की छड़ों की दीवारोंवाली छत्तदार इमारतें बनाईं, जिनमें से पवन बहकर शवों के ऊपर से गुज़रता था, जैसा कि ज़र्दुश्तो लोगों की समाधिलाटों में कुछ कुछ वैसी ही दशा है।

जब वे चिरकाल तक इस रीति पर आचरण कर चुके, तब नारायण ने उन्हें शवों को अग्नि के सिपुर्द करने की आज्ञा दी, और

तभी से उन्हें उनको जलाने का स्वभाव चला आ रहा है, यहाँ तक कि उनका कुछ भी शेष नहीं रह जाता, और प्रत्येक अशुचिता, मैल, और गन्ध तत्काल नष्ट हो जाती है, यहाँ तक कि मुश्किल से ही कोई चिह्न पीछे रहता है।

आजकल स्लेवोनियन लोग अपने शवों को जलाते हैं, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन यूनानियों में जलाने की और गाड़ने की, दोनों ही, रीतियाँ थीं। जब क्राईटो ने सुकरात से पूछा कि आप किस रीति से अपने को गड़वाना चाहते हैं, तब फ़ीडो नाम की पुस्तक में वह कहता है—

यूनानी तुल्यता।

"जैसे तुम्हारी इच्छा, जब तुम मेरे लिए तैयारी कर लो। मैं तुमसे भाग नहीं जाऊँगा।" तब वह उन लोगों से जो उसके इर्द-गिर्द थे बोला—"मेरे विषय में क्राईटो को उसके विपरीत प्रत्यय दो जो उसने मेरे विषय में विचारपतियों को दिया है; क्योंकि इसने उनको निश्चय दिलाया है कि मैं ठहरूँगा, किन्तु तुम अब इस बात का अवश्य प्रत्यय दो कि मृत्यु के पश्चात् मैं नहीं ठहरूँगा। मैं चला जाऊँगा, मेरे शरीर के जलाये जाने या गाड़े जाने के पश्चात् उसका रूप क्राईटो को सहनीय हो सके, उसे वेदना न हो, और वह यह न कहे—'सुकरात को ले गये हैं, या वह जलाया या गाड़ा गया है।' हे क्राईटो, तू मेरे शरीर को गाड़ने के विषय में निश्चिन्त रह। जैसा तू चाहता है वैसा, और विशेषतः नियमों के अनुसार, कर।"

हिप्पोक्रेटस के प्रवादों की टीका में जालीनूस कहता है—"इस बात को लोग प्रायः जानते हैं कि एस्क्लीपियस अग्नि के स्तम्भ में उठाया जाकर देवों के पास ले जाया गया था। इसी प्रकार की बात डायोनिसोस, हेरेक्लस, और दूसरों के विषय में भी, जिन्होंने

मनुष्य-जाति के हित के लिए परिश्रम किया था, कही जाती है। लोग कहते हैं कि परमेश्वर ने उनके मर्त्य और पार्थिव अंश को आग से नष्ट करने, और तदनन्तर उनके अमर भाग को अपने पास आकर्षित करने, और उनकी आत्माओं को उठाकर स्वर्ग में ले जाने के अभिप्राय से उनके साथ ऐसा किया।"

इन शब्दों में भी एक यूनानी रीति के रूप में जलाने का उल्लेख है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इसका प्रयोग उनके केवल महापुरुषों के लिए ही होता रहा है।

इसी प्रकार से हिन्दू अपने भाव को प्रकट करते हैं। मनुष्य में एक बिन्दु है। जो कुछ मनुष्य है उसी से है। जब शरीर के मिश्रित तत्त्व दाह के द्वारा घुल और बिखर जाते हैं, तब यह बिन्दु मुक्त हो जाता है।

(अमर आत्मा के परमात्मा के पास) इस प्रत्यागमन के विषय में हिन्दुओं का विचार है कि यह काम कुछ तो रवि की रश्मियों द्वारा किया जाता है, आत्मा अपने को उनके साथ जोड़कर ऊपर चढ़ जाती है, और कुछ अग्नि की ज्वाला द्वारा, जो इसे उठाकर (परमात्मा के पास) ले जाती है।

अग्नि और रवि की रश्मि ईश्वर के पास जानेवाले निकटतम मार्गों के रूप में।

कोई कोई हिन्दू यह प्रार्थना किया करता था कि परमात्मा उसके मार्ग को उसके लिए सीधी रेखा की तरह बना दे, क्योंकि यही निकटतम मार्ग है और अग्नि अथवा रश्मि के सिवा ऊपर की ओर को और कोई मार्ग नहीं।

एक डूबे हुए व्यक्ति के सम्बन्ध में ग़ुज़ तुर्कों का व्यवहार इसके सदृश है; क्योंकि वे शव को नदी में एक चिता पर रखते और उसके पैर से एक रस्सी नीचे लटकाकर रस्सी के सिरे को पानी में

डाल देते हैं। इस रस्सी के द्वारा मृतक की आत्मा को पुनरुत्थान के लिए अपने को उठाना होता है।

इस विषय में हिन्दुओं का विश्वास वासुदेव के उन शब्दों द्वारा दृढ़ किया गया था, जो उसने उस मनुष्य के लक्षण के विषय में कहे थे जो (कायिक अस्तित्व की) बेड़ियों से मुक्त हो चुका है। "उसकी मृत्यु उत्तरायण (अर्थात्, मकरसंक्रान्ति से लेकर कर्क-संक्रान्ति तक सूर्य के उत्तरीय परिभ्रमण) में, शुक्ल पक्ष में, जलाये हुए दीपकों के बीच, अर्थात् संयोग और विपर्यास (अमावास्या और पूर्णिमा) के बीच, शरद् और वसन्त की ऋतुओं में होती है।"

मानी के आगे लिखे शब्दों में ऐसा ही एक मत स्वीकार किया गया है—"दूसरी धार्म्मिक संस्थाएँ हमें दोष देती हैं कि हम सूर्य और चन्द्र का पूजन करते और उनको प्रतिमा के रूप में दिखलाते हैं। परन्तु वे उनके वास्तविक स्वरूपों को नहीं जानते; वे नहीं जानते कि सूर्य और चन्द्र हमारा पथ, हमारा द्वार हैं जहाँ से हम अपने अस्तित्व के संसार में (स्वर्ग में) कूच करते हैं, जैसा कि यह यसू ने विघोषित किया है"। इस प्रकार वह दृढ़तापूर्वक कहता है।

मानी से अवतरण।

पृष्ठ २८४

लोग बताते हैं कि बुद्ध ने मृतकों की देहों को बहते जल में फेंकने की आज्ञा दी थी। इसलिए उसके अनुयायी, शमन लोग, अपने मृतकों को नदियों में फेंकते हैं।

हिन्दुओं के अनुसार, मृतक की देह का उसके उत्तराधिकारियों पर अधिकार है कि वे उसको स्नान करावें, उसमें सुगन्धयुक्त द्रव्य लगावें, एक कफ़न में लपेटें, और तब चन्दन और दूसरी लकड़ी जितनी मिल सके उसके

अन्त्येष्टि-क्रिया की हिन्दू-विधि।

साथ उसको जला दें। उसकी जली हुई हड्डियों का अंश गङ्गा में लाकर फेंका जाता है, ताकि गङ्गा उन पर बहे, जिस प्रकार कि वह सगर की सन्तान की जली हुई अस्थियों पर बह चुकी है, और इससे उनको नरक से निकालकर स्वर्ग में लाई है। भस्म का शेषांश बहते पानी के किसी नाले में फेंक दिया जाता है। जिस स्थान पर लोथ जलाई गई है वहाँ वे गच्च (जिपसम) से पोता हुआ मील के निशानवाले पत्थर के सदृश एक स्मृतिस्तम्भ बनाते हैं।

तीन वर्ष से कम आयु के बच्चों के शरीर नहीं जलाये जाते।

जो लोग मृतकों के प्रति इन कर्तव्यों को पूरा करते हैं वे पीछे से दो दिनों में स्नान करते और अपने वस्त्र धोते हैं, क्योंकि शव का स्पर्श करने से वे अपवित्र हो गये हैं।

जिन लोगों में अपने मृतकों का दाह करने का सामर्थ्य नहीं वे उनको कहीं या तो खुले खेत में या बहते जल में फेंक देते हैं।

अब सजीव के शरीर के अधिकार के विषय में सुनिए। हिन्दुओं को कभी इसको जलाने का विचार नहीं होता, सिवा उस विधवा की अवस्था में जो अपने पति का अनुगमन करना पसन्द करती है, या उन लोगों की दशा में जो अपने जीवन से तङ्ग आ गये हैं, जो अपने शरीर के किसी असाध्य रोग से, किसी ऐसे शारीरिक दोष से जो दूर नहीं हो सकता, या बुढ़ापे और विकलता से दुःखी हैं। किन्तु, कोई प्रतिष्ठित मनुष्य यह नहीं करता, केवल वैश्य और शूद्र ही करते हैं, विशेषतः उन समयों पर जो, जीवन की भावी पुनरावृत्ति के लिए, जिस रूप और अवस्था में मनुष्य अब उत्पन्न हुआ है और रहता है उससे उत्तम आकार और दशा प्राप्त करने के लिए बहुत ही उपयुक्त माने जाते हैं। एक विशेष राजनियम द्वारा ब्राह्मणों और

आत्म-हत्या के प्रकार।

क्षत्रियों के लिए अपने को जलाने का निषेध किया गया है। इसलिए यदि ये अपने आपको मार डालना चाहते हैं, तो वे ग्रहण के समय में यह काम किसी दूसरे ढंग से करते हैं, या वे किसी व्यक्ति को भाड़े पर ले लेते हैं ताकि वह उन्हें गङ्गा में डुबा दे, और पानी के नीचे इतनी देर तक रखे कि वे मर जायँ।

दो नदियों, गङ्गा और यमुना, के सङ्गम पर प्रयाग नाम का एक विशाल वृक्ष है। यह वृक्ष वट कहलानेवाली जाति का है।

प्रयाग का वृक्ष।

इस प्रकार के वृक्ष की यह विशेषता है कि इसकी शाखाओं में से दो प्रकार की उप-शाखाएँ निकलती हैं, कुछ तो ऊपर की ओर जाती हैं, जैसा कि दूसरे सब वृक्षों की अवस्था में होता है, और दूसरी जड़ों के सदृश नीचे की ओर जाती हैं, परन्तु उन पर पत्ते नहीं होते। यदि ऐसी कोई उपशाखा भूमि में घुस जाती है, तो जिस शाखा से यह उगी है उसके लिए यह आधारभूत स्तम्भ के सदृश हो जाती है। प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था जान बूझकर की है, क्योंकि इस वृक्ष की शाखाओं का विस्तार बहुत अधिक होता है (और उनके लिए सहारे का प्रयोजन रहता है)। यहाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय, इस वृक्ष पर चढ़-कर और अपने आपको गङ्गा में फेंककर, आत्म-हत्या किया करते हैं।

वैयाकरण जोहन्नस बताता है कि प्राचीन प्रतिमा-पूजक यूनानियों में कुछ लोग, "जिनका नाम मैं पापात्मा के उपासक रखता हूँ"—वह

यूनानी समताएँ।

ऐसा ही कहता है—अपने अवयवों को खड्गों से पीड़ा पहुँचाते और बिना किसी पीड़ा का अनुभव किये, अपने को आग में फेंक दिया करते थे।

जिस प्रकार हमने इसको आत्म-हत्या न करने के लिए हिन्दुओं के मत के रूप में बताया है, उसी प्रकार सुकरात भी कहता है—

"एवं जब तक देवगण मनुष्य को किसी बरजोरी या दारुण आवश्यकता के रूप में, उसके सदृश जिसमें कि हम अब हैं, कोई कारण न दें उसके लिए अपनी हत्या करना उचित नहीं।"

वह फिर कहता है—"हम मनुष्य, मानों, एक वन्दी-गृह में हैं। भाग जाना या इससे अपने को मुक्त कर लेना हमारे लिए उचित नहीं, क्योंकि देवगण इसके लिए हम पर तुहमत लगायँगे, क्योंकि हम, मानव, उनके भृत्य हैं।"

चौहत्तरवाँ परिच्छेद

——:❀:——

उपवास, और इसके नाना प्रकारों पर।

उपवास करना हिन्दुओं के लिए ऐच्छिक और नियमातिरिक्त है। उपवास समय की एक नियत लम्बाई के लिए आहार न करना है। यह संस्थिति में और इसके करने की रीति में भिन्न भिन्न हो सकता है।

पृष्ठ २८९

लंघन करने की विविध रीतियां।

साधारण मध्यवर्ती क्रिया, जिससे लङ्घन की सभी अवस्थाओं का अनुभव हो जाता है, यह है—मनुष्य उस दिन का निश्चय कर लेता है जिस दिन वह उपवास करेगा, और मन में उस सत्ता का नाम रखता है जिसकी शुभेच्छा वह इससे प्राप्त करना चाहता है और जिसके निमित्त वह अनशन करेगा, चाहे वह देवता हो, या देवदूत हो, या कोई और प्राणी हो। तब वह आगे चलता है, उपवास के दिन से एक दिन पूर्व दोपहर को वह अपना भोजन तैयार करता (और खाता) है, रगड़कर अपने दाँतों को साफ़ करता है, और अगले दिन के उपवास पर अपने विचारों को स्थिर करता है। उस घड़ी से वह भोजन नहीं करता। उपवास के दिन प्रातःकाल वह पुनः अपने दाँतों को माँजता, स्नान करता, और उस दिन के कर्तव्यों को पूरा करता है। वह अपने हाथ में जल लेकर चारों दिशाओं में छिड़कता है, वह अपनी जिह्वा के साथ उस देवता का नाम उच्चारण करता है जिसके लिए कि वह उपवास

करता है, और उपवास-दिवस के बाद के दिन तक इस अवस्था में रहता है। सूर्योदय के पश्चात्, यदि वह चाहे तो उसे उसी क्षण उपवास को खोलने की छुट्टी है, अथवा, यदि वह अच्छा समझे, तो वह इसको मध्याह्न तक स्थगित कर सकता है।

इस प्रकार को उपवास, अर्थात् अनशन कहते हैं; क्योंकि एक मध्याह्न से अगले मध्याह्न तक न खाना एकनक्त, अर्थात् उपवास न करना कहलाता है।

दूसरा प्रकार, जो कृच्छ्र कहलाता है, यह है—मनुष्य किसी दिन दोपहर को, और उसके अगले दिन साँझ को भोजन करता है। तीसरे दिन वह सिवा उस चीज़ के और कुछ नहीं खाता जो उसे बिना माँगे संयोगवश दी जाय। चौथे दिन वह लङ्घन करता है।

एक और प्रकार, जो पराक कहलाता है, यह है—मनुष्य लगातार तीन दिन मध्याह्न को भोजन करता है। फिर अगले लगातार तीन दिन वह अपने भोजन का समय सायंकाल कर देता है। तब वह तीन क्रमागत दिनों में लङ्घन को तोड़े बिना निर्विघ्नतापूर्वक अनशन करता है।

एक और प्रकार, जो चान्द्रायण कहलाता है, यह है—मनुष्य पूर्णिमा के दिन उपवास करता है; अगले दिन वह केवल एक ग्रास खाता है, तीसरे दिन वह इससे दुगनी मात्रा लेता है, चौथे दिन इससे तिगुनी, इत्यादि इत्यादि, इस प्रकार अमावास्या के दिन तक चला जाता है। उस दिन वह निराहार रहता है; अगले दिनों में वह फिर एक कवल प्रति दिन अपना आहार घटाता जाता है, यहाँ तक कि वह पूर्णिमा के दिन फिर लङ्घन करता है।

एक और प्रकार, जिसे मासवास (मासोपवास) कहते हैं, यह है—मनुष्य निर्विघ्नतापूर्वक मास के सभी दिन कभी लङ्घन को तोड़े बिना उपवास करता है।

प्रत्येक अकेले मास में शेषोक्त उपवास को करने से मनुष्य के एकहरे मासों में मर जाने के पश्चात् उसके नवीन जीवन के लंघन करने का फल। लिए क्या फल मिलेगा, इसकी हिन्दू ठीक ठीक व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं—

यदि मनुष्य चैत्र के सारे दिन लङ्घन करता है, तो वह अपनी सन्तान की सत्कुलीनता के अतिरिक्त धन और आनन्द प्राप्त करता है।

यदि वह वैशाख भर उपवास करता है, तो अपनी जाति का अधीश और अपनी सेना में महान् होगा।

यदि वह ज्येष्ठ का उपवास करता है तो स्त्रियों का प्रिय होगा।

यदि वह आषाढ़ का उपवास करता है, तो सम्पत्ति लाभ करेगा।

यदि वह श्रावण का उपवास करता है, तो प्रज्ञा लाभ करता है।

यदि वह भाद्रपद का उपवास करता है, तो स्वास्थ्य और शौर्य, धन और पशु प्राप्त करता है।

यदि वह आश्वयुज का उपवास करता है, तो अपने शत्रुओं पर सदा विजयी रहेगा।

यदि वह कार्त्तिक का उपवास करता है, तो जनता की आँखों में बड़ा होगा और अपने मनोरथ लाभ करेगा।

यदि वह मार्गशीर्ष का उपवास करता है, तो उसका जन्म बहुत ही सुन्दर और उर्वर देश में होगा।

यदि वह पौष का उपवास करता है, तो श्रेष्ठ कीर्ति लाभ करता है।

यदि वह माघ का उपवास करता है, तो असंख्य सम्पत्ति लाभ करता है।

यदि वह फाल्गुन का उपवास करता है, तो प्रियतम होगा।

किन्तु, जो वर्ष के सभी मासों में लङ्घन करता, और केवल बारह बार ही उपवास को तोड़ता है, वह १०,००० वर्ष स्वर्ग में रहेगा, और वहाँ से कुलीन, श्रेष्ठ, और प्रतिष्ठित परिवार के सदस्य के रूप में पुनः जन्म लेगा।

विष्णु-धर्म्म नामक पुस्तक बताती है कि याज्ञवल्क्य की भार्या, मैत्रेयी, ने अपने पति से पूछा कि अपनी सन्तान को दैव-दुर्विपाकों और शारीरिक दोषों से बचाये रखने के लिए मनुष्य को क्या करना चाहिए, जिस पर उसने उत्तर दिया—"यदि मनुष्य पौष मास में, दुवी के दिन से, अर्थात् मास के दो अर्धों में से प्रत्येक के दूसरे दिन से, आरम्भ करता है, और चार क्रमागत दिन उपवास करता हुआ पहले दिन जल के साथ, दूसरे दिन तिल के तेल के साथ, तीसरे दिन वच के साथ, और चौथे दिन विविध वृत्त-निर्यासों के मिश्रण के साथ स्नान करता है; इसके अतिरिक्त यदि वह प्रत्येक दिन दान देता और देवदूतों के नामों पर स्तुति-अनुवाद करता है; यदि वह इन सब क्रियाओं को वर्ष के अन्त तक प्रत्येक मास में बराबर करता रहता है, तो अगले जन्म में उसकी सन्तान दैव-दुर्विपाकों और दोषों से रहित होगी, और उसकी कामनाएँ पूर्ण होंगी; क्योंकि दिलीप, दुष्यन्त और ययाति ने भी इस प्रकार आचरण करके अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण की थीं।"

पृष्ठ २८६

पचहत्तरवाँ परिच्छेद

उपवास के लिए दिन निश्चय करना।

पाठकों को साधारण रूप से जानना चाहिए कि प्रत्येक मास
मास के प्रत्येक पक्ष के शुक्ल अर्ध के आठवें और ग्यारहवें दिन
के आठवें और दसवें उपवास के दिन हैं, सिवाय लौंद के मास की
दिन उपवास-दिवस हैं। अवस्था में, क्योंकि, अशुभ समझा जाने के
कारण, यह छोड़ दिया जाता है।

ग्यारहवाँ विशेष रूप से वासुदेव को पवित्र है, क्योंकि माहूर पर अधिकार कर लेने पर, जिसके अधिवासी पहले प्रत्येक मास में एक दिन इन्द्र का पूजन किया करते थे, उसने उन्हें इस पूजा को बदलकर ग्यारहवें दिन कर देने की, और अपने नाम पर करने की प्रेरणा की। ज्यों ही लोगों ने ऐसा किया, इन्द्र ने क्रुद्ध होकर जल-प्रलय के सदृश उन पर वर्षा करना आरम्भ कर दिया, ताकि उनको और उनकी गउओं को, दोनों को, नष्ट कर डाले। किन्तु वासुदेव ने अपने हाथ से एक पर्वत उठाया और उससे उनकी रक्षा की। पानी उनके चारों ओर इकट्ठा हो गया, परन्तु उनके ऊपर नहीं, और इन्द्र की प्रतिमा दौड़ गई। लोगों ने इस घटना को माहूर के पड़ोस में एक पर्वत पर स्मृति-चिह्न बनाकर मनाया। इसलिए वे इस दिन बहुत ही सूक्ष्म शुचिता की अवस्था में उपवास करते हैं, और रात भर बाहर रहते हैं। इसको वे एक आवश्यक क्रिया समझते हैं, यद्यपि वास्तव में यह आवश्यक नहीं।

विष्णु-धर्म्म नामक पुस्तक कहती है—"जब चन्द्रमा अपने चौथे नक्षत्र, रोहिणी, में, कृष्ण अर्ध के आठवें दिन, होता है तो यह जयन्ती नाम का उपवास-दिन होता है। इस दिन दान देने से सब पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है।"

वर्ष भर के अकेले-अकेले उपवास-दिवसों पर।

यह बात स्पष्ट है कि उपवास-दिवस की यह अवस्था साधारण रूप से सब मासों पर नहीं, किन्तु विशेष रूप से भाद्रपद पर ही लागू होती है, क्योंकि वासुदेव इस मास में और इस दिन उत्पन्न हुआ था, और उस समय चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र में था। दोनों अवस्थाएँ—अर्थात्, चन्द्रमा का रोहिणी में होना और दिन का कृष्ण अर्ध का आठवाँ होना, विविध कारणों से, उदाहरणार्थ, वर्ष को अधिक कर देने से, और इस कारण से कि नागरिक वर्ष चान्द्र समय के साथ साथ नहीं चलते, या तो इससे आगे बढ़ जाते हैं या पीछे रह जाते हैं—बहुत से वर्षों में केवल एक ही बार हो सकती हैं।

वही पुस्तक कहती है—"जब चन्द्रमा अपने सातवें नक्षत्र, पुनर्वसु, में, मास के शुक्ल अर्ध के ग्यारहवें दिन, हो तो यह अत्ज (? अट्टाटज) नाम का उपवास-दिन होता है। यदि मनुष्य इस दिन ईश्वर-भक्ति के काम करेगा तो जो कुछ वह चाहता है उसको प्राप्त करने में वह समर्थ हो जायगा, जैसा कि सगर, ककुत्स्थ, और दुन्दहमार (?) की अवस्था में हो चुका है, जिनको राजपद इसलिए प्राप्त हुआ था कि उन्होंने ऐसा किया था।

चैत्र का छठवाँ दिन सूर्य के लिए पवित्र उपवास-दिन है।

आषाढ़ के मास में, जब चन्द्रमा अपनी सत्रहवीं राशि, अनुराधा, में होता है, तब वासुदेव के लिए एक पवित्र उपवास-दिवस होता है जिसे देवसीनी (?), अर्थात् देव सो रहा है, कहते हैं;

क्योंकि यह उन चार मासों का प्रारम्भ है जिनमें वासुदेव सोया था। दूसरे लोग यह शर्त लगाते हैं, कि दिन मास का ग्यारहवाँ होना चाहिए।

यह स्पष्ट है कि ऐसा दिन प्रत्येक वर्ष नहीं आता। वासुदेव के उपासक इस दिन मांस, मछली, मिठाई, और स्त्री-समागम से परहेज़ करते हैं, और दिन में केवल एक ही बार खाते हैं। वे भूमि पर, बिना कुछ बिछाये ही, सोते हैं और पृथ्वी से ऊपर उठी हुई खाट का उपयोग नहीं करते।

पृष्ठ २८७

लोग कहते हैं कि ये चार मास देवों की रात्रि हैं, जिनमें एक मास आदि में साँझ की सन्ध्या के रूप में, और एक मास अन्त में सबेरे के उषाकाल के रूप में जोड़ देना चाहिए। किन्तु, तब सूर्य कर्क के 0° के निकट होता है, जो देवों के दिन में मध्याह्न है, और मुझे पता नहीं लगता कि यह चन्द्रमा दो सन्धियों के साथ किस प्रकार से सम्बद्ध है।

श्रावण मास में पूर्णिमा का दिन सोमनाथ के लिए पवित्र उपवास का दिन है।

जब आश्वयुज के मास में चन्द्रमा अलसरतान (नक्षत्र) में और सूर्य कन्याराशि में हो तो यह उपवास का दिन होता है।

उसी मास का आठवाँ दिन उपवास-दिन है, जो कि भगवती को पवित्र है। जब चन्द्रमा उदय होता है तब उपवास खोला जाता है।

भाद्रपद का पाँचवाँ दिन सूर्य के लिए पवित्र उपवास-दिन है, जो षट् कहलाता है। वे सौर रश्मियों का, विशेषतः उन रश्मियों का जो खिड़कियों में से भीतर आती हैं, अनेक प्रकार के बलसाम के तेल के अनुलेपों के साथ, विलेपन करते हैं, और उन पर सुगन्धित पौधे और फूल रखते हैं।

जब इस मास में चन्द्रमा रोहिणी में हो तो यह वासुदेव के जन्म के लिए उपवास का दिन होता है। दूसरे लोग, इसके अतिरिक्त, यह भी नियम लगाते हैं कि दिन कृष्णपक्ष का आठवाँ होना चाहिए। हम पहले ही यह दिखा चुके हैं कि ऐसा दिन प्रत्येक वर्ष में नहीं आता, किन्तु वर्षों की अधिक बड़ी संख्या के केवल विशेष वर्षों में ही।

जब कार्त्तिक मास में चन्द्रमा अपने अन्तिम नक्षत्र, रेवती, में हो तो यह वासुदेव के जागने के स्मरणोत्सव में उपवास का दिन होता है। यह देवोत्थीनी, अर्थात् देव का उठना कहलाता है। दूसरे लोग, इसके अतिरिक्त, यह नियम जोड़ते हैं कि यह शुक्ल पक्ष का ग्यारहवाँ दिन होना चाहिए। उस दिन वे अपने को गउओं के गोबर के साथ मैला करते, और गाय के दूध, मूत्र, और गोबर का मिश्रण खाकर उपवास खोलते हैं। यह दिन उन पाँच दिनों का पहला है, जो भीष्म पञ्चरात्रि कहलाते हैं। वे उन दिनों में वासुदेव की पूजा के लिए लङ्घन करते हैं। उनमें से दूसरे को ब्राह्मण उपवास खोलते हैं, और उनके पश्चात् दूसरे लोग।

पौष के छठवें दिन सूर्य के सम्मान में उपवास होता है।

माघ के तीसरे दिन पुरुषों के लिए नहीं, स्त्रियों के लिए उपवास होता है। यह गौर-त-र (गौरी-तृतीया?) कहलाता है, और सारे दिन और सारी रात रहता है। अगले दिन सबेरे वे अपने पतियों के निकटतम सम्बन्धियों को उपहार देती हैं।

छिहत्तरवाँ परिच्छेद

त्योहारों और आमोद-प्रमोद के दिनों पर।

यात्रा का अर्थ है शुभ अवस्थाओं में सफ़र करना। इसलिए भोज यात्रा कहलाता है। हिन्दुओं के बहुत से पर्व केवल स्त्रियाँ और बच्चे ही मनाते हैं।

चैत्र की दूसरी तिथि।

चैत्र मास की २री काश्मीर के लोगों के लिए अगदूस (?) नाम का पर्व है, और उनके राजा मुत्तै के तुर्कों पर विजय-लाभ करने के कारण मनाया जाता है। उनके वृत्तान्त के अनुसार वह सारे संसार पर राज्य करता था। परन्तु ठीक यही बात वे अपने अधिकांश राजाओं के विषय में कहते हैं। किन्तु, वे असावधानता के कारण उसको एक ऐसे समय का ठहराते हैं जो हमारे समय से बहुत अधिक पहले न था। इससे उनके झूठ का पता लग जाता है। अवश्य ही किसी हिन्दू का (एक विशाल साम्राज्य पर) शासन करना कोई असम्भव बात नहीं, जैसा कि यूनानी, रोमन, बेबीलोनियन, और ईरानी लोगों ने किया है; परन्तु वे सब समय, जो हमारे अपने समय से बहुत अधिक पहले न थे, भली भाँति ज्ञात हैं। (इसलिए, यदि ऐसी बात हुई होती तो हमें ज्ञात होनी चाहिए थी।) जिस राजा का यहाँ उल्लेख है, कदाचित् वह सारे भारत पर शासन करता था; और उन्हें सिवा भारत के और किसी देश का और सिवा अपने और दूसरी जातियों का ज्ञान नहीं।

११ वीं को हिण्डोली-चैत्र नाम का त्योहार होता है। तब वे देव-गृह, या वासुदेव के मन्दिर, में एकत्र होकर उसकी मूर्त्ति को आगे और पीछे उसी प्रकार झुलाते हैं जिस प्रकार कि शैशवकाल में उसे झूले में झुलाया जाता था। यही बात वे दिन भर अपने घरों में करते और आनन्द मनाते हैं।

११ वीं चैत्र।

चैत्र की पूर्णिमा को बहन्द (वसन्त ?) का उत्सव होता है। यह स्त्रियों का त्योहार है। इस समय वे आभूषण धारण करतीं और अपने पतियों से उपहार माँगती हैं।

पूर्णिमा का दिन।

२२वीं चैत्र चषति नाम का पर्व है। यह उल्लास का दिन भगवती के लिए पवित्र है। इस दिन लोग स्नान किया करते और दान दिया करते हैं।

२२ वीं चैत्र।

३री वैशाख स्त्रियों का पर्व है। यह गौर-त-र (गौरी तृतीया) कहलाता है और हिमवन्त पर्वत की पुत्री, महादेव की भार्या, गौरी के लिए पवित्र है। वे स्नान करतीं और हर्ष-पूर्वक वस्त्र पहनती हैं; वे गौरी की प्रतिमा का पूजन करती और उसके सामने दीपक जलाती हैं। वे धूप देती हैं, भोजन नहीं करतीं, और झूलों के साथ खेलती हैं। दूसरे दिन वे दान देकर भोजन करती हैं।

३री वैशाख।
पृष्ठ २८८

१० वीं वैशाख को वे सब ब्राह्मण, जिनको राजाओं ने निमन्त्रित किया है, खुले खेतों में जाते हैं और वहाँ वे पूर्णिमा तक पाँच दिन आग जलाकर बृहद् हवन करते हैं। वे सोलह भिन्न-भिन्न स्थानों में और चार भिन्न-भिन्न समूहों में आग जलाते हैं। प्रत्येक समूह

में एक ब्राह्मण होम करता है। इससे जैसे चार वेद हैं वैसे चार होत्री पुरोहित होते हैं। १६वीं को वे घर लौट आते हैं।

इस मास में महाविषुव होता है। इसे वसन्त कहते हैं। वे गणना द्वारा इस दिन का निश्चय करते और पर्व मनाते हैं। इस समय लोग ब्राह्मणों को निमन्त्रण देते हैं।

महाविषुव।

१ली ज्येष्ठ, या अमावस्या, को वे एक पर्व मनाते और सब चीज़ों के जेठे फलों को, उनसे अनुकूल पूर्व-लक्षण पाने के लिए, जल में फेंकते हैं।

१म ज्येष्ठ।

इस मास की पूर्णिमा स्त्रियों का पर्व है। यह रूप-पञ्च (?) कहलाता है।

पूर्णिमा।

आषाढ़ मास के सभी दिन पुण्य-दान करने में लगाये जाते हैं। यह आहारी भी कहलाता है। इस काल में घर में नये बर्तन लाये जाते हैं।

आषाढ़।

श्रावण की पौर्णमासी को वे ब्राह्मणों को मिष्टान्न भोजन देते हैं।

१५ वीं श्रावण।

८ वीं आश्वयुज को, जब चन्द्रमा उन्नीसवें नक्षत्र, मूल, में होता है, ईख का चूसना आरम्भ होता है। यह त्योहार महादेव की बहिन, महानवमी, को पवित्र है। उस समय वे चीनी और दूसरी सब वस्तुओं के पहले-फल उसकी मूर्त्ति पर, जो भगवती कहलाती है, चढ़ाते हैं। वे इसके सामने बहुत सा दान देते और बकरी के बच्चे मारते हैं। जिसके पास चढ़ाने के लिए कुछ नहीं होता, वह मूर्त्ति के पार्श्व में बिना कभी बैठने के, सीधा खड़ा रहता है, और कभी-कभी जो भी उसे मिले उस पर झपटकर उसे मार डालता है।

८ वीं आश्वयुज।

१५ वीं को जब चन्द्रमा अपने अन्तिम नक्षत्र, रेवती, में होता है, तब पुहाईं (?) त्योहार होता है। उस समय वे एक दूसरे के साथ झगड़ते और जन्तुओं के साथ खेलते हैं। यह वासुदेव को पवित्र है, क्योंकि उसके मामा कंस ने झगड़ने के अभिप्राय से उसको अपने सामने आने का आदेश किया था।

१५ वीं आश्वयुज।

१६ वीं को एक पर्व होता है, जब वे ब्राह्मणों को दान देते हैं।

१६ वीं आश्वयुज।

२३ वीं को अशोक का त्योहार होता है। यह आहोई भी कहलाता है। इस समय चन्द्रमा सातवें नक्षत्र, पुनर्वसु, में होता है। यह आमोद और झगड़ने का दिन है।

२३ वीं आश्वयुज।

भाद्रपदा के मास में, जब चन्द्रमा दसवें नक्षत्र, मघा, में होता है, वे एक पर्व मनाते हैं, जिसे वे पितृपक्ष, अर्थात, पितरों का आधा मास, कहते हैं; क्योंकि चन्द्रमा के इस नक्षत्र में प्रवेश करने की घटना अमावस्या के समय के समीप होती है। वे पितरों के नाम पर पन्द्रह दिन भिक्षा वितरण करते हैं।

भाद्रपदा, अमावस्या।

३ री भाद्रपदा को, स्त्रियों के लिए, हर्बाली (?) का पर्व होता है। उनके यहाँ रीति है कि कुछ दिन पहले वे टोकरियों में सब प्रकार के बीज बो देती हैं, और जब वे बढ़ना आरम्भ कर देते हैं तब इस दिन उन टोकरियों को सामने ले आती हैं। वे उन पर गुलाब के फूल और सुगन्धियाँ फेंकती हैं और रात भर एक दूसरे के साथ खेलती हैं।

३ री भाद्रपदा।

दूसरे दिन सबेरे वे उनको पुष्करिणियों पर ले जाकर धोती, स्वयं स्नान करती, और दान देती हैं।

६ठीं भाद्रपदा।

इस मास की ६ ठीं को, जो गाइहत् (?) कहलाती है, लोग उन लोगों को भोजन देते हैं जो कारावास में हैं।

८ वीं को, जब चन्द्रकला का आधा निकास हो चुकता है तब, ध्रुवगृह (?) नाम की उनकी एक यात्रा होती है; वे स्नान करते और भली भाँति उगनेवाला अन्न-फल खाते हैं ताकि उनकी सन्तान नीरोग हो। स्त्रियाँ जब गर्भवती और सन्तान की कामना करनेवाली होती हैं, तब वे यह पर्व मनाती हैं।

८ वीं भाद्रपदा।

११ वीं भाद्रपदा पर्वती (?) कहलाती है। यह एक धागे का नाम है जो पुरोहित उन सामग्रियों से बनाता है जो इस प्रयोजन के लिए उसे दी जाती हैं। इसका एक भाग वह केसर के साथ रँग देता, और दूसरा वैसे का वैसा रहने देता है। वह धागे को उतना लम्बा बनाता है जितनी कि वासुदेव की मूर्त्ति ऊँची होती है। तब वह उसे अपनी गर्दन पर फेंकता है, जिससे यह उसके पैरों तक लटकता है। यह बहुत ही पूजनीय पर्व है।

११ वीं भाद्रपदा।
पृष्ठ २८९

१६ वीं, जो कृष्ण अर्ध का पहला दिन है, उन सात दिनों में से पहला है, जो करार (?) कहलाते हैं। इस समय वे बच्चों को ललित रूप से विभूषित करते और उनको उत्तम अन्न-भोजन देते हैं। वे नाना प्रकार के जन्तुओं के साथ खेलते हैं। सातवें दिन पुरुष अपने को सिंगारते और पर्व मनाते हैं। और मास के शेषांश में वे सदा दिन के अन्त

१६ वीं भाद्रपदा।

के क़रीब बच्चों को सिंगारते, ब्राह्मणों को दान देते, और पुण्य-शीलता के काम करते हैं।

जब चन्द्रमा अपने चौथे नक्षत्र, रोहिणी, में होता है, तब वे इस समय को गूनालहीद (?) कहते हैं। वे, वासुदेव के जन्म पर हर्ष से, तीन दिन उत्सव मनाते और एक दूसरे के साथ खेल-कर आनन्द करते हैं।

जीवशर्मन् बताता है कि कश्मीर के लोग इस मास की २६वीं और २७ वीं को, लकड़ी के विशेष टुकड़ों के कारण, जो गन (?) कहलाते हैं, और जिनको वितस्ता नदी (जैलम) का जल, उन दो दिनों में, राज-धानी, अधिष्ठान, में से ले जाता है, एक पर्व मनाते हैं। लोग कहते हैं कि महादेव इन टुकड़ों को भेजता है। इन काष्ठ-खण्डों की यह विशेषता है कि मनुष्य कितना ही क्यों न चाहे वह इनको पकड़ नहीं सकता। वे सदा उसकी पकड़ से बचकर आगे चले जाते हैं। लोगों का ऐसा ही कथन है।

२६ व, २७ वीं भाद्रपदा।

किन्तु कश्मीर के लोग, जिनके साथ इस विषय पर मैंने बात-चीत की है, स्थान और समय के विषय में एक भिन्न वृत्तान्त सुनाते हैं। वे कहते हैं कि जिस नदी (वितस्ता = जैलम) का अभी उल्लेख हुआ है उसके उद्गमस्थान की बाईं ओर, कूदैशहर (?) नाम के तालाब में, वैशाख मास के मध्य में, यह बात होती है। यह पिछला कथन अधिक संभाव्य है, क्योंकि इस काल के लगभग पानी बढ़ने लगता है। यह बात जुर्जान नदी में लकड़ी का स्मरण कराती है, जो उस समय प्रकट होती है जब पानी इसके उद्गमस्थान में बढ़ने लगता है।

वही जीवशर्मन् कहता है कि कीरी (?) ज़िले के सम्मुख, स्वात के देश में एक उपत्यका है जिसमें तिरपन धाराएँ मिलती हैं। यह तरखाई (तुलना कीजिए, सिंधी तरेवखाह) कहलाती है। उन दो दिनों में इस उपत्यका का जल, जैसा कि लोगों का विश्वास है, महादेव के उसमें स्नान करने के कारण, श्वेत हो जाता है।

कार्त्तिक की १ ली, या अमावस्या का दिन, जब सूर्य तुलाराशि में जाता है, दीवाली कहलाती है। तब लोग स्नान करते, आमोद के वस्त्र पहनते, एक दूसरे को पान और सुपारी उपहार देते हैं; वे सवार होकर दान देने के लिए मन्दिरों को जाते और दोपहर तक एक दूसरे के साथ हर्ष से खेलते हैं। रात को वे प्रत्येक स्थान में बहुत बड़ी संख्या में दीपक जलाते हैं, जिससे वायु पूर्ण रूप से निर्मल हो जाती है। इस पर्व का कारण यह है कि वासुदेव की स्त्री, लक्ष्मी, विरोचन के पुत्र, बलि, को—जो सातवें पाताल में बन्दी है—वर्ष में एक बार बन्धन-मुक्त करती और संसार में जाने की आज्ञा देती है। इसलिए यह त्योहार बलिराज्य, अर्थात् बलि का आधिपत्य, कहलाता है। हिन्दू कहते हैं कि कृतयुग में यह समय सौभाग्य का समय था, और वे प्रसन्न होते हैं, क्योंकि प्रस्तुत उत्सव का दिन कृतयुग के उस समय के सदृश है।

१ ली कार्त्तिक।

उसी मास में, जब पूर्णचन्द्र निर्दोष हो, वे कृष्ण पक्ष के सभी दिन अपनी स्त्रियों को सिंगारते और जेवनार देते हैं।

३ री मार्गशीर्ष, जो गुवान-बात्रोज (—तृतीया ?) कहलाती है, स्त्रियों का त्योहार है, और गौरी को पवित्र है। वे अपने में से धनाढ्यों के घर इकट्ठी होती हैं; वे देवी की कई रजत-मूर्त्तियाँ एक सिंहासन पर रखकर

३ री मार्गशीर्ष।

उन्हें धूप देती और दिन भर एक दूसरे के साथ खेलती हैं। दूसरे दिन सवेरे वे स्नान करती हैं।

१५ वीं मार्गशीर्ष। पृष्ठ २६०

उसी मास की पूर्णिमा को स्त्रियों का एक दूसरा त्योहार होता है।

पौष।

पौष मास के अधिकांश दिनों में वे पूहवल (?), अर्थात् एक मीठा भोजन जो वे खाती हैं, बहुत बड़े परिमाण में तैयार करती हैं।

पौष के शुक्ल पक्ष के आठवें दिन, जो अष्टक कहलाता है, वे

८ वीं पौष।

ब्राह्मणों को इकट्ठा करते, बथुआ के पेड़, अर्थात् अरबी में सरमक, से तैयार किया हुआ भोजन उनको देते, और उनकी टहल-सेवा करते हैं।

कृष्ण पक्ष के आठवें दिन, जो साकार्तम् कहलाता है, वे शलजम खाते हैं।

३ री माघ, जो माहत्रीज (माघ-तृतीया ?) कहलाती है, स्त्रियों का त्योहार है, और गौरी को प्यारा है। वे अपने में से प्रमुखतमों

३ री माघ।

के घरों में गौरी की मूर्त्ति के सम्मुख इकट्ठी होती, उसके आगे अनेक प्रकार के बहुमूल्य वस्त्र, रम्य सुगन्धियाँ, और मिष्ट भोजन रखती हैं। प्रत्येक सम्मेलन-स्थान में वे पानी से भरे हुए १०८ लोटे रखती हैं, और जब पानी ठण्डा हो जाता है, तब वे उसके साथ उस रात के चार प्रहरों में चार बार स्नान करती हैं। दूसरे दिन वे दान करती, मिष्ट भोजन देती और अतिथि-सत्कार करती हैं। स्त्रियों का ठण्डे पानी से स्नान करना इस मास के सभी दिनों के लिए सामान्य है।

इस मास के अन्तिम दिन, अर्थात् २६ वीं को, जब केवल ३ दिन-कला, अर्थात् १ $\frac{१}{६}$ घण्टे, अवशेष होते हैं, सब हिन्दू पानी में पैठकर उसमें सात बार डुबकी लगाते हैं।

२९ वीं माघ।

इस मास की पूर्णिमा के दिन, जो चामाह (?) कहलाता है, वे सब ऊँचे स्थानों पर दीपक जलाते हैं।

१५ वीं माघ।

२३ वीं को, जो मांसर्तकु, और महातन भी, कहलाती है, वे अभ्यागतों को मांस और बड़े काले मटर खिलाते हैं।

२३ वीं माघ।

८ वीं फाल्गुन, जो पूरातांकु कहलाती है, वे ब्राह्मणों के लिए आटे और घी के विविध भोजन तैयार करते हैं।

८ वीं फाल्गुन।

फाल्गुन की पूर्णिमा स्त्रियों का पर्व है। यह ओदाद (?), या धोल (अर्थात् दोल) भी, कहलाता है। इस दिन वे उन स्थानों में आग जलाते हैं जो उन स्थानों से, जहाँ वे चामाह पर्व में जलाते हैं, नीचे हैं, और वे आग को गाँव से बाहर फेंक देते हैं।

१५ वीं फाल्गुन।

अगली रात, अर्थात् १६ वीं की रात को, जो शिवरात्रि कहलाती है, वे सारी रात महादेव का पूजन करते रहते हैं; वे जागते रहते हैं, और सोने के लिए लेटते नहीं, और उस पर धूप और फूल चढ़ाते हैं।

१६ वीं फाल्गुन।

२३ वीं को, जो पूयत्तान (?) कहलाती है, वे शक्कर और घी के साथ भात खाते हैं।

२३ वीं फाल्गुन।

मुलतान के हिन्दुओं का एक त्योहार है जो साम्बपुर-यात्रा कहलाता है; वे उसे सूर्य के सम्मान में मनाते हैं, और उसकी पूजा

करते हैं। इसका निश्चय इस प्रकार किया जाता है—वे पहले, खण्डखाद्यक के नियमों के अनुसार, अहर्गण लेते, और उन में से ८८,०४० घटाते हैं। वे अवशेष को ३६५ पर भाग देते, और भागफल को छोड़ देते हैं। यदि भाग देने से कोई अवशेष न निकले, तो भाग-फल प्रस्तुत पर्व की तिथि है। यदि कोई अवशेष हो, तो यह उन दिनों को दिखलाता है जो पर्व के पश्चात् बीत चुके हैं, और इन दिनों को ३६५ में से घटाने से तुम उसी पर्व की अगले वर्ष में तिथि मालूम कर लेते हो।

मुलतान में एक त्योहार।

सतहत्तरवाँ परिच्छेद

——:❀:——

विशेष प्रकार से पवित्र दिनों पर, शुभाशुभ समयों पर, और ऐसे समयों पर जो स्वर्ग में आनन्द-लाभ करने के लिए विशेष रूप से अनुकूल हैं।

अकेले-अकेले दिनों के सम्मान के दर्जे, उन विशेष गुणों के अनुसार, जो वे लोग उनके साथ आरोपित करते हैं, भिन्न-भिन्न हैं। वे, उदाहरणार्थ, रविवार को विशेषता देते हैं, क्योंकि यह सूर्य का दिन है और सप्ताह का आरम्भ है, जैसा कि इसलाम में शुक्रवार को विशेषता दी जाती है।

अमावस्या और पूर्णिमा के दिन।

विविक्त दिनों में फिर अमावस्या तथा पूर्णिमा, अर्थात् ग्रहयुति (अमावस्या) और विपर्यास (पूर्ण चन्द्र) के दिन भी हैं; क्योंकि वे चन्द्रकला के ह्रास और वृद्धि की सीमाएँ हैं। इस वृद्धि और ह्रास के विषय में, हिन्दुओं के विश्वास के अनुसार, ब्राह्मण लोग स्वर्ग-लाभ करने के लिए निरन्तर आग में होम करते हैं। वे देवताओं के भागों को इकट्ठा होने देते हैं। ये भाग चन्द्रप्रकाश में अमावस्या से पूर्णिमा तक सारे समय में अग्नि में डाले हुए नैवेद्य होते हैं। तब वे इन भागों को, पूर्णिमा से अमावस्या तक के समय में, देवताओं में बाँटने लगते हैं, यहाँ तक कि

पृष्ठ २६१

अमावस्या के समय उनका और अधिक कुछ भी शेष नहीं रह जाता। हम पहले कह चुके हैं कि अमावस्या और पूर्णिमा पितरों के अहोरात्र का मध्याह्न और मध्यरात्रि हैं। इसलिए इन दो दिनों में पितरों के सम्मान में सदा निर्विघ्नता-पूर्वक दान दिया जाता है।

वे चार दिन जिनसे चार युग आरम्भ हुए कहे जाते हैं।

चार दूसरे दिन विशेष सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं, क्योंकि हिंदुओं के मतानुसार, वर्तमान चतुर्युग के अकेले-अकेले युग उनके साथ आरम्भ हुए हैं, यथा—

३ री वैशाख, जो चौरीता (?) कहलाती है। लोगों का विश्वास है कि इस दिन कृतयुग का आरम्भ हुआ था।

९ वीं कार्त्तिक, त्रेतायुग का आरम्भ।

१५ वीं माघ, द्वापर युग का आरम्भ।

आश्वयुज की १३ वीं, कलियुग का आरम्भ।

मेरी सम्मति में, ये दिन पर्व हैं, जो युगों के लिए पवित्र हैं, और दान देने के प्रयोजन से या कोई अनुष्ठान और प्रक्रियाओं के करने के लिए, जैसा कि, उदाहरणार्थ, ईसाइयों के वर्ष में स्मरणोत्सव के दिन हैं, बनाये गये हैं। तो भी, हमारे लिए इस बात से इनकार करना आवश्यक है कि ये चार युग वस्तुतः यहाँ लिखे दिनों से आरम्भ हो सकते थे।

इस पर आलोचना।

कृतयुग के विषय में, बात बिलकुल साफ़ है, क्योंकि इसका आरम्भ सौर और चान्द्र चक्रों का आरम्भ है, तिथि में कोई अपूर्णाङ्क नहीं, क्योंकि यह, साथ ही, चतुर्युग का आरम्भ है। यह चैत्र मास की पहली है, साथ ही महाविषुव की तिथि है, और उसी दिन दूसरे युग भी आरम्भ होते हैं। क्योंकि, ब्रह्मगुप्त के अनुसार, एक चतुर्युग में—

नागरिक दिन...१, ५७७, ९१६, ४५०

सौर मास...५१, ८४०, ०००

मलमास...१, ५९३, ३००

चान्द्र दिन...१, ६०२, ९९९, ०००

ऊनरात्र दिन...२५, ०८२, ५५०

होते हैं।

ये वे तत्त्व हैं जिनके आधार पर कालक्रमानुगत तिथियों के दिन या दिनों की ये तिथियाँ बनाई जाती हैं। इन सब संख्याओं को १० पर भाग दिया जा सकता है, और भाजक अपूर्णांक-रहित पूर्णांक हैं। अब अकेले-अकेले युगों के आरम्भ चतुर्युग के आरम्भ पर अवलम्बित हैं।

पुलिस के अनुसार, चतुर्युग में—

नागरिक दिन...१, ५७७, ९१७, ८००

सौर मास...५१, ८४०, ०००

मल मास...१, ५९३, ३३६

चान्द्र दिन...१, ६०३, ०००, ०१०

ऊनरात्र दिन...२५, ०८२, २८०

होते हैं।

इन सब संख्याओं को ४ पर भाग दिया जा सकता है, और हार सर्वथा अपूर्णांक-शून्य होते हैं। इस परिसंख्यान के अनुसार भी, अकेले-अकेले युगों के आरम्भ वही हैं जो चतुर्युग का आरम्भ है, अर्थात्, चैत्र मास की पहली और महाविषुव का दिन। तथापि, यह दिन सप्ताह के भिन्न-भिन्न दिनों पर आता है।

अतएव यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त चार दिनों के चार युगों के प्रारम्भ होने के विषय में उनकी कल्पना सर्वथा निर्मूल है; अर्थ करने

की बहुत ही कृत्रिम रीतियों का आश्रय लिये बिना वे ऐसे परिणाम पर कभी नहीं पहुँच सकते थे।

जो समय स्वर्गीय-पुरस्कार अर्जन करने के लिए विशेष रूप से अनुकूल हैं वे पुण्यकाल कहलाते हैं। बलभद्र खण्डखाद्यक की टीका में कहता है—"यदि योगिन्, अर्थात् वह तपस्वी जो स्रष्टा को समझता है, जो शुभ को ग्रहण करता और अशुभ को रोक देता है, एक सहस्र वर्ष तक अपने जीवन के आचार जारी रक्खे, तो उसका पुरस्कार उस मनुष्य के फल के बराबर नहीं होगा जो पुण्यकाल में दान देता और उस दिन के कर्तव्यों को पूरा करता है, अर्थात् जो स्नान और विलेपन, और स्तुति तथा प्रार्थना करता है।"

पुण्यकाल कहलाने-वाले दिन।

निस्सन्देह, पूर्ववर्ती परिच्छेद में गिने हुए अधिकांश पर्व के दिन इसी प्रकार के दिनों में से हैं, क्योंकि वे दान-पुण्य और न्योता खिलाने में ही लगाये जाते हैं। यदि लोगों को उससे स्वर्ग में फल पाने की आशा न हो तो वे उस आमोद-प्रमोद और आनन्दोत्सव को पसन्द न करें जो इन दिनों का विशेष चिह्न है।

पृष्ठ २१२

यद्यपि पुण्यकाल का स्वरूप जैसा यहाँ बताया गया है वैसा ही है, तो भी उनमें से कुछ तो शुभ, और कुछ अशुभ दिन समझे जाते हैं।

वे दिन शुभ हैं जब ग्रह, विशेषतः सूर्य, एक राशि से दूसरी राशि में जाते हैं। ये समय संक्रान्ति कहलाते हैं। उनमें से सब से अधिक शुभ विषुवों और अयनों के दिन हैं, और इनमें से सबसे अधिक शुभ महाविषुव का दिन है। यह बिखु या षिवू (विषुव) कहलाता है, क्योंकि

संक्रान्ति।

दो ध्वनियों ष और ख का एक दूसरे के साथ विनिमय हो सकता है, और वे, वर्णव्यत्यय से, अपना स्थान भी बदल सकती हैं।

किन्तु, क्योंकि, किसी ग्रह को किसी नवीन राशि में प्रवेश करने के लिए समय के एक क्षण से अधिक का प्रयोजन नहीं, और, इस समय के बीच, लोगों के लिए तेल और अन्न के साथ सान्त (?) नामक नैवेद्य आग में देना आवश्यक है, इसलिए, हिन्दुओं ने इन समयों को बहुत बड़ा विस्तार दे दिया है; वे उनको उस क्षण से आरम्भ कराते हैं जब सूर्य के पिण्ड का पूर्वी छोर राशि के प्रथम भाग का स्पर्श करता है; वे उस क्षण को उनका मध्य गिनते हैं जब सूर्य का केन्द्र राशि के प्रथम भाग में पहुँचता है, जो खगोलविद्या में (ग्रह के एक राशि से दूसरी में) जाने का समय समझा जाता है; वे उस क्षण को अन्त गिनते हैं जब सूर्य के पिण्ड का पश्चिमी किनारा राशि के प्रथम भाग को छूता है। सूर्य की दशा में, यह क्रिया लगभग दो घण्टे तक रहती है।

सप्ताह के वे समय मालूम करने के लिए जब सूर्य एक राशि से दूसरी में जाता है, उनके पास अनेक विधियाँ हैं। उनमें से एक मुझको समय (?) ने लिखाई थी। वह यह है—

संक्रान्ति का क्षण गिन-कर निकालने की विधि। शककाल में से ८४७ घटाओ, अवशेष को १८० से गुणा करो, और गुणन-फल को १४३ पर भाग दो। जो भाग-फल तुम्हें प्राप्त होता है वह दिनों, कलाओं और विपलों को दिखलाता है। यह संख्या आधार है।

यदि तुम यह जानना चाहते हो कि प्रस्तुत वर्ष में सूर्य बारह राशियों में से किसी एक में किस समय प्रवेश करता है, तो तुम उस राशि को आगे लिखी तालिका में ढूँढ़ लो। जो संख्या तुम प्रस्तुत राशि की बग़ल से सटी हुई पाओ, उसको लेकर आधार में

जोड़ दो, दिनों में दिन, कलाओं में कला और विपलों में विपल। यदि पूर्णाङ्कों की संख्या ७ या अधिक हो, तो उन्हें छोड़ दो, और अवशेष के साथ, रविवार के आरम्भ से आरम्भ करके, सप्ताह के दिनों को गिन डालो। जिस समय पर तुम पहुँचते हो वह संक्रान्ति का क्षण है।

राशियाँ	जो कुछ आधार में बढ़ाना चाहिए।		
	दिन	घटी	चषक
मेष	३	१९	०
वृषभ	६	१७	०
मिथुन	२	४३	०
कर्क	६	२१	०
सिंह	२	४९	०
कन्या	५	४९	०
तुला	१	१४	०
वृश्चिक	३	६	३०
धनु	४	३४	३०
मकर	५	५४	०
कुम्भ	०	३०	०
मीन	२	११	२०

क्रमागत सौर वर्षों के आरम्भ में सप्ताह में १ दिन और वर्ष की
ब्रह्मगुप्त, पुलिस, समाप्ति पर के अपूर्णाङ्क का अन्तर पड़ता है।
और आर्यभट के अनुसार यह संख्या, एक ही प्रकार के अपूर्णाङ्क बना
सौर वर्षकीलम्बाई पर। देने पर, गुणाकार (१८०) है, जो पूर्ववर्ती
परिसंख्यान में प्रत्येक वर्ष का अतिरिक्तांश मालूम करने के लिए उप-

योग में लाया जाता है। (अर्थात्, वह संख्या जिससे इसका आरम्भ सप्ताह में से आगे की ओर चलता है)।

भाजक (१४३) अपूर्णाङ्क का हारकाङ्क है (जो तदनुसार $\frac{१८०}{१४३}$ है)।

इसके अनुसार, इस परिसंख्यान में, सौर वर्ष के अन्त में अपूर्णाङ्क $\frac{३७}{१४३}$ गिना जाता है, जो सौर वर्ष की लम्बाई के रूप में ३६५ दिन १५′ ३१″ २८‴ ६⁗ सूचित करता है। दिन के इस अपूर्णाङ्क को एक पूर्ण दिन बनाने के लिए, दिन के $\frac{१०६}{१४३}$ की आवश्यकता है। मुझे मालूम नहीं कि यह किसकी कल्पना है।

ब्रह्मगुप्त की कल्पना के अनुसार, यदि हम चतुर्युग के दिनों को इसके सौर वर्षों की संख्या पर भाग दें, तो हम सौर वर्ष की लम्बाई के रूप में ३६५ दिन ३०′ २२″ ३०‴ ०⁗ प्राप्त करते हैं। इस अवस्था में गुणक अङ्क या गुणाकार ४०२७, और भाजक या भागहार ३२०० है (अर्थात् १ दिन ३०′ २२″ ३०‴ ०⁗ बराबर हैं $\frac{४०२७}{३२००}$)

पुलिस की कल्पना के अनुसार गिनने से, हम सौर वर्ष की लम्बाई ३६५ दिन १५′ ३१″ ३०‴ ०⁗ पाते हैं।

पृष्ठ २६३

तदनुसार, गुणाकार १००७, भागहार ८०० होगा (अर्थात् १ दिन १५′ ३१″ ३०‴ ०⁗ बराबर हैं $\frac{१००७}{८००}$)।

संक्रान्ति मालूम करने की एक दूसरी विधि।

संक्रान्ति का निमेष मालूम करने की एक दूसरी विधि मुझे सहावी (?) के पुत्र अलिअत्त (?) ने लिखाई है, और पुलिस की शैली पर अवलम्बित है। वह यह है—

शककाल में से ६१८ घटाओ, अवशेष को १००७ से गुणा करो, गुणनफल में ७६ बढ़ाओ, और योगफल को ८०० पर भाग दो। भागफल को ७ पर भाग दो। जो अवशेष प्राप्त हो वह आधार

है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अब प्रत्येक राशि के लिए आधार में क्या बढ़ाना चाहिए, यह आगे लिखी तालिका में प्रत्येक राशि के सामने दिखलाया गया है—

राशियाँ	जो कुछ आधार में बढ़ाना चाहिए		राशियाँ	जो कुछ आधार में बढ़ाना चाहिए	
	दिन	घटी		दिन	घटी
मेष	१	३५	तुला	६	३१
वृषभ	४	३३	वृश्चिक	१	२३
मिथुन	०	३९	धनु	२	११
कर्क	४	३४	मकर	४	१०
सिंह	१	६	कुम्भ	५	३४
कन्या	४	६	मीन	०	२८

वराहमिहिर पञ्चसिद्धान्तिका में कहता है कि अनन्त स्वर्ग-पुरस्कार की प्राप्ति के लिए षडशीतिमुख उतना ही शुभ है जितना कि संक्रान्ति का समय। यह समय है सूर्य के प्रवेश करने का—मिथुन के १८ वें अंश में; कन्या के १४ वें अंश में; धनु के २६ वें अंश में और मीन के २८ वें अंश में।

षडशीतिमुख।

स्थिर राशियों में सूर्य के प्रवेश का निमेष उसके दूसरी राशियों में प्रवेश के निमेष से चार गुना अधिक शुभ है। इन समयों में से प्रत्येक के लिए वे आदि और अन्त का परिसंख्यान सूर्य की त्रिज्या के द्वारा उसी प्रकार करते हैं जैसे कि वे ग्रहण के समय सूर्य के या चन्द्र के छाया में प्रवेश करने और उसे छोड़ने की कलाओं का लेखा करते हैं। यह रीति उनके ज्योतिष-ग्रन्थों में बहुत विख्यात

है। परन्तु, हम यहाँ उनकी गणना की केवल वही रीतियाँ लिखेंगे जिनको हम द्रष्टव्य समझते हैं, या जो, जहाँ तक हमें मालूम है, अभी तक मुसलिम कानों के सामने प्रकट नहीं की गईं, क्योंकि मुसलिमों को हिन्दुओं की केवल उन्हीं रीतियों का ज्ञान है जो सिन्द-हिन्द में पाई जाती हैं।

ग्रहणों के समय।

इसके उपरान्त, सब से अधिक शुभ समय सूर्य और चन्द्र के ग्रहणों के समय हैं। उस समय, उनके विश्वास के अनुसार, पृथ्वी के सभी पानी गङ्गा-जल के समान पवित्र हो जाते हैं। वे इन समयों की पूज्यता के विषय में इतनी अतिशयोक्ति करते हैं कि उनमें से अनेक, ऐसे समय में मरने की इच्छा करते हुए, जो उनको स्वर्गीय आनन्द की प्राप्ति की आशा दिलाता है, आत्म-हत्या कर लेते हैं। किन्तु, यह काम केवल वैश्य और शूद्र ही करते हैं। ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिए इसका निषेध है। अतः वे आत्म-हत्या नहीं करते।

पर्वन् और योग।

फिर, पर्वन् के समय शुभ हैं, अर्थात् वे समय जिनमें ग्रहण लग सकता है। और यदि ऐसे समय में ग्रहण न भी हो, तो भी यह वैसा ही शुभ समझा जाता है जैसा कि स्वयं ग्रहण का समय। योगों के समय उतने ही शुभ हैं जितने कि ग्रहणों के समय। हमने उन पर एक विशेष परिच्छेद (परि० ७९) लिखा है।

अशुभ दिन

पृष्ठ २६४

यदि ऐसा हो कि एक ही नागरिक दिन में चन्द्रमा किसी नक्षत्र के पिछले भाग में घूमे, तब अगले नक्षत्र में प्रवेश करे, और इस सारे में से चलकर तीसरे नक्षत्र में प्रविष्ट हो जाय, जिससे एक दिन में वह तीन क्रमागत नक्षत्रों में ठहरे, तो ऐसा दिन त्रिहस्पक (?)

और त्रिहर्कष (?) भी, कहलाता है। बुरा होने के कारण, यह अशुभ दिन है, और यह पुण्यकाल में गिना जाता है।

यही बात उस नागरिक दिन पर लागू होती है जिसमें एक पूर्ण चान्द्र दिन मिला हुआ हो, इसके अतिरिक्त, जिसका आरम्भ पूर्ववर्ती चान्द्र दिन के पिछले भाग में, और जिसका अन्त अगले चान्द्र दिन के आरम्भ में हो। ऐसा दिन त्रहगत्तत (?) कहलाता है। यह अशुभ है, परन्तु स्वर्ग्य-पुरस्कार उपार्जन करने के लिए अनुकूल है।

जब ऊनरात्र के दिन, अर्थात् ह्रास के दिन, इकट्ठे होकर एक पूर्ण दिन बनायें, तो यह अशुभ है और पुण्यकाल में गिना जाता है। ब्रह्मगुप्त के अनुसार, यह $६२\frac{५०,६३३}{५५,७३६}$ नागरिक दिनों, $६२\frac{१८२}{५५,७३६}$ सौर दिनों, $६३\frac{५०,६६२}{५५,७३६}$ चान्द्र दिनों में होता है।

पुलिस के अनुसार, यह $६२\frac{६३,२७६}{६६,६७३}$ नागरिक दिनों, $६३\frac{६३,२७६}{६६,६७३}$ चान्द्र दिनों, $६२\frac{२७४}{६६,६७३}$ सौर दिनों में होता है।

वह निमेष जिसमें मलमास बिना किसी अपूर्णाङ्क के पूरा होता है, अशुभ है, और इसकी गिनती पुण्यकाल में नहीं होती। ब्रह्मगुप्त के अनुसार, यह $९९०\frac{३,६६३}{१०,६२२}$ नागरिक दिनों, $९७६\frac{४६४}{५३११}$ सौर दिनों, $१००६\frac{४६४}{५३११}$ चान्द्र दिनों में होता है।

जो समय अशुभ समझे जाते हैं, जिनके साथ किसी भी पुण्य का सम्बन्ध नहीं किया जाता, वे, उदाहरणार्थ, भूकम्पों के समय हैं।

भूकम्प के समय।

तब हिन्दू अपने घर के बर्तनों को, शुभ शकुन लेने और अनिष्टपात को दूर करने के लिए,

पृथ्वी पर पटककर तोड़ डालते हैं। इसी के सदृश अमङ्गल प्रकृति के और समय, पुस्तक संहिता ये गिनाती है—भूमिस्खलन, तारकाओं का गिरना, आकाश में लाल चमक, बिजली से पृथ्वी का जलना, धूमकेतुओं का प्रादुर्भाव, ऐसी घटनाओं का होना जो प्रकृति और व्यवहार दोनों के विपरीत हों, ग्रामों में वनैले जीवों का घुसना, ऐसे समय में वर्षा होना जब इसकी ऋतु न हो, वृक्षों पर ऐसे समय में पल्लवों का निकलना जब इनका मौसम नहीं, जब वर्ष की एक ऋतु का स्वभाव दूसरी में स्थानान्तरित हुआ प्रतीत हो, और इसी प्रकार की और बातें।

पुस्तक सूधव, जिसका सम्बन्ध महादेव से ठहराया जाता है, महादेव की पुस्तक सूधव से अवतरण। यों कहती है—"जलते हुए दिन, अर्थात् अशुभ दिन—क्योंकि वे उनको इसी प्रकार पुकारते हैं—ये हैं—

"चैत्र और पौष मासों के शुक्ल और कृष्ण पक्षों के दूसरे दिन;

"ज्येष्ठ और फाल्गुन मासों के दोनों पक्षों के चौथे दिन;

"श्रावण और वैशाख मासों के दोनों पखवाड़ों के छठवें दिन;

"आषाढ़ और आश्वयुज मासों के दोनों पक्षों के आठवें दिन;

"मार्गशीर्ष और भाद्रपद मासों के दोनों पखवाड़ों के दसवें दिन;

"कार्त्तिक मास के दोनों पक्षों के बारहवें दिन।"

अठहत्तरवाँ परिच्छेद

करणों पर।

हम तिथि कहलानेवाले चान्द्र दिनों का पहले उल्लेख कर चुके हैं और बता चुके हैं कि प्रत्येक चान्द्र दिन नागरिक दिन से छोटा है, क्योंकि चान्द्र मास में तीस चान्द्र दिन, परन्तु साढ़े उनतीस से कुछ ही अधिक नागरिक दिन होते हैं।

करण की व्याख्या।

क्योंकि हिन्दू इन तिथियों को अहोरात्र कहते हैं, इसलिए वे तिथि के पूर्वार्द्ध को दिन, और उत्तरार्द्ध को रात भी कहते हैं। इन अर्द्धों में से प्रत्येक का अलग-अलग नाम है, और वे सब के सब (अर्थात् चान्द्र मास के चान्द्र दिनों के सब अर्ध) करण कहलाते हैं।

करणों के कुछ नाम मास में केवल एक ही बार आते हैं और उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती, अर्थात् उनमें से चार अमावास्या के समय के क़रीब, सदा मास के उसी दिन और रात को आते हैं। ये स्थावर कहलाते हैं, क्योंकि वे मास में केवल एक ही बार आते हैं।

स्थावर और जङ्गम करण।

उनमें से दूसरे एक मास में आठ बार घूमते और आते हैं। वे जङ्गम कहलाते हैं, क्योंकि वे घूमते हैं, और उनमें से प्रत्येक करण दिन में भी वैसे ही आ सकता है जैसे कि वह रात में आ सकता है। वे संख्या में सात हैं, और सातवाँ या उनमें से अन्तिम एक

अशुभ दिन है, जिससे वे अपने बच्चों को डराया करते हैं, और जिसका नाम लेने से ही उनके लड़कों के सिर के बाल खड़े हो जाते हैं। हमने करणों का सर्वाङ्गपूर्ण वर्णन अपनी एक दूसरी पुस्तक में दिया है। उनका उल्लेख ज्योतिष और गणित की प्रत्येक भारतीय पुस्तक में है।

पृष्ठ. २६५

करणों को मालूम करने का नियम।

यदि तुम करण मालूम करना चाहते हो, तो पहले चान्द्र दिनों का निश्चय करो, और मालूम करो कि उनके किस भाग में प्रस्तुत तिथि पड़ती है। यह इस प्रकार किया जाता है—

सूर्य का स्फुट स्थान चन्द्रमा के स्फुट स्थान में से घटाओ। अवशेष उनके बीच का अन्तर है। यदि यह छः राशियों से कम है, तो तिथि मास के शुक्ल पक्ष में आयगी; यदि यह अधिक है, तो यह कृष्ण पक्ष में आयगी।

इस संख्या की कलाएँ बनाओ, और घात को ७२० पर भाग दो। भागफल तिथियों, अर्थात् पूर्ण चान्द्र दिनों को दिखलाता है। यदि भाग देने से कुछ अवशेष निकले, तो उसमें ६० का गुणा करके गुणन-फल को मध्यम भुक्ति पर भाग दो। भागफल घटियों और अपूर्णाङ्कों को, अर्थात् वर्तमान दिन के उस भाग को दिखलाता है जो आगे बीत चुका है।

यह हिन्दुओं के ज्योतिष-ग्रन्थों की विधि है। सूर्य और चन्द्र के संशोधित स्थानों के बीच के अन्तर में मध्यम भुक्ति का भाग अवश्य देना चाहिए। परन्तु, यह बात उनमें से अनेक दिनों के लिए असम्भव है। इसलिए वे इस अन्तर में सूर्य और चन्द्र के दैनिक परिभ्रमणों के बीच के प्रभेद का भाग देते हैं। इनको वे चन्द्र के लिए १३ अंश और सूर्य के लिए १ अंश गिनते हैं।

सूर्य और चन्द्र की मध्यम गति से गिनना, इस प्रकार के नियमों में, विशेषतः भारतीय नियमों में, एक प्रिय पद्धति है। सूर्य की मध्यम गति चन्द्रमा की मध्यम गति में से घटाई जाती है, और अवशेष में ७३२ का भाग दिया जाता है, जो कि उनकी दो मध्यवर्ती भुक्तियों के बीच का प्रभेद है। भागफल तब दिनों और घटियों को दिखलाता है।

शब्द बुहूत का मूल भारतीय है। भारतीय भाषा में यह भुक्ति है (= ग्रह की दैनिक गति)। यदि स्फुट गति से अभिप्राय होता है, तो यह भुक्ति स्फुट कहलाती है। यदि मध्यम गति अभिप्रेत होती है, तो यह भुक्ति मध्यम कहलाती है, और यदि बुहूत, जो बराबर कर देता है, अभिप्रेत हो, तो यह भुक्त्यन्तर, अर्थात् दो भुक्तियों के बीच का अन्तर कहलाता है।

भुक्ति की व्याख्या।

मास के चान्द्र दिनों के विशेष नाम हैं। इनको हम आगे दिये कोष्टक में प्रदर्शित करते हैं। यदि तुम्हें पता है कि तुम किस चान्द्र दिन में हो, तो तुम, दिन की संख्या के पार्श्व में, इसका नाम, और इसके सामने वह करण जिसमें कि तुम हो, पाते हो। यदि वर्तमान दिन का जो कुछ बीत चुका है वह आधे दिन से कम है, तो करण प्रात्यहिक है; यदि इसका जो अंश बीत चुका है वह आधे दिन से अधिक है, तो यह नैशिक है। (वह कोष्टक पृष्ठ २५२ में है।)

पक्ष के चान्द्र दिनों के नाम।

जैसा कि उनकी रीति है, हिन्दू कुछ करणों के स्वामी ठहराते हैं। फिर वे नियम देते हैं, जो यह दिखलाते हैं कि प्रत्येक करण में क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, और जो (शुभाशुभ दिनों, इत्यादि, के विषय में) फलित-ज्योतिष-सम्बन्धी पूर्व

करणों की सूची, उनके स्वामियों और पूर्व चिह्नों समेत।

शुक्ल पक्ष				कृष्ण पक्ष		करण दोनों पक्षों में सामान्य हैं			
दिनों की संख्या	उनके नाम	दिनों की संख्या	उनके नाम	दिनों की संख्या	उनके नाम	दिनों की संख्या	उनके नाम	दिन के समय में	रात्रि में
१	अमावास्या	०	०	०	०	०	०	चतुष्पद	ताग
२	बर्खु	०	०	०	०	०	०	किंस्तुघ्न	बव
३	बिय	१०	नविन्	१७	बर्खु	२४	अतीन्	बालव	कौलव
४	त्रिय	११	दहीन्	१८	बिय	२५	नविन्	तैतिल	गर
५	चौत्	१२	याही	१९	त्रिय	२६	दहीन्	वणिज्	विष्टि
६	पञ्ची	१३	दुवाही	२०	चौत्	२७	याही	बव	बालव
७	सत्	१४	त्रोही	२१	पञ्ची	२८	दुवाही	कौलव	तैतिल
८	सतीन	१५	चौदही	२२	सत्	२९	त्रोही	गर	वणिज्
९	अतीन्	१६	पूर्णिमा / पञ्चाही	२३	सतीन्	०	०	विष्टि	बव
०	०	०	०	०	०	३०	चौदही	विष्टि	शकुनि

चिह्नों के संग्रहों के सदृश हैं। यदि हम यहाँ करणों का एक दूसरा मानचित्र देते हैं, तो उससे हमारा अभिप्राय जो कुछ हम आगे कह चुके हैं उसको सम्पुष्ट करना, और एक ऐसे विषय को दुहराना है जिसका हम लोगों को ज्ञान नहीं। इस प्रकार विषय का सीखना सरल कर दिया गया है, क्योंकि विद्या पुनरावृत्ति का फल है।

पृष्ठ २६६

चार स्थावर करण

शुक्ल पक्ष में			कृष्ण पक्ष में	वे किस पक्ष में आते हैं
किंस्तुघ्न	नाग	चतुष्पद	शकुनि	उनके नाम
वायु	साँप	वृषभराशि	कलि	उनके स्वामी
सब कर्मों को नष्ट करता है और केवल विवाह-सम्बन्धी बातों के लिए, छोटे छत्रों के बनाने, कानों के छेदने, और ईश्वरभक्ति के कामों के लिए ही अनुकूल है।	विवाह-क्रिया, आधार-शिला स्थापित करने, साँप के काटे हुए व्यक्तियों की दशा की परीक्षा करने, लोगों को डराने और उनको पकड़ने के लिए अनुकूल है।	राजा को सिंहासन पर बैठने, पितरों के नाम पर दान देने, कृषि में चार पैर वाले पशुओं से काम लेने के लिए अनुकूल है।	ओषधियों के, साँप के काटे पर बूटियों के, जादू-टोने के, विद्या के, सभा लगाने के, और मूर्त्तियों के सामने वेद-मन्त्र पढ़ने के प्रभाव के लिए अनुकूल है।	करणों के पूर्वचिह्न, और उनमें से प्रत्येक किस चीज़ के लिए अनुकूल है।

सात जंगम करण

वे किस पक्षों में आते हैं	उनके नाम	उसके स्वामी	करणों के पूर्व लक्षण, और वे किस चीज़ के लिए अनुकूल हैं।
शुक्ल और कृष्ण पक्ष दोनों पक्षों में	बव	शुक्र	जब इस करण में संक्रान्ति हो, तो यह बैठा हुआ है, और, इसमें, फलों पर कोई विपत्ति आयगी। यह सफ़र करने के लिए, उन चीज़ों के साथ आरम्भ करने के लिए जो चिर-काल तक रहनेवाली हैं, अपने आपको साफ़ करने के लिए, स्त्रियों को मोटा करनेवाली औषधों को मिलाने के लिए और उन होमों के लिए जो ब्राह्मण आग में करते हैं, अनुकूल है
	बालव	ब्रह्मा	जब इसमें संक्रान्ति हो, तो यह बैठा हुआ है, फलों के लिए अच्छा नहीं। यह भविष्य जीवन के कामों के लिए, और स्वर्ग्य पुरस्कार की प्राप्ति के लिए अनुकूल है।
	कौलव	मित्र	जब इसमें संक्रान्ति हो, तो यह खड़ा है। इसमें जो कुछ बोया जायगा वह फूले-फलेगा और रसालता से टपक पड़ेगा। यह लोगों के साथ मित्रता करने के लिए अनुकूल है।
	तैतिल	अर्यमन्	जब इसमें संक्रान्ति हो, तो यह भूमि पर फैला हुआ है। यह बतलाता है कि मूल्य गिर जायँगे और सुगंधित लेपों को सानने और सुगंधियों को मिलाने के लिए अनुकूल है।
	गर	पर्वत	जब इसमें संक्रान्ति हो, तो यह भूमि पर फैला हुआ है। यह इस बात का संकेत करता है कि मूल्य घट जायँगे, और बोने और भवन की आधार-शिला रखने के लिए अनुकूल है।
	वणिज	श्री	जब इसमें सं ान्ति हो, तो यह खड़ा है। सब धान्य फूलें-फलेंगे (कृमि भुक्त), और वाणिज्य के लिए अनुकूल है।
	विष्टि	मरुत्	जब इसमें संक्रान्ति हो, तो यह भूमि पर फैला हुआ है। यह बतलाता है कि मूल्य अपर्याप्त होंगे। ईख पेलने के सिवा यह किसी चीज़ के लिए अनुकूल नहीं। यह अशुभ समझा जाता है और यात्रा करने के लिए अच्छा नहीं।

करणों के परिसंख्यान के लिए नियम।

यदि तुम परिसंख्यान से करण मालूम करना चाहते हो, तो सूर्य का स्फुट स्थान चन्द्रमा के स्फुट स्थान में से घटाओ, अवशेष की कलाएँ बनाओ और उनकी संख्या को ३६० पर भाग दो। भागफल पूर्ण करणों को दिखलाता है।

भाग देने के अनन्तर जो कुछ बच रहता है उसमें ६० का गुणा और भुक्त्यन्तर पर भाग दिया जाता है। भागफल यह दिखलाता है कि वर्तमान करण में से कितना बीत चुका है। संख्या की प्रत्येक इकाई आधी घटी के बराबर है। अब हम पूर्ण करणों की ओर लौटते हैं। यदि वे दो या कम हैं, तो तुम दूसरे करण में हो। उस अवस्था में तुम संख्या में एक बढ़ा देते हो, और, चतुष्पद से आरम्भ करके, संख्या को गिन लेते हो।

यदि करणों की संख्या ५९ है, तो तुम शकुनि में हो।

यदि यह ५९ से कम और दो से अधिक है, तो उनमें एक बढ़ा दो और योगफल में सात का भाग दो। अवशेष को, यदि यह सात से अधिक न हो, तो जंगम करणों के चक्र के आदि, अर्थात् बव, से आरम्भ करके, गिन लो। इससे तुम जिस वर्तमान करण में संयोगवश हो उसके नाम पर पहुँच जाओगे।

करण, जैसा कि उनको अलकिन्दी तथा अन्य अरब ग्रन्थकारों ने समझा है।

पाठकों को करणों के संबंध में किसी ऐसी बात का स्मरण कराने की इच्छा से जिसको वे कदाचित् भूल गये हैं, हम उन्हें बताना चाहते हैं कि अलकिन्दी और उसके सदृश दूसरों को करणों की पद्धति का तो पता लगा है, परन्तु इस पद्धति की पर्याप्त रूप से व्याख्या नहीं हुई थी। उन्होंने उन लोगों की विधि को नहीं समझा जो करणों का प्रयोग करते हैं। कभी तो वे उनको भारतीय, और

कभी बेबीलोनियन मूल का सिद्ध करते हैं, और प्रत्येक समय यह घोषणा करते जाते हैं कि उनमें जान-बूझकर फेर-फार किया गया है और वे लिपिकारों के प्रमाद से विकृत हो गये हैं। उन्होंने अपने लिए एक ऐसी गणना निकाली है जो स्वयं मूल विधि की अपेक्षा भी अच्छे ढँग से चलती है। परन्तु इससे यह जो कुछ आदि में थी उससे सर्वथा भिन्न कुछ चीज़ बन गई है। उनकी विधि यह है—वे अमावास्या से आरम्भ करके, आधे दिन गिनते हैं। पहले बारह घण्टों को वे सूर्य के, जलते हुए, अर्थात् अशुभ, समझते हैं, अगले बारह घण्टों को शुक्र के, उनके अगले बारह घंटों को बुध के, और इसी प्रकार ग्रहों के क्रमानुसार समझते हैं। जब कभी क्रम सूर्य पर लौटता है, वे उसके बारह घंटों को अलबिस्त के घंटे अर्थात् विष्टि कहते हैं।

किन्तु, करणों को वे न तो नागरिक—वरन् चान्द्र—दिनों से मापते हैं, और न अमावास्या के पश्चात् आनेवाले जलते हुए घण्टों से आरम्भ करते हैं। अलकिन्दी की गणना के अनुसार, लोग अमावास्या के पश्चात्, बृहस्पति से आरम्भ करते हैं; उस अवस्था में सूर्य के घंटे जलते हुए नहीं होते। इसके विपरीत, यदि वे, हिन्दुओं की पद्धति के अनुसार, अमावास्या के पश्चात् सूर्य से आरम्भ करें, तो विष्टि के घण्टे बुध के होते हैं। इसलिए प्रत्येक पद्धति का, हिन्दुओं की और अलकिन्दी की पद्धति का, वर्णन जुदा जुदा होना चाहिए।

विष्टि एक मास में आठ बार आती है, और दिङ्मण्डल में दिशाएँ आठ हैं, इसलिए हम करणों के विषय में उनके ज्योतिष-संबंधी विवेचन आगे लिखी तालिका के आठ क्षेत्रों में दिखलायँगे। ये ऐसे विवेचन हैं जिनके सदृश सभी फलित-ज्योतिषियों ने ग्रहों के रूपों के विषय में और उन तारों के विषय में किये हैं जो राशियों के अकेले-अकेले तृतीयांशों में उदय होते हैं।

पृष्ठ २९५

उनकी संख्याएँ ।	१	२
मास के किस भाग में वे आते हैं ।	५ वीं तिथि की रात को	९ वीं तिथि के दिन को
विष्टियों के नाम ।	...	...
उनके उदय होने की दिशाएँ ।	पूर्व	ऐशान
अकेली अकेली विष्टियों का वर्णन ।	इसके तीन नेत्र हैं । इसके सिर पर बाल उगते हुए ईख के सदृश हैं । इसके एक हाथ में एक लोहे का काँटा, और दूसरे में काला साँप है । यह बहते पानी की तरह सुदृढ़ और प्रचण्ड है । इसकी लम्बी जीभ है । इसका दिन केवल युद्ध, और उन कामों के लिए अच्छा है जिनमें छल और झूठ हो ।	यह छुरी है, और इसके हाथ में एक खड्ग है । इस का स्थान बिजली, बादल की गर्जना, तूफ़ानी, और ठण्डे बादल में है । इसका समय मोटा करनेवाली जड़ियों को चीरने, औषध-पान, वाणिज्य, और साँचे में सोना भरने के लिए अनुकूल है ।
पुस्तक सूधव के अनुसार उनके नाम ।	वड़वामुख ।	विव् (?)

उनकी संख्याएँ।	३	४
मास के किस भाग में वे आती हैं।	१२ वीं तिथि की रात को।	१६ वीं तिथि के दिन को।
विष्टियों के नाम।	घोर	...
उनके उदय होने की दिशाएँ।	उत्तर	वायव
अकेली-अकेली विष्टियों का वर्णन।	इसका मुँह काला, मोटे होंठ, घनी भौंहें, सिर के लम्बे केश हैं। यह लम्बी है, और अपने दिन में सवारी करती है। इसके हाथ में खड्ग है, यह मनुष्यों को निगल जाने के लिए तत्पर है, यह अपने मुख से आग निकालती है, और वा वा वा कहती है। इसका समय केवल लड़ाई लड़ने, दुर्जनों की हत्या करने, अस्वस्थ लोगों को चंगा करने, और साँपों को उनके बिलों में से बाहर लाने के लिए ही अच्छा है।	इसके पाँच मुँह और दस नेत्र हैं। इसका समय विद्रोहियों को दण्ड देने, सेना को अकेली अकेली पलटनों में बाँटने के लिए अनुकूल है। इसमें मनुष्य को जिस दिशा में यह उदय होती है उधर मुँह करके मुड़ना नहीं चाहिए।
पुस्तक स्रूधव के अनुसार उनके नाम।	घोर	काल (?)

उनकी संख्याएँ	५	६
मास के किस भाग में वे आती हैं।	१९वीं तिथि की रात को।	२३ वीं तिथि के दिन कों।
विष्टियों के नाम।	...	...
उनके उदय होने की दिशाएँ।	पश्चिम	नैऋ`त
अकेली अकेली विष्टियों का वर्णन।	यह धूम्र ज्वाला के सदृश है। इसके तीन सिर हैं, प्रत्येक में तीन उलटी आँखें हैं। इसके बाल खड़े हैं। यह एक मनुष्य के सिर पर बैठती है और मेघनाद की तरह चिल्लाती है। यह क्रुद्ध है, मनुष्यों को निगल जाती है। इसके एक हाथ में छुरी है, और दूसरे में कुल्हाड़ा।	यह श्वेत है, इसके तीन नेत्र हैं, और यह हाथी पर चढ़ती है, जो सदा एक ही रहता है। इसके एक हाथ में एक बड़ी चट्टान है, और दूसरे में लोहे का एक वज्र, जिसको यह फेंकती है। जिन पशुओं पर यह उदय होती है उनका नाश कर देती है। जिस दिशा में यह उदय होती है उधर से आकर जो युद्ध करता है वह विजय पाता है। मोटा करनेवाली बूटियों को चोरते, ख़ज़ानों को खोदते और जीवन के प्रयोजनों की तृप्ति का प्रयत्न करते समय इसकी ओर मुँह करके मुड़ना नहीं चाहिए।
पुस्तक सूधव के अनुसार उनके नाम।	ज्वाल (?)	...

उनकी संख्याएँ।	७	८
मास के किस भाग में वे आती हैं।	२६ वीं तिथि की रात को।	३० वीं तिथि के दिन को।
विष्टियों के नाम।	...	...
उनके उदय होने की दिशाएँ।	दक्षिण	आग्नेय
अकेला अकेली विष्टियों का वर्णन।	इसका वर्ण स्फटिक का है। इसके एक हाथ में तिहरा परश्वध, और दूसरे में जपमाला है। यह आकाश की ओर देखती है, और हा हा हा कहती है। यह बैल पर चढ़ती है। इसका समय बच्चों को पाठशालाओं के सिपुर्द करने, संधि को पूरा करने, दान देने, और पुण्यशीलता के कामों के लिए अनुकूल है।	यह तोते के सदृश पिस्ता-रङ्गी है। यह किसी मण्डलाकार वस्तु की सी देख पड़ती है, और इसके तीन नेत्र हैं। इसके एक हाथ में लोहे के काँटेवाली गदा है, दूसरे में तीक्ष्ण चक्र। यह लोगों को डराती हुई, और सा सा सा कहती हुई अपने सिंहासन पर बैठती है। इसका समय किसी भी काम के आरम्भ करने के लिए अच्छा नहीं। यह केवल बन्धु-बान्धवों की सेवा करने और घरेलू काम के लिए अच्छा है।
पुस्तक सूधव के अनुसार उनके नाम।	कालरात्रि।	...

उन्नासीवाँ परिच्छेद

———:०:———

योगों पर।

ये वे समय हैं जिनको हिन्दू अतीव अशुभ समझते हैं और जिनमें वे कोई कर्म नहीं करते। वे बहुसंख्यक हैं। हम यहाँ उनका उल्लेख करेंगे।

पृष्ठ २११

व्यतीपात और वैधृत की व्याख्या।

दो योग ऐसे हैं जिनके विषय में सब हिन्दू एकमत हैं, अर्थात्—

(१) वह समय जब सूर्य और चन्द्र ऐसे दो वृत्तों पर इकट्ठे खड़े होते हैं, जो मानो एक दूसरे को पकड़ रहे हैं, अर्थात् वृत्तों का प्रत्येक जोड़ा, जिनके झुकाव (दोनों अयनों की) एक ही ओर, बराबर हैं। यह योग व्यतीपात कहलाता है।

(२) वह समय जब सूर्य और चन्द्र दो समान वृत्तों पर इकट्ठे खड़े होते हैं, अर्थात् वृत्तों का प्रत्येक ऐसा जोड़ा, जिनके झुकाव, (दोनों अयनों के) भिन्न भिन्न पार्श्वों पर, बराबर हैं। यह वैधृत कहलाता है।

यह पूर्वोक्त का लक्षण (Signum علامت) है कि इसमें सूर्य और चन्द्र के स्फुट स्थानों का जोड़ प्रत्येक अवस्था में मेषराशि के ०° से छः राशियों का अन्तर दिखलाता है, और शेषोक्त के लिए यह लक्षण है कि यही जोड़ बारह राशियों के अन्तर को दिखलाता है। यदि तुम किसी निश्चित समय के लिए सूर्य और चन्द्र के स्फुट स्थानों की गिनती करो और उनको इकट्ठा जोड़ो, तो उनका जोड़ इन दो में से कोई एक, अर्थात् इन योगों में कोई एक होगा।

परन्तु, यदि इनका जोड़ राशि की संख्या से कम अथवा बड़ा हो, तो उस अवस्था में समता के समय (अर्थात् वह समय जब कि यह जोड़ राशियों में से किसी एक के बराबर हो) का परिसंख्यान इस जोड़ और प्रस्तुत अवधि के बीच के भेद के द्वारा, और भुक्त्यन्तर के स्थान में सूर्य और चन्द्र की दो भुक्तियों के जोड़ के द्वारा उसी प्रकार किया जाता है जैसे कि ज्योतिष ग्रन्थों में पूर्णिमा और अमा-वास्या के समय का परिसंख्यान किया गया है।

यदि तुम दोपहर या आधी रात से उस समय के अन्तर को जानते हो, तो फिर चाहे तुम सूर्य और चन्द्र के स्थानों का संशोधन पहले के या दूसरे के अनुसार करो, इसका समय मध्यकाल कहलाता है। क्योंकि यदि चन्द्र सूर्य के समान ही यथार्थ रीति से क्रान्तिमण्डल का अनुसरण करता, तो यह वही समय होता जिसे हम मालूम करना चाहते हैं। परन्तु, चन्द्रमा क्रान्तिवृत्त से भटक जाता है। इसलिए, उस समय वह सूर्य के वृत्त पर, या उस वृत्त पर जो, जहाँ तक विवेचन जाता है, इसके बराबर है, खड़ा नहीं होता। इस कारण से सूर्य और चन्द्र के स्थान और नाग के सिर (राहु) और पूँछ (केतु) का परिसंख्यान मध्य काल के लिए किया जाता है।

मध्य काल पर

इस समय के अनुसार वे सूर्य और चन्द्र के झुकावों का परिसंख्यान करते हैं। यदि वे बराबर हों, तो यह वह समय है जिसको ढूँढ़ा जा रहा है। यदि नहीं, तो तुम चन्द्रमा के झुकाव पर विचार करो।

व्यतीपात और वैधृत के परिसंख्यान की रीति।

यदि इसको गिनने में, तुमने उसके अक्ष को उस अंश के झुकाव में जोड़ा है जिसमें कि वह है, तो तुम चन्द्रमा के अक्ष को सूर्य के झुकाव में से घटाते हो। किन्तु, यदि इसके परिसंख्यान में, तुमने

उसके अक्ष को उस अंश में से घटाया है जिसमें कि चन्द्र है, तो तुम उसके अक्ष को सूर्य के झुकाव में जोड़ते हो। झुकाव के करदजात की सूचियों से परिणाम के वृत्तांश बना लिये जाते हैं, और इन वृत्तांशों को स्मरण कर लिया जाता है। ये वही हैं जिनका उपयोग ज्योतिष-ग्रन्थ करणतिलक में किया गया है।

फिर, तुम मध्य काल में चन्द्रमा का अवलोकन करते हो। यदि वह क्रान्तिमण्डल की किन्हीं विषम दिशाओं में, अर्थात् वसन्त और पतझड़ के स्थानों में, ठहरा हो, और उसका झुकाव सूर्य के झुकाव से कम हो, तो उस अवस्था में दोनों झुकावों के एक दूसरे के बराबर होने का समय—और यही हम मालूम करना चाहते हैं—मध्य के पश्चात् आता है, अर्थात् भविष्यकाल है; किन्तु यदि चन्द्रमा का झुकाव सूर्य के झुकाव से बड़ा है, तो यह मध्य के पूर्व आता है, अर्थात् अतीतकाल है।

यदि चन्द्रमा क्रान्तिमण्डल के सम स्थानों (अर्थात् ग्रीष्म और शरद् के स्थानों) में हो तो सर्वथा विपरीत अवस्था होती है।

पुलिस सूर्य और चन्द्र के झुकावों को, यदि वे अयन के भिन्न-भिन्न पार्श्वों पर हों तो, व्यतीपात में, और यदि वे अयन के एक ही पार्श्व पर हों तो वैधृत में, जोड़ता है।

पुलिस की एक दूसरी रीति।

फिर वह, यदि सूर्य और चन्द्र एक ही ओर हों तो व्यतीपात में, और यदि वे भिन्न-भिन्न पार्श्वों में हों तो वैधृत में, उनके झुकावों के बीच के अन्तर को लेता है। यह पहला मूल्य है जो स्मरण रक्खा जाता है, अर्थात् मध्य काल।

फिर वह, दिन की कलाओं को दिन के चतुर्थांश से कम मान-कर, उनके माप बनाता है। तब वह उनकी गतियों का परिसंख्यान

सूर्य और चन्द्र की भुक्ति और राहु तथा केतु के द्वारा, और उनके स्थानों का परिसंख्यान मध्य काल के परिमाण के अनुसार, जो वे भूत और भविष्यत् में घेरते हैं, करता है। यह दूसरा मूल्य है जो स्मरण रक्खा जाता है।

इस रीति से वह भूत और भविष्य की दशा को मालूम करने का प्रबन्ध करता है, और इसकी तुलना मध्य काल के साथ करता है। यदि सूर्य और चन्द्र दोनों के लिए एक दूसरे के बराबर होनेवाले दोनों झुकावों का समय अतीत या भविष्य है, तो उस अवस्था में स्मरण रक्खे हुए दो मूल्यों के बीच का अन्तर भागांश (portio divisionis جزء القسمة अर्थात् भागहार) है; परन्तु यदि यह एक के लिए अतीत और दूसरे के लिए भविष्य हो, तो स्मरण रक्खे हुए दो मूल्यों का योग भागहार है।

फिर, वह दिनों की कलाओं में, जो मालूम की गई हैं, स्मरण रक्खे हुए पहले मूल्य का गुणा करता है, और गुणन-फल को भागहार पर भाग देता है। भाग-फल मध्य काल से अन्तर की कलाओं को दिखलाता है। ये कलाएँ भूत या भविष्य में हो सकती हैं। इस प्रकार एक दूसरे के बराबर होनेवाले झुकावों का समय ज्ञात हो जाता है।

पृष्ठ ३००

करण-तिलक नामक ज्योतिष-ग्रन्थ का लेखक हमें स्मरण रक्खे हुए झुकाव के वृत्तांश पर वापस लाता है। यदि चन्द्रमा का स्फुट स्थान तीन राशियों से कम है, तो यह वही है जिसकी हमें आवश्यकता है। यदि यह तीन और छः राशियों के बीच हो, तो वह इसे छः राशियों में से घटा देता है; और यदि यह छः और नौ राशियों के बीच हो, तो वह उसमें छः राशियाँ बढ़ा देता है; यदि

करण-तिलक के रचयिता की एक दूसरी रीति।

यह नौ राशियों से अधिक हो, तो वह इसे बारह राशियों में से घटा देता है। इससे वह चन्द्र का दूसरा स्थान प्राप्त करता है, और इसकी तुलना वह संशोधन के समय चन्द्रमा के स्थान के साथ करता है। यदि चन्द्र का दूसरा स्थान पहले से कम है, तो एक दूसरे के बराबर होनेवाले दो झुकावों का समय भविष्य है; यदि यह पहले से अधिक है, तो उनके एक दूसरे के बराबर होने का समय भूत है।

फिर, वह चन्द्रमा के दोनों स्थानों के बीच के अन्तर को सूर्य की भुक्ति से गुणा करता, और गुणन-फल को चन्द्रमा की भुक्ति पर भाग देता है। यदि चन्द्रमा का दूसरा स्थान पहले की अपेक्षा बड़ा हो, तो वह भाग-फल को संशोधन के समय सूर्य के स्थान में बढ़ा देता है; परन्तु, यदि चन्द्रमा को दूसरा स्थान पहले की अपेक्षा कम हो, तो वह इसको सूर्य के स्थान में से घटा देता है। इससे वह उस समय के लिए सूर्य का स्थान मालूम करता है जब दोनों झुकाव एक दूसरे के बराबर होते हैं।

इसको मालूम करने के लिए, वह चन्द्रमा के दो स्थानों के बीच के अन्तर को चन्द्रमा की भुक्ति पर भाग देता है। भाग-फल दूरी को दिखलानेवाले दिनों की कलाएँ देता है। उनके द्वारा वह सूर्य और चन्द्र, राहु और केतु, और दोनों झुकावों के स्थानों का परिसंख्यान करता है। यदि शेषोक्त बराबर हों, तो यह वही है जिसको हम मालूम करना चाहते हैं। यदि वे बराबर नहीं, तो ग्रन्थकार गणना को उतनी देर तक दुहराता जाता है जब तक कि वे बराबर नहीं हो जाते और जब तक शुद्ध समय मालूम नहीं हो जाता।

इस पर वह सूर्य और चन्द्र के मान का परिसंख्यान करता है। किन्तु, वह उनकी संख्या का आधा छोड़ देता है, जिससे आगे की

गणना में वह उनके मानों का केवल आधा ही उपयोग में लाता है। वह उसको ६० से गुणा करता और गुणन-फल को भुक्त्यन्तर पर भाग देता है। भाग-फल गिरने (पात ?) की कलाओं को दिखलाता है।

मालूम किया हुआ शुद्ध समय तीन भिन्न भिन्न स्थानों में लिख लिया जाता है। पहली संख्या में से वह गिरते हुए की कलाएँ घटाता, और उनको अन्तिम संख्या में बढ़ाता है। तब पहली संख्या व्यतीपात या वैधृत के, दोनों में से जिसको भी तुम गिनना चाहते हो उसके, आरम्भ का समय है। दूसरी संख्या इसके मध्य का समय, और तीसरी संख्या इसके अन्त का समय है।

इस विषय पर ग्रन्थ-कार की पुस्तक।

जिन आधारों पर ये रीतियाँ अवलम्बित हैं उनका विस्तृत वृत्तान्त हमने ख़याल अलकुसूफैनी (अर्थात् दो ग्रहणों की प्रति-च्छाया) नाम की अपनी एक विशेष पुस्तक में दिया है, और उनकी ठीक-ठीक व्याख्या स्यावबल (?) कश्मीरी के लिए रची हुई अपनी ज्योतिष की पुस्तक में दी है। इसका नाम हमने अरबी खण्डखाद्यक रक्खा है।

योगों के अशुभ होने के विषय में।

भट्टिल इन दोनों योगों में से प्रत्येक का सारा दिन अशुभ समझता है, परन्तु वराहमिहिर उनकी केवल उसी संस्थिति को अशुभ समझता है जो परिसंख्यान से निकलती है। वह दिन के अशुभ भाग की तुलना विषाक्त बाण से मारे हुए मृग के घाव से करता है। रोग विषाक्त गोली के परिसर से परे नहीं जाता; यदि इसको काट दिया जाय तो पीड़ा दूर हो जाती है।

जो कुछ पुलिस पराशर के विषय में कहता है उसके अनुसार, हिन्दू नक्षत्रों में व्यतीपातों की एक संख्या मान लेते हैं, परन्तु उन सबका परिसंख्यान उसी रीति से किया जाता है जो उसने दी है। गणना अपने प्रकार में नहीं बढ़ती। इसलिए केवल इसके अकेले-अकेले नमूने ही अधिक बहुसंख्यक हो जाते हैं।

अशुभ-कालों पर भट्टिल (?) का अवतरण

ब्रह्मा भट्टिल (?) अपने ज्योतिष-ग्रन्थ में कहता है—

"यहाँ ८ समय हैं, जिनके मापने के मान नियत हैं। यदि सूर्य और चन्द्र के स्फुट स्थानों का योग उनके बराबर हो, तो वे अशुभ हैं। वे ये हैं—

"१ वक्र-षूत (?)। इसका मापन-मान ४ राशियाँ हैं।

"२. गण्डान्त। इसका मापन-मान ४ राशियाँ और $१३\frac{१}{२}$ अंश है।

"३. लाट (?), या साधारण व्यतीपात। इसका मापन-मान ६ राशियाँ हैं।

"४. चास (?) इसका मापन-मान ६ राशियाँ और $६\frac{२}{३}$ अंश है।

"५. वर्ह (?), जो बर्ह व्यतीपात भी कहलाता है। इसका मापन-मान ७ राशियाँ और $१६\frac{२}{३}$ अंश है।

"६. कालदण्ड। इसका मापन-मान ८ राशियाँ और $१३\frac{१}{३}$ अंश है।

"७. व्याघात (?) इसका मापन-मान ९ राशियाँ और $२३\frac{१}{३}$ अंश है।

"८. वैधृत। इसका मापन-मान १२ राशियाँ है।"

ये योग विख्यात हैं, परन्तु जिस प्रकार ३ रे और ८ वें का किसी नियम तक पता लगाया जा सकता है वैसे इन सब का नहीं लगाया जा सकता। इसलिए गिरते हुए की कलाओं द्वारा निश्चित उनकी कोई संस्थिति नहीं, केवल साधारण कूत द्वारा ही है। वराहमिहिर के कथन के अनुसार, इस प्रकार व्याघात (?) की और बचूत (?) की संस्थिति एक मुहूर्त्त है। गण्डान्त की और बर्ह (?) की संस्थिति दो मुहूर्त्त है।

हिन्दू इस विषय का बहुत लम्बा और बहुत विस्तार के साथ प्रतिपादन करते हैं, परन्तु बिलकुल व्यर्थ। हमने इसका वृत्तान्त उपर्युक्त पुस्तक में दिया है।

करण-तिलक के अनुसार सत्ताईस योग। पृष्ठ २०१

ज्योतिष-ग्रन्थ करण-तिलक सत्ताईस योगों का उल्लेख करता है, जिनका परिसंख्यान आगे लिखे ढङ्ग से किया जाता है—

सूर्य का स्फुट स्थान चन्द्र के स्फुट स्थान में जोड़ो, सारे जोड़ की कलाएँ बनाओ और इस संख्या को ८०० पर भाग दो। भाग-फल पूर्ण योगों को दिखलाता है। अवशेष को ६० से गुणा करो, और गुणन-फल को सूर्य और चन्द्र की भुक्तियों के योग पर भाग दो। भाग-फल दिनों की कलाओं और क्षुद्रतर भग्नांशों को दिखलाता है, अर्थात् वर्तमान योग का वह समय जो बीत चुका है।

हमने योगों के नाम और गुण श्रीपाल से नक़ल किये हैं। और उनको आगे लिखी तालिका में दिखलाते हैं—

सत्ताईस "योगों" की सूची

संख्या	उनके नाम	अच्छे हैं या बुरे	संख्या	उनके नाम	अच्छे हैं या बुरे	संख्या	उनके नाम	अच्छे हैं या बुरे
१	विष्कम्भ	अच्छा	१०	गण्ड	बुरा	१९	परिघ	बुरा
२	प्रीति	अच्छा	११	वृद्धि	अच्छा	२०	शिव	अच्छा
३	राजकम(?)	बुरा	१२	ध्रुव	अच्छा	२१	सिद्ध	अच्छा
४	सौभाग्य	अच्छा	१३	व्याघात(?)	बुरा	२२	साध्य	मध्यम
५	शोभन	अच्छा	१४	हर्षण	अच्छा	२३	शुभ	अच्छा
६	अतिगण्ड	बुरा	१५	वज्र	बुरा	२४	शुक्र	अच्छा
७	सुकर्मन्	अच्छा	१६	सिद्धि	अच्छा	२५	ब्रह्मा	अच्छा
८	धृति	अच्छा	१७	क-न-न-आत(?)	बुरा	२६	इन्द्र	अच्छा
९	शूल	बुरा	१८	वरीयस	बुरा	२७	वैधृत	बुरा

अस्सीवाँ परिच्छेद

——:※:——

हिन्दुओं के फलित-ज्योतिष के प्रास्ताविक नियमों पर, और मुहूर्त्त ज्योतिष-सम्बन्धी गणनाओं के विषय में उनकी रीतियों का संक्षिप्त वर्णन।

इन (मुसलिम) देशों में हमारे धर्म-भाई फलित-ज्योतिष की हिन्दू-रीतियों से परिचित नहीं, और उन्हें इस विषय पर किसी भारतीय पुस्तक के अध्ययन का कभी अवसर नहीं मिला। अतएव, वे हिन्दुओं के मुहूर्त्त-ज्योतिष को अपने ज्योतिष जैसा ही समझते हैं। जिन बातों का हमने स्वयं हिन्दुओं में चिह्न मात्र भी नहीं पाया, वे उनको भारतीय मूल के रूप में सुनाते हैं। क्योंकि अपनी इस पुस्तक के पूर्वभाग में हमने प्रत्येक चीज़ का कुछ न कुछ दिया है, इसलिए हम उनके फलित-ज्योतिष के सिद्धान्त का भी उतना कुछ दे देंगे जो पाठकों को उनके साथ इस प्रकार के प्रश्न पर विचार करने में समर्थ कर देगा। यदि हम इसका सर्वाङ्गपूर्ण वर्णन देने लगें, तो यह काम हमें बहुत देर तक रोक रक्खेगा, चाहे हम सब विस्तारों को छोड़कर केवल मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन करने तक ही अपने को परिमित रक्खें।

भारतीय फलित-ज्योतिष मुसलमानों को अज्ञात है।

पृष्ठ ३०२

पहले, पाठकों को जानना चाहिए कि अपने अधिकांश पूर्वचिह्नों में वे केवल पक्षियों की उड़ान से शकुन लेने और मुख-सामुद्रिक जैसे साधनों के ही भरोसे रहते हैं, और वे इस पार्थिव जगत् के व्यवहारों के विषय में—जैसा कि उन्हें करना चाहिए—तारों के विपलों (मूल पुस्तक में ऐसा ही है) से सिद्धान्त नहीं निकालते। ये तारे दिव्य मण्डल की परिणति हैं।

ग्रहों की संख्या सात के विषय में हमारे और हिन्दुओं के बीच कोई भेद नहीं। वे उनको ग्रह कहते हैं। उनमें से कुछ सदा शुभ हैं, अर्थात् बृहस्पति, शुक्र, और चन्द्रमा। ये सौम्य ग्रह कहलाते हैं।

ग्रहों पर

दूसरे तीन सदा अशुभ हैं, अर्थात् शनि, मङ्गल, और सूर्य। ये क्रूर ग्रह कहलाते हैं। क्रूर ग्रहों में वे राहु को भी गिन लेते हैं, यद्यपि वास्तव में यह तारा नहीं। एक ग्रह ऐसा है जिस का स्वभाव परिवर्तनीय है और उस ग्रह के स्वभाव पर अवलम्बित है जिसके साथ कि यह संयुक्त है, चाहे यह शुभ हो या अशुभ। यह बुध है। किन्तु, अकेला होने पर, यह शुभ है।

आगे दी हुई तालिका सात ग्रहों के स्वभावों और उनके सम्बन्ध में प्रत्येक बात को दिखलाती है—

ग्रहों के नाम ।	सूर्य्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
वे शुभ हैं या अशुभ	अशुभ	शुभ, परन्तु अपने निकट-वर्ती ग्रह पर अवलम्बित । मास के पहले दस दिनों में मध्यम, दूसरे दिनों में शुभ, और अन्तिम दस दिनों में अशुभ ।	अशुभ	जब अकेला हो, तब शुभ । अन्यथा अपने निकटवर्ती ग्रह के स्वभाव पर अवलम्बित ।	शुभ	शुभ	अशुभ
वे किन तत्त्वों को दिखलाते हैं ।	...	...	अग्नि	पृथ्वी	आकाश	जल	वायु
वे नर प्राणियों को दिखलाते हैं या	नर	नारी	नर	न नर, न नारी	नर	नारी	न नर, न नारी ।

नाड़ी प्राणियों को।							
वे दिन का दिखलाते हैं या रात को	दिन	रात	रात	दिन और रात इकट्ठे।	दिन	दिन	रात
वे दिङ्मण्डल की किस दिशा को दिखलाते हैं।	पूर्व	उत्तर-पश्चिम	दक्षिण	उत्तर	उत्तर-पूर्व	पूर्व और पश्चिम के बीच	पश्चिम
वे किस रङ्ग को दिखलाते हैं।	गेहुँआ रङ्ग	श्वेत	हलका लाल	पिस्तई हरा	स्वर्ण-रङ्ग	अनेक रङ्ग	काला
वे कौन सा समय दिखलाते हैं।	अयन	मुहूर्त्त	दिन	ऋतु, अर्थात् वर्ष का छठवाँ भाग।	मास	पक्ष, अर्थात् आधा मास	वर्ष
वे किस ऋतु को दिखलाते हैं।	०	वर्षा	ग्रीष्म	शरद्	हेमन्त	वसन्त	शिशिर
वे किस स्वाद को दिखलाते हैं।	कड़वा	नमकीन	...	सब स्वादों का मिश्रण।	मीठा	...	...

ग्रहों के नाम	सूर्य्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
किस सामग्री को वे दिखलाते हैं।	काँसी	स्फटिक	स्वर्ण	छोटे मोती	चाँदी, या यदि तारा-मण्डल बहुत प्रबल हो, तो सोना।	मोती	लोहा
कैसा वेष और वस्त्र वे दिखलाते हैं।	मोटा	नया	जला हुआ।	पानी से भीगा हुआ।	नये और पुराने के बीच	सारा	जला हुआ।
किस देवता को वे दिखलाते हैं।	नेम (?)	अम्बु, पानी।	अग्नि, आग।	ब्रह्मा	महादेव	इन्द्र	...
वे किस वर्ण को दिखलाते हैं।	क्षत्रिय और आज्ञापक।	वैश्य और नायक।	क्षत्रिय और सेनानी।	शूद्र और राजा	ब्राह्मण और मन्त्री।	ब्राह्मण और मन्त्री।	...
वे कौन से वेद को दिखलाते हैं।	०	०	सामवेद	अथर्वणवेद	ऋग्वेद	यजुर्वेद	०
गर्भ के मास।	चौथा मास, जिसमें	पाँचवाँ मास, जिसमें त्वचा	दूसरा मास, जिसमें भ्रूण	सातवाँ मास, जिसमें बच्चा पूर्ण	तीसरा मास जिसमें अव-	पहला मास, जिसमें वीर्य	छठवाँ मास, जब बाल

	हड्डियाँ कड़ी बनती हैं।	प्रकट होती हैं।	को दृढिमा प्राप्त होती है	हो जाता है, और उसको स्मृति मिलती है	थव फैलना आरम्भ करते हैं।	उगते और रजका मिश्रण होता है।	उगते हैं।
तीन आदि शक्तियों पर आश्रित शील।	सत्य	सत्य	तमस्	रजस्	सत्य	रजस्	तमस्
मित्र, अर्थात् सुहृद ग्रह।	बृहस्पति, मङ्गल, चन्द्रमा।	सूर्य, बृहस्पति।	बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा	सूर्य, शुक्र।	सूर्य, चन्द्र, मङ्गल।	शनि, बुध।	शुक्र, बुध।
शत्रु, अर्थात् वैरी ग्रह।	शनि, शुक्र।	इसका वैरी कोई ग्रह नहीं।	बुध	चन्द्रमा	शुक्र, बुध।	सूर्य, चन्द्र।	मङ्गल, सूर्य, चन्द्रमा।
विमिश्र, अर्थात् समदर्शी ग्रह।	बुध	शनि, बृहस्पति, मङ्गल, शुक्र।	शुक्र, शनि।	शनि, बृहस्पति, मङ्गल।	शनि	बृहस्पति, मङ्गल।	बृहस्पति।
शरीर के किन अंगों को वे दिखलाते हैं।	श्वास और अस्थियाँ।	जिह्वा-मूल और रक्त।	मांस और मस्तिष्क।	वाणी और त्वचा।	बुद्धि और मेद।	वीर्य्य	स्नायु, मांस और पीड़ा।
उनके परिमाण का अनुक्रम।	१	२	६	५	४	२५ (!)	७
षडाय के वर्ष।	१६	२५	१५	१२	१५	२१	२०
नैसर्गिक के वर्ष।	२०	१	२	६	१८	२०	५०

इस तालिका का जो स्तम्भ ग्रहों के परिमाण और शक्ति के क्रम को दिखलाता है, वह आगे लिखे काम देता है—कभी-कभी दो

पूर्ववर्ती तालिका पर व्याख्यात्मक टिप्पणी।

ग्रह ठीक एक ही चीज़ को दिखलाते, एक ही प्रभाव डालते, और प्रस्तुत वृत्त से एक ही सम्बन्ध रखते हैं। इस अवस्था में उस ग्रह को अच्छा समझा जाता है जो, प्रस्तुत स्तम्भ में, दोनों में से बड़ा या अधिक बलवान् बताया गया है।

गर्भ के मासों से संबंध रखनेवाले स्तम्भ को इस टिप्पणी से पूर्ण कर दिया जाता है कि वे आठवें मास को जन्मपत्रिका के

गर्भ के मास;

प्रभावाधीन समझते हैं जिससे गर्भपात हो जाता है। उनके अनुसार, भ्रूण, इस मास में, भोजन के सूक्ष्म सारों को ग्रहण करता है। यदि उसका जन्म उन सबको ग्रहण करने के पश्चात् होता है, तो वह जीवित रहता है, परन्तु यदि वह उसके पूर्व ही जन्म ले लेता है, तो वह अपनी बनावट में किसी कमी के कारण मर जाता है। नवाँ मास चन्द्रमा के प्रभाव के अधीन, और दसवाँ सूर्य के प्रभाव के अधीन होता है। वे गर्भ की इससे अधिक लम्बी संस्थिति की बात नहीं करते, परन्तु यदि वह दैवयोग से इससे लम्बी हो जाय, तो उनका विश्वास है कि, इस काल में, वायु द्वारा कोई अपक्रिया होती है। गर्भपात की जन्मपत्रिका के समय, जिसका निश्चय वे गणना द्वारा नहीं, ऐतिह्य द्वारा

पृष्ठ ३०४

करते हैं, वे ग्रहों की दशाओं और प्रभावों का पर्यवेक्षण करते और जैसे यह या वह ग्रह दैवयोग से प्रस्तुत मास का अधिष्ठाता हो उसके अनुसार वे अपनी व्यवस्था देते हैं।

ग्रहों के एक दूसरे से मैत्र्य और शत्रुता, तथा भवन-स्वामी के

प्रभाव का प्रश्न, उनकी फलित ज्योतिष में बड़े महत्व का है। कभी कभी ऐसा हो सकता है कि, समय के किसी विशेष निमेष में, यह स्वामित्व अपने मूल गुण को सर्वथा खो बैठे। आगे चलकर हम ग्रहों और उसके अकेले-अकेले वर्षों के परिसंख्यान के संबंध में एक स्वामित्व नियम देंगे।

ग्रहों की मित्रता और शत्रुता।

न तो क्रान्तिमण्डल की राशियों की संख्या के रूप में संख्या बारह के विषय में, और न उस रीति के विषय में जिसमें ग्रहों का स्वामित्व उन पर बाँटा गया है, हममें और हिन्दुओं में कोई भेद है।

राशियाँ।

समग्र रूप से प्रत्येक राशि के विशेष गुण क्या-क्या हैं, यह आगे लिखी तालिका दिखलाती है—

राशियाँ	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
उनके स्वामी	मंगल	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	मंगल	बृहस्पति	शनि	शनि	बृहस्पति
ऊँचाई { अंश	१०	३	०	०	०	१५	२०	०	०	२८	०	२७
ऊँचाई { ऊँचाई	सूर्य	चन्द्र	०	बृहस्पति	०	बुध	शनि	०	०	मंगल	०	शुक्र
मूलत्रिकोण के स्वामी।	मंगल	चन्द्र	०	०	सूर्य	बुध	शुक्र	०	बृहस्पति	०	शनि	०
नर या नारी।	नर	नारी	नर	नारी	नर	नारी	नर	नारी	नर	नारी	नर	नारी
शुभ है या अशुभ।	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ
रंग।	कुछ रक्त वर्ण	श्वेत	हरा	कुछ पीत वर्ण	धूसर	अनेक रंगों का	काला	सुनहला	..	काली और सफ़ेद धारियों वाला।	भूरा	धूलि के वर्ण का।
दिशाएँ।	शुद्ध पूर्व।	दक्षिण-दक्षिण-पूर्व	पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम।	उत्तर-उत्तर-पश्चिम	पूर्व-उत्तर पूर्व	ठीक दक्षिण	ठीक पश्चिम	ठीक उत्तर	पूर्व-दक्षिण-पूर्व।	दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम।	पश्चिम-उत्तर-पश्चिम	उत्तर-उत्तर-पूर्व।
किस रीति से वे उदय होते हैं।	भूमि पर फैला हुआ।	भूमि पर फैला हुआ।	पार्श्व पर लेटा हुआ।	भूमि पर लेटा हुआ।	सीधा खड़ा।	सीधा खड़ा।	सीधा खड़ा।	सीधा खड़ा।	भूमि पर लेटा हुआ।	भूमि पर लेटा हुआ।	सीधा खड़ा।	सीधा खड़ा।

घूमते हैं, स्थिर हैं या दुहरे शरीरवाले हैं।	घूमता हुआ।	ठहरा हुआ।	एक साथ घूमता और ठहरता हुआ।	घूमता हुआ।	ठहरा हुआ।	एक साथ घूमता और ठहरता हुआ।	घूमता हुआ।	ठहरा हुआ।	एक साथ घूमता और ठहरा हुआ।	घूमता हुआ।	ठहरा हुआ।	एक साथ घूमता और ठहरा हुआ।
कुछ लोगों के मतानुसार, रात को या दिन में।	रात को	रात को	रात को	रात को	दिन में	दिन में	दिन में	दिन में	रात को	रात को	दिन में	दिन में
शरीर के किन अंगों को दिखलाते हैं।	सिर	मुख	कंधे और हाथ।	छाती	पेट	चूतड़	नाभि के नीचे	नर और नारी की जननेन्द्रियाँ।	कटि	घुटने	पिण्डलियाँ।	दो पैर
ऋतुएँ उनके आकार	वसन्त मेंढा	ग्रीष्म बैल	ग्रीष्म हाथ में वीणा और गदा लिये हुए एक मनुष्य।	वर्षा केकड़ा	वर्षा सिंह	शरद् हाथ में अनाज की एक बाल लिये एक लड़की।	शरद् तराजू।	हेमन्त एक बिच्छू।	हेमन्त एक घोड़ा जिसका सिर और ऊपर का अर्धभाग मनुष्य का है।	शिशिर बकरी के सिर-वाला एक प्राणी। इसके आकार में जल बहुत है।	शिशिर एक प्रकार की नाव या बजरा।	वसन्त दो मछलियाँ।

राशियाँ	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
वे किस प्रकार के प्राणी हैं।	चतुष्पद	चतुष्पद	मानवीय द्विपद	उभचर	चतुष्पद	द्विपद	द्विपद	उभचर	ऊपर का आधा भाग द्विपद, निचला आधा भाग चतुष्पद।	पहला आधा एक द्विपद, पिछला आधा जलमय।	पहला आधा एक द्विपद, दूसरा आधा जलमय, या सारा एक मनुष्य।	जलमय।
भिन्न भिन्न प्रकारों के अनुसार उनके प्रबलतम प्रभाव के समय।	रात को।	रात को।	दिन में।	संधि में।	रात को।	दिन में।	दिन में।	संधि में।	मानुषी भाग दिन में, दूसरा रात को।	संधि में।	मानुषी भाग दिन में, दूसरा रात को।	संधि में।

ग्रह की उच्चता या ऊँचाई, भारतीय भाषा में, उच्चस्थ, और इसका विशेष अंश परमोच्चस्थ कहलाता है। ग्रह की गहराई या नीच स्थान नीचस्थ, और इसका विशेष अंश परमनीचस्थ कहलाता है। मूल त्रिकोण एक प्रबल प्रभाव है, जो किसी ग्रह के साथ आरोपित किया जाता है, जब वह अपने दो घरों में से एक में हर्ष में होता है।

फलित-ज्योतिष की कुछ परिभाषाओं की व्याख्या।

जैसे हमारी रीति है, वैसे वे त्रिकोण दृष्टि का संबंध तत्वों और प्रारम्भिक स्वभावों के साथ नहीं करते, पर-तु वे, जैसा कि तालिका में अलग अलग दिखलाया गया है, उनका लगाव प्रायः दिङ्मण्डल की दिशाओं के साथ करते हैं।

वे घूमती हुई राशि को चरराशि, अर्थात् चलती हुई, खड़ी को स्थिरराशि, अर्थात् ठहरी हुई, और दुहरे शरीरवाली को द्विस्वभाव, अर्थात् दोनों इकट्ठी कहते हैं।

क्योंकि हमने राशियों की तालिका दी है, इसलिए आगे हम भवनों की एक तालिका देते हैं, जिसमें उनमें से प्रत्येक के गुण दिखलाये गये हैं।

भवन।

उनमें से आधे जो पृथ्वी से ऊपर हैं छत्र, अर्थात् छोटे छाते कहलाते हैं, और पृथ्वी के नीचे के आधों को वे नौ, अर्थात् जहाज़ कहते हैं। फिर, वे उन आधों को जो ऊपर को चढ़ते हुए आकाश के मध्य में जाते हैं और दूसरे आधों को जो नीचे उतरते हुए पृथ्वी की चूल तक जाते हैं, धनु, अर्थात् धनुष कहते हैं। चूलों को वे केन्द्र, अगले भवनों को पणफर, और झुके हुए भवनों को आपोक्लिम कहते हैं—

पृष्ठ ३०६

भवन।	वे क्या दिखलाते हैं।	लग्न को आधार मानकर दृष्टियों पर।	कौन सी राशियाँ उनमें सबसे अधिक प्रभाव डालती हैं।	कौन से ग्रह उनमें सबसे अधिक प्रभाव डालते हैं।	भवन के अशुभ वर्षों में से कितना घटाना है।	भवन के शुभ वर्षों में से कितना घटाना है।	दिङ्मण्डल के अनुसार वे किस प्रकार बँटे हुए हैं।	मध्याह्न की छाया के अनुसार, वे किन श्रेणियों में विभक्त हैं।
लग्न	सिर और आत्मा।	गणना के लिए आधार।	मानुषी राशियाँ	बुध और बृहस्पति।	०	०		
२	मुख और सम्पत्ति।	दोनों लग्न की दृष्टि में हैं।	०	०	०	०		
३	दोनों बाँहें और भाई।	लग्न इसकी ओर देखता है परन्तु यह लग्न की ओर नहीं देखता।	०	०	०	०		चढ़ता हुआ भाग।
४	हृदय, माता-पिता, मित्र, घर और उल्लास।	दोनों लग्न की दृष्टि में हैं।	जलमय राशियाँ	शुक्र और चन्द्र।	०	०	नौ	
५	पेट, बच्चा और कौशल।	दोनों लग्न की दृष्टि में हैं।	०	०	०	०		
६	दो पार्श्व, शत्रु और सवारी के जन्तु।	यह लग्न की ओर देखता है, परन्तु लग्न इसकी ओर नहीं देखता।	०	०	०	०		

भवन।	वे क्या दिखलाते हैं।	लग्न को आधार मानकर दृष्टियों पर।	कौन-सी राशियाँ उनमें सबसे अधिक प्रभाव डालती हैं।	कौन से ग्रह उनमें सबसे अधिक प्रभाव डालते हैं।	भवन के अशुभ वर्षों में से कितना घटाना है।	भवन के शुभ वर्षों में से कितना घटाना है।	दिङ्मण्डल के अनुसार वे किस प्रकार बँटे हुए हैं।	मध्याह्न की छाया के अनुसार, वे किन श्रेणियों में विभक्त हैं।
७	नाभि के नीचे और स्त्रियाँ।	दोनों लग्न की दृष्टि में हैं।	...	शनि	उनका १/६	उनका १/१२	छत्र	उतरता हुआ धनु।
८	प्रत्यागमन और मृत्यु।	यह लग्न की ओर देखता है, परन्तु लग्न इस की ओर नहीं देखता।	...	०	१/५	१/१०		
९	दो नितम्ब, यात्रा और ऋण।	दोनों लग्न की दृष्टि में हैं।	...	०	१/४	१/८		
१०	दोनों घुटने और क्रिया।	दोनों लग्न की दृष्टि में हैं।	चतुष्पद।	मङ्गल।	१/३	१/६		
११	दोनों पिण्डलियाँ और आय।	यह लग्न की ओर देखता है परन्तु लग्न इस की ओर नहीं देखता।	०	०	१/२	१/४	छत्र	चढ़ता हुआ धनु।
१२	दोनों पैर और व्यय।	दोनों लग्न की दृष्टि में नहीं हैं।	०	०	संपूर्ण	१/१२		

अब तक जिन ब्योरों का उल्लेख हुआ है वे वास्तव में हिन्दू फलित-ज्योतिष की प्रधान बातें हैं, अर्थात् ग्रह, राशियाँ, और भवन। इनमें से प्रत्येक का क्या अर्थ है और उससे क्या शकुन निकलता है, जो यह मालूम करना जानता है, वह एक चतुर पारदर्शी की और इस विद्या में पारंगत की उपाधि का अधिकारी है।

पृष्ठ ३०७

इसके आगे राशियों की क्षुद्रतर भागों में बाँट आती है, पहले नीमत्रहरों में, जो होरा, अर्थात् घण्टे कहलाते हैं; क्योंकि आधी राशि लगभग एक घंटे के समय में उदय होती है। प्रत्येक नर राशि का पूर्वार्द्ध, सूर्य के प्रभावाधीन होने से, अशुभ है, क्योंकि वह नर-प्राणी उत्पन्न करता है; और उत्तरार्द्ध, चन्द्रमा के प्रभावाधीन होने से, शुभ है, क्योंकि वह नारी-प्राणी उत्पन्न करता है। इसके विपरीत, नारी राशियों में पूर्वार्द्ध शुभ होता है, और उत्तरार्द्ध अशुभ।

एक राशि के नीम-वहरों में विभाग पर।

फिर, द्रेक्काण नाम के त्रिभुज हैं। उनकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे हमारी पद्धति के नाम-मात्र द्रैजानात से अभिन्न मात्र हैं।

२. द्रेक्काणों में।

फिर, नुहवहरात (फ़ारसी, "नौ भाग"), जो नवांशक कहलाते हैं। क्योंकि फलित-ज्योतिष की विद्या की प्रस्तावना की हमारी पुस्तकें उनके दो प्रकारों का उल्लेख करती हैं, इसलिए हम यहाँ भारत-प्रेमियों की जानकारी के लिए उनके विषय में हिन्दू कल्पना की व्याख्या करते हैं। तुम राशि के ०° और उस कला के बीच के अन्तर की, जिसका नुहवहर तुम मालूम करना चाहते हो, कलाएँ बनाते हो, और उस संख्या को २०० पर भाग देते हो। भाग-फल चरराशि से आरम्भ करके,

२. नुहवहरों में।

जो प्रस्तुत राशि के त्रिकोण में है, पूर्ण नुहबहरों या नवांशों को दिखलाता है; तुम क्रमागत राशियों पर संख्या गिन लेते हो, जिनसे एक राशि एक नुहबहर के अनुरूप होती है। जो राशि नवांशों में से उस अन्तिम के अनुरूप है जो तुम्हारे पास है वह उस नुहबहर की स्वामी है जिसको हम मालूम करना चाहते हैं।

प्रत्येक चरराशि का पहला नुहबहर, प्रत्येक स्थिरराशि का पाँचवाँ, और प्रत्येक द्विस्वभाव का नवाँ वर्गोत्तम, अर्थात् महत्तम भाग कहलाता है।

फिर, बारहवें भाग, जो बारह शासक कहलाते हैं, राशि के भीतर किसी नियत स्थान के लिए इस रीति से मालूम किये जाते हैं—राशि के ०′ और प्रस्तुत स्थान के बीच के अन्तर की कलाएँ बनाओ, और उस संख्या को १५० पर भाग दो। भाग-फल पूर्ण बारहवें भागों को दिखलाता है, जिनको तुम, प्रस्तुत राशि से आरम्भ करके, अगली राशियों पर गिन लेते हो, जिससे एक बारहवाँ भाग एक राशि के अनुरूप होता है। उस राशि का स्वामी, जिसके अनुरूप कि अन्तिम बारहवाँ भाग है, साथ ही प्रस्तुत स्थान के बारहवें भाग का स्वामी है।

४. बारहवें भागों में।

इसके अतिरिक्त, त्रिंशांशक नाम के अंश, अर्थात् तीस अंश, जो हमारी सीमाओं के समान हैं। उनका क्रम यह है, प्रत्येक नर राशि के पहले पाँच अंश मङ्गल के, उनसे अगले पाँच शनि के, उनसे अगले आठ बृहस्पति के, उनसे अगले सात बुध के, और अन्तिम पाँच शुक्र के हैं। नारी राशियों में क्रम ठीक इसके विपरीत हो जाता है, अर्थात् पहले पाँच अंश शुक्र के, अगले सात बुध के, अगले आठ बृहस्पति के, अगले पाँच शनि के, और अन्तिम पाँच बुध के हैं।

५. ३० अंशों में।

ये वे मूल तत्त्व हैं जिन पर प्रत्येक फलित-ज्योतिष-संबंधी गणना अवलम्बित है।

प्रत्येक राशि की दशा का स्वभाव उस लग्न के स्वभाव पर अवलम्बित है जो किसी दिये हुए समय में दिङ्मण्डल पर उदय होता है। दृष्टियों के विषय में उनका नियम यह है—एक राशि दो राशियों, एक उससे बिलकुल पहली और दूसरी उससे बिलकुल अगली, को नहीं देखती, अर्थात् उन पर उसकी दृष्टि नहीं पड़ती। इसके विपरीत, राशियों का प्रत्येक ऐसा जोड़ा, जिनके आरम्भ एक दूसरे से वृत्त की एक चौथाई, या एक तिहाई, या आधा भाग दूर हैं, एक दूसरे की दृष्टि में ठहरते हैं (अर्थात् एक दूसरे को देख पड़ते हैं)। यदि दो राशियों के बीच का अन्तर वृत्त का छठवाँ अंश हो, तो इस दृष्टि को बनानेवाली राशियों की गिनती उनके मूल क्रम में की जाती है; परन्तु यदि यह अन्तर वृत्त का पाँच-बारहवाँ भाग हो, तो दृष्टि को बनानेवाली राशियों की गिनती विपर्यस्त क्रम से होती है। दृष्टियों (aspects) की विविध मात्राएँ हैं, जैसे—

दृष्टियों के भिन्न-भिन्न प्रकारों पर।

किसी राशि और उससे अगली चौथी या ग्यारहवीं राशि के बीच की दृष्टि दृष्टि का चौथा-भाग है;

किसी राशि और उससे अगली पाँचवीं या नवीं राशि की दृष्टि आधी दृष्टि है;

किसी राशि और उससे अगली छठवीं या दसवीं राशि के बीच की दृष्टि तीन-चौथाई दृष्टि है;

किसी राशि और उससे अगली सातवीं राशि के बीच की दृष्टि पूर्णदृष्टि है।

हिन्दू ऐसे दो ग्रहों के बीच की दृष्टि का उल्लेख नहीं करते जो दोनों एक ही राशि में ठहरे हुए हों।

एक दूसरे के संबंध में विशेष ग्रहोंकी मित्रता और शत्रुता।

एक दूसरे के विषय में अकेले-अकेले ग्रहों की मित्रता और शत्रुता के बीच परिवर्तन के संबंध में, हिन्दुओं के पास यह नियम है—

यदि कोई ग्रह ऐसी राशियों में आ ठहरता है जो, इसके उदय होने के संबंध में, दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं, पहली, दूसरी, तीसरी, और चौथी राशियाँ हैं, तो इसका स्वभाव बदल-कर अच्छा हो जाता है। यदि यह अतीव विरोधी है, तो यह मध्यम हो जाता है; यदि यह मध्यम है, तो यह मित्र हो जाता है; यदि यह मित्र है, तो यह अतीव मित्र बन जाता है। यदि ग्रह दूसरी सब राशियों में आ ठहरता है, तो इसका स्वभाव बदलकर बुरा हो जाता है। यदि आदि में यह मित्र हो, तो यह समवृत्ति बन जाता है; यदि यह समवृत्ति हो, तो यह विरोधी हो जाता है; यदि यह विरोधी हो, तो यह और भी बुरा बन जाता है। ऐसी अवस्थाओं में, ग्रह का स्वभाव वर्तमान समय के लिए नैमित्तिक होता है, जो अपने को उसके मूल स्वभाव के साथ मिला देता है।

पृष्ठ ३०८

प्रत्येक ग्रह की चार शक्तियाँ।

इन बातों की व्याख्या कर चुकने के अनन्तर, अब हम उन चार बलों का उल्लेख करते हैं जो प्रत्येक ग्रह के लिए विशिष्ट हैं—

१. स्वाभाविक शक्ति, जो स्थानबल कहलाती है, जिसका उप-योग ग्रह उस समय करता है, जब वह अपने उन्नतांश, अपने भवन, या अपने मित्र के घर, या अपने भवन के तुहबहर में, या उसके उन्नतांश में, या उसके मूलत्रिकोण, अर्थात् शुभ ग्रहों की पंक्ति में होता है। यह

लघुजातकम्, अ० २, श्लो० ८

बल सूर्य और चन्द्र के लिए उस समय निजी होता है जब वे शुभ राशियों में होते हैं, जैसा कि यह दूसरे ग्रहों के लिए तब निजी होता है, जब वे अशुभ राशियों में होते हैं। विशेषत: यह बल चन्द्रमा के लिए उसके परिवर्तनकाल के पहले तृतीय में स्वाभाविक होता है, जब कि यह प्रत्येक ऐसे ग्रह को सहायता देता है जो वही बल प्राप्त करने के लिए इसके सामने, ठहरा होता है। अन्तत:, यह लग्न के लिए स्वाभाविक है, यदि वह द्विपद को दिखलानेवाली कोई राशि हो।

२. वह शक्ति जो दृष्टिबल, अर्थात् पार्श्विक बल, और दृग्बल भी, कहलाती है, जिसको ग्रह उस समय उपयोग में लाता है जब वह केन्द्र में खड़ा होता है जिसमें कि यह प्रबल होता है, और, कुछ लोगों के मतानुसार, उस समय भी जब वह केन्द्र (कील) के बिलकुल पहले और पीछे दो भवनों में होता है। लग्न के लिए यह, यदि वह द्विपद को दिखलानेवाली राशि हो, तो दिन में, और यदि वह चतुष्पद राशि हो, तो रात को, और दूसरी राशियों की दोनों संधियों (आदि और अन्त में संध्या की अवधियों) में निजी होता है। इसका संबंध विशेष रूप से जन्मपत्रिकाओं के फलित-ज्योतिष से है। फलितज्योतिष के दूसरे भागों में, जैसा कि वे कहते हैं, यह बल दसवीं राशि के लिए, यदि वह चतुष्पद को दिखलाती है, सातवीं राशि के लिए, यदि वह वृश्चिक या कर्क है, और चौथी राशि के लिए, यदि वह कुम्भ या कर्क है, निजी है।

लघुजातकम्, अ० २, श्लो० ११

३. जीतनेवाली शक्ति, जो चेष्टाबल कहलाती है, जिसका प्रयोग ग्रह उस समय करता है जब वह प्रतीप गति में होता है, जब वह छिपाव से निकलकर दृश्य तारे के रूप में चार राशियों के अन्त तक कूच करता है, और जब

लघुजातकम्, अ० २, श्लो० ५

उत्तर में शुक्र के सिवा और किसी ग्रह से इसका मिलाप होता है। क्योंकि शुक्र के लिए दक्षिण वैसा ही है जैसा कि दूसरे ग्रहों के लिए उत्तर। यदि दो (—? वाचनाक्षम) इस (दक्षिण) में ठहरें, तो उनके लिए यह बात विशिष्ट है कि वे, कर्कसंक्रान्ति की ओर चलते हुए, (सूर्य के वार्षिक भ्रमण के) चढ़ते हुए अर्द्ध में ठहरते हैं, और चन्द्रमा विशेष रूप से—सिवा सूर्य के—दूसरे ग्रहों के निकट ठहरता है, जो उसको थोड़ा सा यह बल देते हैं।

फिर, यह बल लग्न के लिए विशिष्ट होता है, यदि उसका स्वामी उसमें हो, यदि दोनों बृहस्पति और बुध को देखते हों, (अर्थात् आमने-सामने हों) यदि लग्न पर अशुभ ग्रहों की दृष्टि न पड़ती हो, और उनमें से कोई भी— सिवा स्वामी के—लग्न में न हो। क्योंकि यदि इसमें कोई अशुभ ग्रह है, तो यह बृहस्पति और बुध की दृष्टि को निर्बल कर देता है, जिससे इस बल में उनका वास उसके प्रभाव को खो बैठता है।

४. चौथी शक्ति कालबल, अर्थात् ऐहिक शक्ति है, जिसका प्रयोग दैनिक ग्रह दिन में, नैश ग्रह रात में करते हैं। यह बुध को इसके परिभ्रमण की सन्धि में विशिष्ट है, जब कि दूसरे कहते हैं कि बुध में यह बल सदा रहता है, क्योंकि उसका दिन और रात दोनों के साथ एक सा संबंध है।

लघुजातकम्, अ० २, श्लो० ६

फिर, यह बल शुभ ग्रहों को शुक्ल पक्ष में, और अशुभ ग्रहों को कृष्ण पक्ष में स्वाभाविक है। लग्न को यह सदा विशिष्ट है।

दूसरे गणक भी जिन अवस्थाओं में इन चार बलों में से कोई एक किसी ग्रह को विशिष्ट होता है, उनमें वर्षों, मासों, दिनों, और घंटों का उल्लेख करते हैं।

अब ये ही बल हैं जिनकी गणना ग्रहों के लिए और लग्न के लिए की जाती है। यदि अनेक ग्रहों में से प्रत्येक में अनेक बल हों, तो प्रबल वह है जिसमें सबसे अधिक हों। यदि दो ग्रहों में बलों की संख्या एक सी हो, तो प्रबलता उसकी है जिसका आयतन बड़ा है। इस प्रकार का आयतन पृष्ठ २७५ की तालिका में नैसर्गिक बल कहलाता है। यह आयतन या बल में ग्रहों का क्रम है।

पृष्ठ ३०१

लघुजातकम्, अ० २, श्लो० ७

मध्यम वर्ष जिनका ग्रहों के लिए परिसंख्यान किया जाता है तीन भिन्न-भिन्न प्रकारों के हैं, जिनमें से दो का परिसंख्यान उन्नतांश से दूरी के अनुसार किया जाता है। पहले और दूसरे प्रकार के मापों को हमने तालिका (पृष्ठ २७५) में दिखलाया है।

जीवन के वर्ष जो अकेले-अकेले ग्रह देते हैं। इन वर्षों के तीन प्रकार।

षडाय और नैसर्गिक उन्नतांश के अंश गिने जाते हैं। जब सूर्य के उपर्युक्त बल चन्द्रमा और लग्न के बलों से पृथक्-पृथक् रूप से अधिक होते हैं, तब पहले प्रकार का परिसंख्यान होता है। यदि चन्द्रमा के बल सूर्य के और लग्न के बलों से बढ़ जाते हैं, तो दूसरे प्रकार का परिसंख्यान किया जाता है।

तीसरा प्रकार अंशाय कहलाता है, और इसका परिसंख्यान तब होता है, जब लग्न के बल सूर्य और चन्द्र के बलों से प्रबल हों।

पहला प्रकार।

प्रत्येक वर्ष के लिए, यदि वह अपने उन्नतांश के अंशों में ठहरा हुआ न हो, पहले प्रकार के वर्षों का परिसंख्यान यह है—

तुम ग्रह के उन्नतांश के अंश से उसकी दूरी लेते हो यदि यह दूरी छः राशियों से अधिक हो, या, जिस अवस्था में यह छः राशियों

से कम हो, इस दूरी और बारह राशियों के बीच का अन्तर लेते हो।

लघुजातकम्, अ० ६, श्लो० १

इस संख्या को, पृष्ठ ८१२ पर की तालिका में दिखलाई, वर्षों की संख्या से गुणा किया जाता है। इस प्रकार राशियों के इकट्ठी होकर मास, अंशों के दिन, कलाओं की दिन-कला हो जाती हैं, और इन मूल्यों को बदल दिया जाता है, प्रत्येक साठ कलाओं को एक दिन में, प्रत्येक तीस दिनों को एक मास में, और प्रत्येक बारह मासों को एक वर्ष में।

लग्न के लिए इन वर्षों का परिसंख्यान यह है—

मेष के ०° से तारे के अंश का अन्तर लो, प्रत्येक राशि के लिए

लघुजातकम्, अ० ६, श्लो० २

एक वर्ष, प्रत्येक २½ अंशों के लिए एक मास, प्रत्येक पाँच कलाओं के लिए एक दिन, प्रत्येक पाँच विपलों के लिए एक दिन-कला।

ग्रहों के लिए दूसरे प्रकार के वर्षों का परिसंख्यान यह है— अभी लिखे नियम के अनुसार ग्रह के भुजांश के अंशों से इसकी

दूसरा प्रकार।

दूरी लो। इस संख्या को तालिका द्वारा दिखलाई गई वर्षों की अनुरूप संख्या से गुणा किया जाता है, और परिसंख्यान का अवशिष्टांश उसी रीति से चलता है जिस तरह कि पहले प्रकार की अवस्था में।

वर्षों के इस प्रकार का परिसंख्यान लग्न के लिए यह है—मेष के ०° से इसके अंश की दूरी लो, प्रत्येक नुहबहर के लिए एक वर्ष; मास और दिन, इत्यादि, उसी रीति से जैसा कि पूर्ववर्ती परिसंख्यान में। जो संख्या तुम्हें प्राप्त होती है उसको १२ पर भाग दिया जाता है, और अवशेष १२ से कम होने के कारण, लग्न के वर्षों की संख्या को दिखलाता है।

तीसरे प्रकार के वर्षों का परिसंख्यान ग्रहों के लिए वही है जो लग्न के लिए है, और दूसरे प्रकार के लग्न के वर्षों के परिसंख्यान के सदृश है। वह यह है—

तीसरा प्रकार।

मेष के ०° से तारे की दूरी लो, प्रत्येक नुहबहर के लिए एक वर्ष, और सारी दूरी को १०८ से गुणा करो। तब राशियाँ इकट्ठी होकर मास, अंश-दिन, कलाएँ दिन-कला बन जाती हैं। छोटे मानों को बड़े मानों में बदल दिया जाता है। वर्षों को १२ पर भाग दिया जाता है, और इस भजन से जो अवशेष प्राप्त होता है वह उन वर्षों की संख्या है जिनको तुम मालूम करना चाहते हो।

इस प्रकार के सभी वर्ष आयुर्दाय के सामान्य नाम से पुकारे जाते हैं। समीकरण होने के पूर्व वे मध्य-माय कहलाते हैं, और इसमें से लाँघ जाने के पश्चात् वे स्फुटाय, अर्थात् संशोधित कहलाते हैं।

लघुजातकम्, अ० ६, श्लो० १

तीनों प्रकारों में लग्न के वर्ष स्फुटाय हैं, जिनको दो प्रकार के वियोजन द्वारा समीकरण का प्रयोजन नहीं, एक तो ईथर में लग्न की स्थिति के अनुसार, और दूसरा दिङ्मण्डल के सम्बन्ध में इसकी स्थिति के अनुसार।

लग्न के दिये हुए जीवन के वर्ष।

तीसरे प्रकार के वर्षों के लिए संयोजन के द्वारा एक समीकरण विशिष्ट है, जो सदा एक ही रीति से चलती है। वह यह है—

जीवन की संस्थिति के लिए विविध परि-संख्यान।

यदि ग्रह अपने विशालतम खण्ड में या अपने भवन, अपने भवन के द्रेक्काण या अपने उन्नतांश के द्रेक्काण में, अपने भवन के नुहबहर या उसके उन्नतांश के नुहबहर में, या, साथ ही, इन स्थितियों में से अधिकांश में एक साथ ठहरे, तो उसके वर्ष वर्षों की मध्यम संख्या से दुगने होंगे। परन्तु यदि ग्रह प्रतीप गति में या अपने उन्नतांश में, या एक

पृष्ठ ३१० साथ दोनों में हो, तो इसके वर्ष वर्षों की मध्यम संख्या से तिगुने हैं।

पहली रीति के अनुसार (देखो पृष्ठ २९२) वियोजन के द्वारा समीकरण के विषय में, हम देखते हैं कि उस ग्रह के वर्ष, जो अपने निम्नांश में है, यदि वे पहले या दूसरे प्रकार के हों, तो घटाकर तिहाई, और यदि वे तीसरे प्रकार के हों, तो आधे कर दिये जाते हैं। ग्रह का अपने विरोधी के घर में होना उसके वर्षों की संख्या को नहीं घटाता।

जिस ग्रह को सूर्य की किरणों ने छिपा लिया है और प्रभाव डालने से रोक दिया है उसके वर्ष तीनों प्रकार के वर्षों की अवस्था में घटाकर आधे कर दिये जाते हैं। केवल शुक्र और शनि ही इसके अपवाद हैं, क्योंकि सूर्य की किरणों के उनको छिपा लेने से किसी प्रकार उनके वर्षों की संख्याएँ नहीं घटतीं।

दूसरी पद्धति के अनुसार वियोजन के द्वारा समीकरण के विषय में, हमने पहले ही तालिका (पृष्ठ २८२-२८३) में बता दिया है कि अशुभ और शुभ तारों में से, जब वे पृथ्वी के ऊपर भवनों में होते हैं, कितना व्यवकलित किया जाता है। यदि दो या अधिक ग्रह एक भवन में एक साथ आ जायँ, तो तुम परीक्षा करो कि उनमें से कौन सा बड़ा और प्रबल है। व्यवकलन प्रबल ग्रह के वर्षों में जोड़ दिया जाता है और अवशेष वैसे का वैसा छोड़ दिया जाता है।

यदि किसी अकेले ग्रह के वर्षों—तीसरे प्रकार के वर्षों—में भिन्न-भिन्न पार्श्वों से दो संयोजन किये जायँ, तो केवल एक ही संयोजन, अर्थात् जो दोनों में से लम्बा है, हिसाब में लिया जाता है। जब दो व्यवकलन करने हों तब भी यही अवस्था होती है। किन्तु, यदि एक संयोजन और एक वियोजन करना हो, तो तुम

एक पहले और दूसरा पीछे करते हो, क्योंकि इस दशा में अनुक्रम भिन्न होता है।

इन रीतियों से वर्ष व्यवस्थित हो जाते हैं, और उनका जोड़ उस मनुष्य के जीवन की संस्थिति है जो प्रस्तुत निक्षेप में उत्पन्न हुआ है।

अब हमारे लिए अवधियों (मूल पुस्तक में ऐसा ही लिखा है) के विषय में हिन्दुओं की रीति की व्याख्या करना शेष है। जीवन उपयुक्त तीन प्रकार के वर्षों में, और जन्म के तत्काल पश्चात् सूर्य और चन्द्र के वर्षों में विभक्त है। वह वर्ष प्रबल है जिसमें सबसे अधिक शक्तियाँ और बल हैं; यदि वे एक दूसरे के बराबर हों, तो उसका प्रभाव अधिक है जिसका अपने स्थान में सबसे बड़ा भाग (मूल में ऐसा ही लिखा है) है, तब उ से अगला, इत्यादि। इन वर्षों का साथी या तो लग्न है या वह ग्रह है जो अनेक शक्तियों और भागों के साथ केन्द्रों में ठहरा हुआ है। अनेक ग्रह एक साथ केन्द्रों में आते हैं, उनके प्रभाव और अन्वय का निश्चय उनकी शक्तियों और अंशों से होता है। उनके पश्चात् वे ग्रह आते हैं जो केन्द्रों के निकट हैं, तब वे जो झुकी हुई राशियों में हैं; उनके क्रम का निश्चय उसी रीति से किया जाता है जिस प्रकार कि पूर्ववर्ती अवस्था में। इस प्रकार यह ज्ञात हो जाता है कि सम्पूर्ण मानुषी जीवन के किस भाग में प्रत्येक अकेले-अकेले ग्रह के वर्ष आते हैं।

जीवन की संस्थिति के परिसंख्यान के अकेले-अकेले तत्त्व।

किन्तु, जीवन के अकेले-अकेले भागों का परिसंख्यान केवल एक ही ग्रह के वर्षों में नहीं, वरन् उन प्रभावों के अनुसार किया जाता है जो साथी तारे, अर्थात् वे तारे जो इसके सामने होते हैं, उस पर डालते हैं। क्योंकि वे उसे अपने शासन में साझी होने और अपने वर्षों के भजन में भाग लेने पर विवश करते हैं। जो

ग्रह उस राशि में पड़ा है, जिसमें कि जीवन के प्रस्तुत भाग पर शासन करनेवाला ग्रह है, वह उससे आधा भाग ले लेता है। जो पाँचवीं और नवीं राशि में पड़ा है, वह उससे तीसरा भाग ले लेता है। जो चौथी और आठवीं राशि में पड़ा है, वह उससे एक चौथाई ले लेता है। जो सातवीं राशि में है, वह उससे सातवाँ भाग ले लेता है। इसलिए यदि अनेक ग्रह एक साथ एक स्थिति में आ जायँ, तो उन सबमें वह भाग सामान्य होता है जिसको प्रस्तुत स्थिति आवश्यक ठहराती है।

ऐसे साहचर्य के वर्षों के परिसंख्यान के लिए (यदि शासक ग्रह की दृष्टि दूसरे ग्रहों पर पड़ती हो) रीति यह है—

वर्षों के स्वामी (अर्थात् वह ग्रह जो मनुष्य के जीवन के किसी विशेष भाग पर शासन करता है) के लिए एक अंश के रूप में और एक हार के रूप में, अर्थात् १, एक पूरा, लो, क्योंकि यह सारे पर शासन करता है। फिर, प्रत्येक साथी (अर्थात् प्रत्येक ग्रह जो पहले को देखता है) के लिए इसके हार का केवल अंश लो (सारा अपूर्णाङ्क नहीं)। तुम प्रत्येक हार को सभी अंशों और उनके योग से गुणा करते हो। इस क्रिया में मूल ग्रह और उसका भग्नांश छोड़ दिये जाते हैं। इससे सभी अपूर्णाङ्कों का एक ही हारकाङ्क बना दिया जाता है। समान हार छोड़ दिया जाता है। प्रत्येक अंश को वर्ष के जोड़ से गुणा किया जाता है और गुणनफल को अंशों के योग पर भाग दिया जाता है। भागफल ग्रह के कालम्बूक (कालभाग ?) वर्षों को दिखलाता है।

एक ग्रह पर दूसरे ग्रह के स्वभाव का प्रभाव कैसे पड़ता है।

ग्रहों के प्रभाव की प्रबलता के प्रश्न का निश्चय हो चुकने के पश्चात्, उनके क्रम के विषय में (? मूल पाठ में गड़बड़ है), जहाँ तक

पृष्ठ ३११

उनमें से प्रत्येक अपना व्यक्तिगत प्रभाव डालता है। जिस प्रकार पहले बताया जा चुका है उसी प्रकार (देखो पृष्ठ २९४), अधिक प्रभावशाली ग्रह वे हैं जो केन्द्रों में पड़े हैं, पहले प्रबलतम, तब उससे कम प्रबल, इत्यादि, तब वे जो केन्द्रों के निकट हैं, और अन्तत: वे जो झुकी हुई राशियों में हैं।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में दिये हुए वर्णन से पाठकों को मालूम हो जाता है कि हिन्दू मानुषी जीवन की संस्थिति का परिसंख्यान कैसे करते हैं।

हिन्दू-गणकों के अन्वेषण की विशेष रीतियाँ।

ग्रहों की स्थितियों से, जिनमें वे उत्पत्ति पर (अर्थात् जन्म के समय) और जीवन के प्रत्येक दिए हुए समय में होते हैं, जाना जाता है कि भिन्न-भिन्न ग्रहों के वर्ष किस रीति से उस पर बँटे हुए हैं। इन चीज़ों के साथ हिन्दू गणक जन्मपत्रिकाओं की फलित-ज्योतिष की विशेष विधियाँ जोड़ देते हैं, जिनको दूसरी जातियाँ हिसाब में नहीं लेतीं। वे, उदाहरणार्थ, यह मालूम करने का यत्न करते हैं, कि क्या, मनुष्य के जन्म के समय, उसका पिता उपस्थित था, और यदि चन्द्रमा पर लग्न की दृष्टि न पड़ती हो, या जिस राशि में चन्द्रमा है वह यदि शुक्र और बुध की राशियों से घिरी हुई हो, या यदि शनि लग्न में हो, या यदि मङ्गल सातवीं राशि में हो, तो वे यह परिणाम निकालते हैं कि वह अनुपस्थित था।

लघुजातकम्, अ० ३, श्लो० ३

अध्याय तीसरा, ४ (?)—फिर, वे सूर्य और चन्द्रमा की परीक्षा करके यह मालूम करने का यत्न करते हैं कि क्या बालक पूर्ण आयु को प्राप्त होगा। यदि सूर्य और चन्द्र एक ही राशि में हों, और उनके साथ एक अशुभ ग्रह हो, या यदि चन्द्र और बृहस्पति लग्न की दृष्टि से अभी ओझल हुए हों या यदि बृहस्पति

कीं दृष्टि संयुक्त सूर्य और चन्द्र पर पड़नी अभी बंद हुई हो, तो बालक पूर्ण आयु तक नहीं जियेगा।

फिर, दीपक की अवस्थाओं के साथ किसी विशेष सम्बन्ध में, वे उस नक्षत्र की परीक्षा करते हैं जिसमें कि सूर्य हो। यदि राशि चर राशि है, तो दीपक का प्रकाश जब इसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है, चलता है। यदि वह स्थिर राशि है, तो दीपक का प्रकाश निश्चल रहता है; और यदि वह राशि द्विस्वभाव है, तो यह एक बार चलता और दूसरी बार निश्चल रहता है।

फिर, वे इस बात की परीक्षा करते हैं कि लग्न के अंशों का ३० के साथ क्या सम्बन्ध है। इसके अनुरूप दीपक की वर्त्ती का वह परिमाण है जो कि जलकर नष्ट हो जाता है। यदि चन्द्रमा पूर्ण चन्द्र हो, तो दीपक तेल से भरा रहता है; दूसरे समयों पर तेल का घटाव या बढ़ाव चन्द्रकला के घटाव और बढ़ाव के अनुरूप होता है।

अध्याय ४, श्लो० ५—केन्द्रों में सबसे अधिक प्रभावशाली ग्रह से वे घर के द्वार के सम्बन्ध में अनुमान निकालते हैं, क्योंकि, इसकी दिशा इस ग्रह की दिशा से या, जिस अवस्था में केन्द्रों में कोई ग्रह न हो, लग्न की राशि की दिशा से अभिन्न होती है।

अध्याय ४, श्लो० ६—फिर, वे इस बात पर विचार करते हैं कि प्रकाश देनेवाला पिण्ड कौन सा है, सूर्य या चन्द्र। यदि वह पिण्ड सूर्य है, तो घर नष्ट हो जायगा। चन्द्र हितकर, मङ्गल दाहक, बुध धनुषाकार, बृहस्पति एकरूप, और शनि वृद्ध है।

अध्याय ४, श्लो० ७—यदि बृहस्पति दसवीं राशि मेंअपने उन्नतांश में हो, तो घर में दो या तीन बग़ल की कोठरियाँ होंगी। यदि धनु में इसका लक्षण प्रबल है, तो घर में तीन पार्श्वगृह होंगे; यदि यह दूसरी द्विस्वभाव राशियों में है, तो घर की बग़ल की कोठरियाँ दो होंगी।

अध्याय ४, श्लो० ८—सिंहासन और इसके पैरों के लिए पूर्व-चिह्न मालूम करने के उद्देश्य से वे तीसरी राशि की, बारहवीं से लेकर तीसरी राशि तक इसके वर्गों और इसकी लम्बाई की परीक्षा करते हैं। यदि इसमें अशुभ ग्रह हों, तो इसका पैर या पार्श्व उस रीति से नष्ट हो जायगा जिस रीति से अशुभ ग्रह भविष्यकथन करता है। यदि यह मङ्गल है, तो यह मुड़ जायगा; यदि यह सूर्य है, तो यह टूट जायगा; और यदि यह शनि है, तो यह बुढ़ापे से नष्ट हो जायगा।

अध्याय ४, श्लो० १०—जो स्त्रियाँ घर में उपस्थित होंगी उनकी संख्या उन तारों की संख्या के अनुरूप होंगी जो लग्न की और चन्द्रमा की राशियों में हैं। उनके गुण इन तारासण्डलों के प्रति-बिम्बों के अनुरूप होते हैं।

इन तारा-मण्डलों के वे तारे, जो पृथ्वी के ऊपर हैं, उन स्त्रियों की ओर सङ्केत करते हैं जो घर से चली जाती हैं, और वे, जो पृथ्वी के नीचे हैं, उन स्त्रियों की भविष्य-वाणी करते हैं जो घर को आयँगी और इसमें प्रवेश करेंगी।

फिर, वे सूर्य या चन्द्र में से प्रबलतर ग्रह के द्रेकाण के पति से मनुष्य में जीवन की आत्मा के आने के विषय में अन्वेषण करते हैं।

लघुजातकम्, अध्याय १२, श्लो० ३, ४

यदि बृहस्पति द्रेकाण हो, तो यह देवलोक से आती है; यदि यह शुक्र या चन्द्र हो, तो आत्मा पितृलोक से आती है, यदि यह मङ्गल या सूर्य हो, तो आत्मा वृश्चिकलोक से आती है; और यदि यह शनि या बुध हो, तो आत्मा भृगुलोक से आती है।

और वे शरीर की मृत्यु के पश्चात् आत्मा के प्रयाण के विषय में अन्वेषण करते हैं, जब यह उस लोक को प्रस्थान करती है जो वैसे ही एक नियम के अनुसार, जो अभी दिया गया है, छठे या

आठवें घरों के द्रेक्काण के स्वामी से प्रबलतर है। किन्तु, यदि बृहस्पति अपने उन्नतांश में, छठे घर में, या आठवें में, या केन्द्रों में से किसी एक में, या यदि लग्न मीन राशि है, और बृहस्पति सब ग्रहों में प्रबलतम है, और यदि मृत्यु के निमेष की राशि वही है जो जन्म के निमेष की है, तो उस अवस्था में आत्मा मुक्त हो जाती है और इधर-उधर भटकती नहीं फिरती।

पृष्ठ २१२

मैं इन बातों का उल्लेख पाठक को हमारे लोगों की और हिन्दुओं की फलित-ज्योतिष-सम्बन्धी रीतियों में भिन्नता दिखलाने के लिए करता हूँ।

आकाश और जगत्-सम्बन्धी चमत्कारों के विषय में उनकी कल्पनाएँ और रीतियाँ बहुत लम्बी और साथ ही बहुत सूक्ष्म हैं।

धूमकेतुओं पर।

जिस प्रकार हमने उनकी जन्म-पत्रिकाओं की फलितज्योतिष में, जीवन की दीर्घता का निश्चय करने की कल्पना का ही वर्णन करने तक अपने को परिमित रक्खा है, उसी प्रकार हम विज्ञान के इस विभाग में, उनमें से उन लोगों के कथनों के अनुसार, जिनके विषय में यह माना गया है कि वे इस विषय को सम्यक् रूप से जानते हैं, अपने को धूमकेतुओं की जातियों तक ही परिमित रक्खेंगे। धूमकेतुओं की उपमिति बाद को अन्य दूरस्थ विषयों तक बढ़ा दी जायगी।

नाग का सिर राहु, पूँछ केतु कहलाती है। हिन्दू पूँछ की बात कचित् ही करते हैं, वे केवल सिर का ही उपयोग करते हैं। बहुत करके सभी धूमकेतु, जो आकाश पर प्रकट होते हैं, केतु भी कहलाते हैं।

वराहमिहिर की संहिता से अवतरण।

वराहमिहर कहता है (अध्याय ३, श्लोक ७—१२)—

"राहु के तेंतीस पुत्र हैं जो तामसकीलक कहलाते हैं। वे भिन्न-भिन्न प्रकार के धूमकेतु हैं। राहु के उनसे दूर चले जाने या न जाने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। उनके पूर्वचिह्न उनके आकारों, रङ्गों, आयतनों और स्थितियों के अनुरूप हैं। श्लोक ८—सबसे बुरे वे हैं जिनका आकार कौए का या सिर-कटे मनुष्य का है। वे जिनका आकार खड्ग, छुरी, धनुष-बाण का है। श्लोक ९,१०—वे सदा सूर्य और चन्द्र के पड़ोस में रहते हैं, और पानी को उकसाकर गाढ़ा, और वायु को उकसाकर चमकता हुआ लाल कर देते हैं। वे पवन में ऐसा तुमुल उत्पन्न करते हैं कि आँधियाँ विशालतम वृक्षों को चीर डालती हैं, और उड़ते हुए कङ्कड़ लोगों की पिंडलियों और घुटनों में लगते हैं। वे समय के स्वरूप को बदल देते हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि ऋतुओं ने अपने स्थान बदल लिये हैं। जब अशुभ और विपज्जनक घटनाएँ बहुसंख्यक हो जाती हैं, जैसा कि भूकम्प, भूमि-स्खलन, जलानेवाली गरमी, आकाश की लाल दहक, वन्य जन्तुओं की अविरत गर्जना और पक्षियों की चिल्लाहट, तब जान लो कि यह सब राहु के पुत्रों से आता है। श्लोक ११—यदि ये घटनाएँ ग्रहण या धूमकेतु की दमक के साथ-साथ घटें, तब जो कुछ तुमने भविष्य-कथन किया है उसको इसमें पहचानो, और राहु के पुत्रों के सिवा और दूसरे प्राणियों से पूर्वलक्षण लेने की चेष्टा न करो। श्लोक १२—विपत्ति के स्थान में उन (धूमकेतुओं) के प्रदेश की ओर, सूर्य के पिण्ड के सम्बन्ध में आठों पार्श्वों की ओर, सङ्केत करो।"

वराहमिहिर-संहिता (अध्याय ११, श्लोक १—७) में कहता है—

"जो कुछ गर्ग, पराशर, असित तथा देवल की पुस्तकों, और दूसरी पुस्तकों में है, चाहे वे पुस्तकें कितनी ही बहुसंख्यक क्यों

न हों, उसका पूर्ण रूप से वर्णन करने के पूर्व मैंने धूमकेतुओं का वर्णन नहीं किया।

"यदि पाठक उनके दर्शन और अदर्शन का ज्ञान पहले से प्राप्त नहीं करता, तो उनके परिसंख्यान का समझना असम्भव है, क्योंकि वे एक प्रकार के नहीं, अनेक प्रकारों के हैं।

"कई पृथ्वी से ऊँचे और दूर हैं, और नक्षत्रों के तारों के बीच प्रकट होते हैं। वे दिव्य कहलाते हैं।

"कई एक की पृथ्वी से मध्यम दूरी है। वे आकाश और पृथ्वी के बीच प्रकट होते हैं। वे आन्तरिक्ष्य कहलाते हैं।

"कई पृथ्वी के निकट हैं, और पृथ्वी पर, पर्वतों, घरों, और वृक्षों पर गिर पड़ते हैं।

"कभी-कभी तुम एक प्रकाश को पृथ्वी पर गिरता देखते हो, जिसको लोग आग समझते हैं। यदि यह आग नहीं, तो यह केतु-रूप, अर्थात् धूमकेतु के आकारवाला, है।

"वे जन्तु जो, वायु में उड़ते समय, चिङ्गारियों के सदृश या उन अग्नियों के सदृश देख पड़ते हैं जो पिशाचों और निशाचरों के घरों में रहती हैं, फुलझड़ियाँ और दूसरी चीज़ें धूमकेतुओं की जाति से नहीं।

"इसलिए, इसके पूर्व कि तुम धूमकेतुओं के पूर्वचिह्न बता सको, तुम्हें उनके स्वरूप का जानना आवश्यक है, क्योंकि पूर्वचिह्न उसके तुल्य होते हैं। ज्योतियों का वह वर्ग जो वायु में है और झण्डों, शस्त्रों, घरों, वृक्षों पर, घोड़ों तथा हाथियों पर, गिरता है, और वह वर्ग जो ऐसे स्वामी से आता है जो नक्षत्रों के तारों में देखा जाता है—यदि चमत्कार का सम्बन्ध इन दो वर्गों में से किसी एक के साथ नहीं और न उपर्युक्त आभासों के साथ है, तो यह भौम केतु है।

पृष्ठ ३१२

श्लोक ५—"धूमकेतुओं की संख्या के विषय में विद्वानों का आपस में मत-भेद है। कुछ के मतानुसार वे १०१, और कुछ के मतानुसार १००० हैं। नारद मुनि के अनुसार, वह एक ही है, जो बहुत से भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होता है, सदा एक रूप को छोड़कर दूसरा रूप को धारण करता है।

"श्लोक ७—उनका प्रभाव उतने मास तक रहता है जितने दिन तक कि उनका दर्शन होता है। यदि धूमकेतु का दर्शन डेढ़ मास से अधिक समय तक रहे, तो इसमें से पैंतालीस दिन निकाल दो। अवशेष इसके प्रभाव के मासों को दिखलाता है। यदि प्रादुर्भाव दो मास से अधिक रहे, तो उस अवस्था में इसके प्रभाव के वर्ष इसके प्रादुर्भाव के मासों की संख्या के बराबर बताओ। धूमकेतुओं की संख्या १००० की संख्या से अधिक नहीं।"

इस विषय के अध्ययन को सुकर बनाने के उद्देश्य से हम आगे लिखी तालिका की बातें देते हैं, यद्यपि हम मानचित्र के सभी अकेले-अकेले क्षेत्रों को भर नहीं सके, क्योंकि पुस्तक के अकेले-अकेले अनुच्छेदों का हस्त-लिखित ऐतिह्य या तो मूल में या जो प्रति हमारे पास है उसमें विकृत है। ग्रन्थकार की इच्छा अपने समाधानों से धूमकेतुओं की उन दो संख्याओं के विषय में जिनका उल्लेख वह प्राचीन विद्वानों के प्रमाण से करता है, उन विद्वानों के सिद्धान्त की पुष्टि करने की है, और वह संख्या १००० को पूरा करने का यत्न करता है।

उनके नाम	उनका वंश	प्रत्येक धूम-केतुमें कितने तारे हैं।	सर्वयोग	उनके गुण	वे किस दिशा से प्रकट होते हैं।	उनके पूर्व चिह्न
...	किरण की सन्तान	२५	२५	स्फटिक के नालों में मोतियों के सदृश या सोने के रंग का।	केवल पूर्व और पश्चिम में।	यह राजाओं के एक दूसरेकेसाथ युद्धहोने का आगम कहता है।
...	अग्नि(?)की सन्तान	२५	५०	हरे या आग के या लाख के, या रक्त के, या वृक्ष की कलियों के रंग का।	दक्षिण-पूर्व।	यह महामारी की भविष्य-वाणी करता है।
...	मृत्यु की सन्तान	२५	७५	टेढ़ी पूँछोंवाले, उनका रंग काले और गहरे की ओर झुका हुआ।	दक्षिण।	यह क्षुधा और महामारी की पूर्व सूचना देता है।
...	पृथ्वी की सन्तान	२२	९७	गोल, देदीप्यमान, पानी या तिल के तेल के रंग के, बिना पूँछों के।	उत्तर-पूर्व।	यह उर्वरता और धन का आगम कहता है।

उनके नाम	उनका वंश	प्रत्येक धूमकेतु में कितने तारे हैं ।	सर्वयोग	उनके गुण	वे किस दिशा से प्रकट होते हैं ।	उनके पूर्व चिह्न
...	चन्द्रमा की सन्तान	२	१००	गुलाब के फूलों, या सफ़ेद कमल, या चाँदी, या साफ़ लोहे या सोने के सदृश यह चाँद की तरह चमकता है	उत्तर	यह ऐसे अनिष्ट की पूर्व-सूचना देता है, जिसके फल से जगत् उलट-पलट हो जायगा ।
ब्रह्मदण्ड	ब्रह्मा का पुत्र	१	१०१	तीन रंगों और तीन पूछोंवाला ।	सभी दिशाओं में ।	यह दुष्टता और विनाश की भविष्य-वाणी करता है ।
...	शुक्र की सन्तान	८४	१८५	सफ़ेद, बड़ा, चमकीला ।	उत्तर और उत्तर-पूर्व ।	यह अनिष्ट और भय का भविष्य-कथन करता है ।
कनक	शनि की सन्तान	...	...	देदीप्यमान, मानो वे चन्द्रशिखाएँ हों ।	सभी दिशाओं में ।	यह दुर्भाग्य और मृत्यु का आगम कहता है ।
विकच	बृहस्पति की सन्तान ।	६५	...	देदीप्यमान, सफ़ेद, पूँछों के बिना ।	दक्षिण ।	यह विनाश और दुर्भाग्य की भविष्यवाणी करता है ।

तस्कर, अर्थात् चोर।	बुध की सन्तान।	५१	...	सफ़ेद, पतले, लम्बे। आँख उनसे चौंधिया जाती है।	सभी दिशाओं में।	यह दुर्भाग्य की सूचना देता है।
कौङ्कुम।	मङ्गल की सन्तान।	६०	...	इसकी तीन पूँछें, और हेम का रंग है।	उत्तर।	यह अनिष्ट की पराकाष्ठा की सूचना देता है
तामस कीलक।	राहु की सन्तान।	३६	...	भिन्न भिन्न आकारों के।	सूर्य और चांद के आस पास।	यह आग की पूर्वसूचना देता है।
विश्वरूप।	अग्नि की सन्तान।	१२०	...	अग्नि-शिखा के सदृश धधकती हुई ज्योति का।	...	यह अनिष्ट का आगम कहता है।
अरुण।	वायु की सन्तान।	७७	...	उनका कोई पिण्ड नहीं कि उनमें तुम किसी तारे को देख सको। केवल उनकी किरणें ही संयुक्त हैं. जिससे ये छोटी-छोटी नदियाँ देख पड़ते हैं। इनका रङ्ग थोड़ा सा लाल या थोड़ा सा हरा है।	...	यह व्यापक विनाश की सूचना देता है।

उनके नाम	उनका वंश	प्रत्येक धूम-केतुमें कितने तारे हैं।	सर्वयोग	उनके गुण	वे किस दिशा से प्रकट होते हैं।	उनके पूर्व चिह्न
गणक।	प्रजापति की सन्तान।	२०४		वर्गाकार धूमकेतु, दर्शन में आठ, और संख्या में ३०४।	...	यह बहुत से अनिष्ट और विनाश की सूचना देता है।
कङ्क।	जल की सन्तान।	३२ ...	...	इसके (?) संयुक्त हैं, और यह चन्द्रमा के सदृश चमक रहा है।	... ...	यह पुण्ड्र में बहुत से त्रास और अनिष्ट की सूचना देता है।
कबंध।	काल की सन्तान।	...		मनुष्य के कटे हुए सिर के सदृश।		यह बहुत से विनाश की सूचना देता है।
...	...	९	...	दर्शन में एक, संख्या में नौ। सफ़ेद, बड़ा।	...	यह महामारी की सूचना देता है।
			...		सभी दिशाओं में।	

ग्रन्थकार (वराहमिहिर) ने धूमकेतुओं को तीन श्रेणियों में बाँटा था। ऊँचे धूमकेतु तारों के निकट; बहते हुए धूमकेतु पृथ्वी के समीप; मध्यम धूमकेतु वायु में, और वह उनकी ऊँची और मध्यम श्रेणियों में से प्रत्येक का हजारी तालिका में अलग-अलग उल्लेख करता है।

पृष्ठ ३१५। वराहमिहिर की संहिता से और अवतरण।

वह और कहता है (अध्याय ११, श्लो० ४२)—

"यदि धूमकेतुओं की मध्यम श्रेणी का प्रकाश राजाओं के यन्त्रों, पताकाओं, छत्रों, पङ्खों और चँवरों पर पड़ता है, तो यह शासकों के विनाश का पूर्व-लक्षण है। यदि यह किसी घर, या वृक्ष, या पर्वत पर चमकता है, तो यह साम्राज्य के विनाश का पूर्व-लक्षण है। यदि यह घर के उपकरण पर चमकता है, तो इसके अधिवासी नष्ट हो जायँगे। यदि यह घर के बुहारे हुए कूड़े-कर्कट पर चमकता है, तो इसका स्वामी नष्ट हो जायगा।"

वराहमिहिर आगे कहता है (अध्याय ११, श्लो० ६)—

"यदि उल्का किसी धूमकेतु की पूँछ के सामने गिरती है, तो स्वास्थ्य और मङ्गल बन्द हो जाता है, मेंह अपने हितकर प्रभाव खो बैठते हैं, और इसी प्रकार वे वृक्ष जो महादेव को पवित्र हैं—उनको गिनने से कुछ लाभ नहीं, क्योंकि उनके नाम और उनके तत्त्व हम मुसलमानों को अज्ञात हैं—और चोलों, सितों, हूणों और चीनियों के राज्य में अवस्थाएँ दुःखित होती हैं।"

वह फिर कहता है (अध्याय ११, श्लो० ६२)—

"धूमकेतु की पूँछ की दिशा की परीक्षा करो, इस बात की कुछ परवा नहीं कि यह पूँछ नीचे को लटकती है या सीधी खड़ी है या झुकी हुई है, और उस नक्षत्र की जाँच करो जिसके किनारे को

यह स्पर्श करता है। उस अवस्था में यह भविष्य-वाणी करो कि वह स्थान नष्ट हो जायगा और उसके अधिवासियों पर सेनाएँ आक्रमण करके उनको इस प्रकार निगल जायँगी जैसे मोर साँपों को निगल जाता है।

"इन धूमकेतुओं में से तुम्हें उनको छोड़ देना चाहिए जो किसी अच्छी बात की सूचना देते हैं।

"दूसरे धूमकेतुओं के विषय में तुम्हें इस बात का निरूपण करना चाहिए कि वे किन नक्षत्रों में प्रकट होते हैं, या किस नक्षत्र में उनकी पूँछें हैं या किस नक्षत्र तक उनकी पूँछें पहुँचती हैं। उस अवस्था में तुम्हें उन देशों के राजाओं के लिए, जिनको प्रस्तुत नक्षत्र दिखलाते हैं, विध्वंस की और उन दूसरी घटनाओं की जिनको कि वे नक्षत्र बतलाते हैं, भविष्य-वाणी करनी चाहिए।"

यहूदियों की धूमकेतुओं के विषय में वही सम्मति है जो हमारी काबा के पत्थर के विषय में है (अर्थात् कि वे सब आकाश से गिरे हुए पत्थर हैं)। वराहमिहिर की उसी पुस्तक के अनुसार, धूमकेतु ऐसे प्राणी हैं जो अपने पुण्यों के कारण स्वर्ग में पहुँचाये गये हैं, जिनकी स्वर्ग में रहने की अवधि समाप्त हो चुकी है और जो तब दुबारा पृथ्वी पर उतर रहे हैं।

आगे लिखी दो तालिकाओं में धूमकेतुओं की हिन्दू-कल्पनाएँ एकत्र कर दी गई हैं—

आकाश (ईथर) में सबसे बड़ी ऊँचाई के धूमकेतुओं की तालिका।

१	वसा।	पश्चिम।	यह दमकता हुआ और घना है, और उत्तर से फैलता है।	यह मृत्यु और अधिक धन और उर्वरता का सूचक है।
२	अस्थि	पश्चिम	पहले की अपेक्षा कम चमकीला।	यह क्षुधा और महामारी का सूचक है।
३	शस्त्र	पश्चिम	पहले के सदृश।	यह राजाओं के परस्पर युद्ध का सूचक है।
४	कपालकेतु	पूर्व	इसकी पूँछ लगभग आकाश के मध्य तक पहुँचती है। इसका धुएँ का रङ्ग है और यह अमावास्या के दिन प्रकट होता है।	यह वर्षा की बहुतायत, प्रचुर क्षुधा, रोग और मृत्यु का सूचक है।
५	रौद्र	पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपदा और रेवती में पूर्व से	तीक्ष्ण धारवाला, किरणों से घिरा हुआ। काँसे के रङ्ग का। यह आकाश का एक तिहाई भाग घेरता है।	यह राजाओं के परस्पर युद्ध की भविष्य-वाणी करता है।

आकाश (ईथर) में सबसे बड़ी उँचाई के धूमकेतुओं की तालिका ।

६	चलकेतु	पश्चिम	अपने प्रथम दर्शन के समय दक्षिण की ओर इसकी पूँछ उँगली के समान लम्बी होती है। तब यह उत्तर की ओर मुड़ता है, यहाँ तक कि यह दक्षिण की ओर लम्बा होकर सप्तर्षि और ध्रुव तक, तब गिरते हुए गरुड़ तक पहुँच जाता है। ऊँचा उठते-उठते यह घूमकर दक्षिण में चला जाता और वहाँ अन्तर्धान हो जाता है।	यह प्रयाग के वृत्त से लेकर उज्जयिनी तक सारे देश का ध्वंस कर देता है। यह मध्य देश का नाश करता है, और दूसरे प्रदेशों की दशा भिन्न-भिन्न होती है। कुछ स्थानों में महामारी, कुछ में अवर्षण, और कुछ में युद्ध होता है। यह १०—१२ मासों के बीच दिखाई देता है।
७	श्वेतकेतु	दक्षिण	यह रात्रि के आरम्भ में प्रकट होता है और सात दिन तक दिखाई देता है। इसकी पूँछ एक तिहाई भाग	जब ये दो धूमकेतु चमकते और प्रकाश देते हैं, तो स्वास्थ्य और सम्पत्ति के सूचक होते हैं।

			पर फैली हुई है। यह हरा है और दाईं ओर से बाईं ओर को जाता है।	यदि उनके दर्शन का समय सात दिन से बढ़ जाय, तो मनुष्यों के कार्यों और जीवनों के दो-तिहाई भाग का नाश हो जाता है, खड्ग खींचा जाता है, राज्य-क्रान्तियाँ फैलती हैं, और दस वर्ष तक विपत्ति रहती है।
८	क	पश्चिम	यह रात्रि के पूर्वार्द्ध में प्रकट होता है, इसकी ज्वाला बिखरे हुए मटरों के सदृश है, और सात दिन तक दिखाई देता रहता है।	
९	रश्मिकेतु ?	कृत्तिका	इसका धुएँ का रङ्ग है।	यह मनुष्य के सब व्यवहारों को नष्ट कर देता और अनेक राष्ट्र-विप्लव पैदा करता है।
१०	ध्रुवकेतु(?)	जहाँ चाहता है वहीं आकाश और पृथ्वी के बीच प्रकट होता है।	इसका पिण्ड बड़ा है, इसके अनेक पार्श्व (?) और वर्ण हैं, और चमकता दमकता है।	यह स्वास्थ्य और शान्ति का सूचक है।

वायु (अन्तरिक्ष) में मध्यम ऊँचाई के धूमकेतुओं की तालिका।

उनकी संख्या	उनके नाम	वे किस दिशा से प्रकट होते हैं।	वर्णन	उनके पूर्वचिह्न
१	कुमुद	पश्चिम	कमल फूल का समनामधारी, जिसकी तुलना इससे की जाती है। यह एक रात रहता है, और इसकी पूँछ दक्षिण की ओर को लक्ष्य करती है।	यह दस वर्ष के लिए स्थायी उर्वरता और सम्पत्ति की भविष्य-वाणी करता है।
२	मणिकेतु	पश्चिम	यह रात का केवल एक चौथाई अंश रहता है। इसकी पूँछ सीधी, सफ़ेद, और उस दूध के सदृश है जो दुहने पर स्तन से बलपूर्वक निकलता है।	यह वन्य जन्तुओं की एक बड़ी संख्या और साढ़े चार मास तक शाश्वत उर्वरता का पूर्व-चिह्न है।

पृष्ठ २१७

३	जलकेतु	पश्चिम	कौंधता हुआ। इसकी पूँछ में पश्चिम की ओर से टेढ़ाई है।	यह नौ मास तक उर्वरता और प्रजा के मङ्गल का पूर्व-चिह्न है।
४	भवकेतु	पूर्व	इसकी पूँछ दक्षिण की ओर सिंह के सदृश है।	यह केवल एक रात ही दिखाई देता है। जितने मुहूर्त तक इसका दर्शन रहता है उतने मास तक यह शाश्वत उर्वरता और मङ्गल का पूर्व-चिह्न है। यदि इसका रङ्ग कम चमकीला हो जाय, तो यह महामारी और मृत्यु की भविष्यवाणी है।
५	पद्मकेतु	दक्षिण	यह श्वेत कमल के समान श्वेत है। यह एक रात रहता है।	यह सात वर्ष के लिए उर्वरता, उल्लास, और सुख का भविष्य-सूचन करता है।

वायु (अन्तरिक्ष) में मध्यम ऊँचाई के धूमकेतुओं की तालिका।

उनकी संख्या	उनके नाम	वे किस दिशा से प्रकट होते हैं।	वर्णन	उनके पूर्वचिह्न
६	आवर्त	पश्चिम	यह आधी रात को प्रकट होता है, उज्ज्वल चमकता हुआ और हलका भूरा सा। इसकी पूँछ बायें से दायें तक जाती है।	जितने मुहूर्त इसका दर्शन रहता है उतने मास के लिए यह सम्पत्ति की सूचना देता है।
७	संवर्त	पश्चिम	तीक्ष्ण किनारेवाली पूँछ वाला। इसका रङ्ग धुएँ या काँसे का है। यह आकाश के तृतीयांश में फैला हुआ है, और संधि में प्रकट होता है।	जिस नक्षत्र में यह प्रकट होता है वह अशुभ हो जाता है। यह जिसका आगम कहता है उसको, और नक्षत्र को विध्वंस कर देता है। यह शस्त्रों के नङ्गा करने और राजाओं के विनाश का सूचक है। जितने मुहूर्त इसका दर्शन रहता है उतने ही वर्ष इसका प्रभाव रहता है।

पृष्ठ २१८ धूमकेतुओं और उनकी पूर्वसूचना के विषय में हिन्दुओं का सिद्धान्त ऐसा ही है।

जिस प्रकार प्राचीन यूनानियों के भौतिक पण्डित अपने को धूमकेतुओं और आकाश के दूसरे अद्भुत चमत्कारों के स्वरूप की शुद्ध वैज्ञानिक शोधों में लगाया करते थे, उस प्रकार बहुत थोड़े हिन्दू अपने को लगाते हैं, क्योंकि इन बातों में भी वे अपने को अपने धर्म्म-पण्डितों के सिद्धान्तों से अलग रखने में असमर्थ हैं। इस प्रकार मत्स्यपुराण कहता है—

उल्का शास्त्र पर।

"चार वृष्टियाँ और चार पर्वत हैं, और उनका मूल जल है। चार प्रधान दिशाओं में खड़े हुए चार हाथियों पर पृथ्वी रक्खी हुई है। वे बीजों को उगाने के लिए पानी को अपनी सूँड़ों से ऊपर उठाते हैं। वे ग्रीष्म में पानी और शरद् में तुषार छिड़कते हैं। कुहरा वर्षा का सेवक है, जो अपने को उठाकर इसके पास ले जाता और बादलों को काले रङ्ग के साथ सजाता है।"

इन चार हाथियों के विषय में "हाथियों की चिकित्सा की पुस्तक" कहती है—

"कई नर हाथी चालाकी में मनुष्य से बढ़े हुए हैं। इसलिए यदि वे उनके झुण्ड के सिर पर खड़े हों तो यह एक बुरा शकुन समझा जाता है। वे मङ्गुनिह (?) कहलाते हैं। उनमें से कुछ के केवल एक ही दाँत निकलता है, कुछ के तीन और चार; वे पृथ्वी को उठानेवाले हाथियों की जाति में से हैं। मनुष्य उनका विरोध नहीं करते; और यदि वे फन्दे में फँस जाते हैं, तो उनको उनके भाग्य पर छोड़ दिया जाता है।"

वायुपुराण कहता है—

"वायु और सूर्य की किरण पानी को सागर से उठाकर सूर्य में

ले जाती है। यदि पानी सूर्य से नीचे गिरता, तो वर्षा गरम होती। इसलिए सूर्य पानी को चन्द्रमा को सौंप देता है, ताकि वह वहाँ से ठण्डे पानी के रूप में बरसे और जगत् को तरोताज़ा करे।"

आकाश के चमत्कारों के विषय में वे, उदाहरणार्थ, कहते हैं कि मेघनाद ऐरावत का, अर्थात् राजा इन्द्र की सवारी के हाथी का, गर्जन है, जब वह कर्कश स्वर के साथ मस्ती में आकर गरजता हुआ मानसरोवर से पानी पीता है।

इन्द्रधनुष (मूलार्थतः, क़ुज़ह की चाप) इन्द्र की चाप है, जैसा कि हमारे सर्वसाधारण इसे रुस्तम की चाप समझते हैं।

उपसंहार।

हम समझते हैं कि हमने जो कुछ इस पुस्तक में वर्णन कर दिया है वह उस मनुष्य के लिए पर्याप्त होगा जो हिन्दुओं के साथ, उनकी अपनी सभ्यता के आधार पर, बातचीत करना और उनके साथ धर्म्म, विज्ञान, या साहित्य के प्रश्नों पर विचार करना चाहता है। इसलिए हम इस पुस्तक को समाप्त करते हैं, जिसने कि पहले ही, अपनी लम्बाई और चौड़ाई से, पाठकों को थका दिया है। हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वह हमें हमारे प्रत्येक ऐसे कथन के लिए जो सच्चा न हो क्षमा करे। जो बात उसको सन्तोष देती है उस पर दृढ़ रहने के लिए हम उससे सहायता माँगते हैं। हम उससे प्रार्थना करते हैं कि जो चीज़ झूठ और व्यर्थ है उसके स्वरूप का परिज्ञान हमें प्राप्त हो, ताकि हम भूसी को गेहूँ से अलग करने के लिए इसे छान सकें। वह भलाई का स्रोत है, और वही अपने दासों पर कृपा-दृष्टि रखता है। परमेश्वर धन्य है, जो लोकों का स्वामी है, और भविष्यद्वक्ता मुहम्मद और उसके सारे परिवार पर उसका अनुग्रह हो!

टीका

टीका

पृ० १ प्रसिद्ध काल-गणना-सम्बन्धी उनचासवें परिच्छेद के दो भाग हैं। उनमें से प्रत्येक का मूल्य बिलकुल भिन्न है। हिन्दुओं के पौराणिक संवतों की व्याख्या विष्णु-धर्म से ली गई है।

दूसरा भाग पृष्ठ ६ से पृष्ठ १७ तक है। इसमें जो ऐतिहासिक जानकारी दी गई है वह किसी साहित्यिक मूल से नहीं ली गई। यदि ग्रन्थकार ने ये बातें किसी विशेष पुस्तक या ग्रन्थकर्त्ता से सीखी होतीं तो वह अवश्य कह देता। उसकी जानकारी कुछ तो वह है जिसको हिन्दू-विद्वान् ऐतिहासिक समझते थे और जो उन्होंने उसे बताई थी; और कुछ वह है जो उसने हिन्दुओं में और दूसरी जगह रहते हुए स्वयं उपार्जन की थी। ग्रन्थकार को शिकायत है कि हिन्दुओं का ऐतिहासिक ऐतिह्य कुछ अधिक विश्वास्य नहीं (पृष्ठ १३) और ऐतिहासिक काल-गणना का जितना वर्णन वह दे सका है, वह सब प्रकार से सन्तोष-जनक नहीं है। इस बात को ग्रन्थकार सरलतापूर्वक स्वीकार करता है। इसलिए इस परिच्छेद में जो भी प्रशंसा या दोष की बात मालूम हो उसके लिए अलबेरूनी को नहीं, वरन् उसके आवेदकों को उत्तरदाता ठहराना चाहिए। उसकी बताई हुई बातों को उसके समय में उत्तर-पश्चिम भारत के सुशिक्षित हिन्दुओं में पाये जानेवाले विचार समझना चाहिए।

यह हो सकता है कि अलबेरूनी को जो कहानियाँ बताई गई थीं वे उच्च आदर्श की न हों, परन्तु फिर भी यह बड़े खेद का विषय है कि उसने उनको अपनी इस पुस्तक में नहीं मिलाया।

उसे आशा थी (पृष्ठ१८) कि मैं किसी दिन इस विषय का अधिक ज्ञान प्राप्त कर लूँगा। परन्तु मालूम नहीं उसकी यह आशा पूर्ण हुई या नहीं। उसने अपनी क़ानून मसऊदी नामक पुस्तक "अल-बेरूनी का भारत" के कुछ वर्ष बाद लिखी थी। उसमें भारतीय काल-गणना पर कहीं-कहीं टिप्पणियाँ मिलती हैं। परन्तु उनसे यह प्रकट नहीं होता कि उसका इस विषय का ज्ञान कुछ उन्नत हो गया था। भारतीय काल-गणना-सम्बन्धी सभी परिशोधों में, विशेषतः उनमें जिनका सम्बन्ध शक और गुप्त संवतों के आरम्भ के साथ है, अलबेरूनी के आवेदन बड़े महत्व का काम करते हैं। औरों के अतिरिक्त निम्नलिखित पुस्तकों का मिलान कीजिए—

Ferguson, "On Indian Chronology", "Journal of the Royal Asiatic Society," Vol. IV. (1870), p. 81; and "On the Saka Samvat, and Gupta Eras," Vol. XII. (1880), p. 259.

E. Thomas, "The Epoch of the Guptas," *ibid*, Vol. VIII. (1881), p. 524.

Oldenberg, "On the Dates of Ancient Indian Inscriptions and Coins," "Indian Antiquary," 1881, p. 213.

Fleet, "The Epoch of the Gupta Era," *ibid*, 1886, p. 189.

Drouin, "Chronologie et Numismatique des Rois Indo-Scythes," in "Revue Numismatique," 1886, premier trimestre—pp. 8 *seq*.

M. Muller, "India, what can it teach us?" pp. 281, 286, 291.

पृष्ठ २ ग्रन्थकार को कई भिन्न-भिन्न शाकों की आपस में तुलना करने के लिए एक सामान्य मान की आवश्यकता थी। उसने इस

प्रयोजन के लिए नव वर्ष का दिन या शक संवत् ९५३ का प्रथम चैत्र चुना। यह दिन अनुरूप होता है इन दिनों के—

(१) सन् १०३१ ईसवी, २५ वीं फ़रवरी, बृहस्पतिवार।

(२) सन् ४२२ हिजरी, २८ वीं सफ़र।

(३) सन् ३९९ परसराम, १९ वीं इस्पन्दारमज़-माह

पारसी सन् ४०० का नौ रोज़ या नव वर्ष का दिन ९ वीं मार्च १०३१ को हुआ, जो कि जूलियन काल का २,०९७,६८६ दिन है (Schram)।

पृष्ठ ३ पं० ९—इसका सम्बन्ध कलियुग संवत् ३६०० से है, क्योंकि वर्तमान युग के १० दिव्य वर्ष या ३६०० वर्ष बीत चुके हैं। अगले पृष्ठ पर अलबेरूनी मान-वर्ष या कलियुग के ४१३२ वें वर्ष की गिनती करता है। क्योंकि कल्प ब्रह्मा का एक दिन होता है इसलिए ८ वर्ष, ५ मास, ४ दिन अनुरूप होते हैं ८×७२०+५×६०+ ४×२, या ६०६८ कल्पों, या २६, २१३, ७६०, ०००, ००० वर्ष के। वर्तमान कल्प के छः मन्वन्तर या १, ८४०, ३२०, ००० वर्ष, सात सन्धियाँ या १२, ०९६, ००० वर्ष, सत्ताईस चतुर्युग या ११६, ६४०, ००० वर्ष, कृतयुग या १, ७२८, ००० वर्ष, त्रेतायुग या १, २९६, ००० वर्ष, द्वापर युग या ८६४, ००० वर्ष, और कलियुग के ४१३२ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं; इसलिए सातवें मन्वन्तर के सारे १२०, ५३२, १३२ वर्ष, कल्प के १, ९७२, ९४८, १३२ वर्ष, और ब्रह्मा की आयु के २६, २१५, ७३२, ९४८, १३२ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं (Schram)

पृष्ठ ४—मैंने ही यह बात युधिष्ठिर को कही थी, इत्यादि। इन शब्दों में विष्णु-धर्म्म के रचयिता का सङ्केत महाभारत के तीसरे पर्व की ओर है।

पृष्ठ ५ पं० १९—ब्रह्मा के जीवन के आरम्भ से लेकर वर्तमान कल्प तक ६०६८ कल्प या ६०६८×१००८×४, ३२०,००० या २६,

४२३, ४७०,०८०,००० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। छः मन्वन्तर = ६ × ७२ × ४, ३२०, ००० या १, ८६६, २४०, ००० वर्ष; सत्ताईस चतुर्युग = २७ × ४, ३२०, ००० या ११६, ६४०, ००० वर्ष; तीन युग + ४१३२ वर्ष = ३ × १, ०८०, ००० + ४१३२ या ३, २४४, १३२ वर्ष। पिछली संख्या चतुर्युग के बीते हुए वर्षों को दिखलाती है; इसमें वर्षों की दूसरी संख्याएँ क्रमशः जोड़ने से इस पृष्ठ पर दी हुई संख्याएँ प्राप्त होती हैं।

अरबी हस्तलिखित प्रति में २६, ४२५, ४५६, २०४, १३२ के स्थान में २६, ४२५, ४५६, २००, ००० है (अस)।

पृष्ठ ७—शक संवत् का आरम्भ इत्यादि—अलबेरूनी अपनी पुस्तक क़ानून मसऊदी में इस शाक के विषय में ये शब्द कहता है—

الوقت بلغته الهند هركال واشهر التواريخ عندهم و خاصته عند منجمهم شككال لي وقت مق و يحسب من سنته هلا كه لانه كان متغلبا عليه و الاسم فيه و في غيره ان تزكر سنيه النا مته دون النا قصته

(छठे परिच्छेद, प्रकरण १, का आरम्भ, Codex Elliot से—जो कि बृटिश म्यूज़ियम में है—उद्धृत।)

अनुवाद—वक़्त को हिन्दुओं की भाषा में काल कहते हैं। उनमें और विशेषतः इनके ज्योतिषियों में, जो संवत् सबसे अधिक प्रसिद्ध है वह शककाल अर्थात् शक का समय है। यह संवत् उसके विनाश के वर्ष से गिना जाता है क्योंकि वह उस पर (उस समय पर) शासन कर रहा था। इसमें और दूसरे संवतों में यह रीति है कि गिनती पूर्ण वर्षों से की जाती है, अपूर्ण या वर्तमान वर्षों से नहीं।—इसके आगे ग्रन्थकर्त्ता यूनानी; पारसी, और मुसलिम संवतों के साथ शक संवत् की तुलना करने के नियम देता है।

अबू सईद अब्दुलहैय इब्न अलदह्हाक इब्न महमूद गर्देज़ी (गर्देज़ गज़न के पूर्व में एक नगर) नाम के एक पिछले लेखक ने शक संवत् पर फ़ारसी में अलबेरूनी की जानकारी उद्धृत की है। मेरे पास इस समय मूल हस्तलिखित पुस्तक (M. S. Onseley, 240, Bouldleian Library, Oxford) न होने से मैं यहाँ अनुवाद देता हूँ जो कई वर्ष हुए मैंने किया था—

"हिन्दू संवत् شككال कहलाता है, क्योंकि كال का अर्थ समय है, और شكك एक राजा का नाम है जिसकी मृत्यु को संवत् बनाया गया था। उसने हिन्दुओं को बहुत हानि पहुँचाई थी, इसलिए उन्होंने उसकी मृत्यु की तिथि को एक उत्सव बना लिया" (आक्सफ़ोर्ड हस्तलिखित कापी, पृष्ठ ३५२)।

करूर स्थान का उल्लेख चचनामे में भी है। देखिए इलियट का "भारत का इतिहास", i. 139. 143, 207.

पृष्ठ ६—अल-अरकन्द। यह पुस्तक योरुप की अरबी हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रह में मौजूद नहीं जान पड़ती।

पृष्ठ १०—कनीर, बर्दरी, मारीगाल, निरहर (निर्ग्रह ?) नामों का उच्चारण अटकलपच्चू है।

अलबेरूनी मारीगाल को तक्षशिला से अभिन्न ठहराता है। मारीगाल नाम शाहढेरी से केवल दो मील दक्षिण में स्थित गिरिमाला में सुरक्षित जान पड़ता है (कनिङ्घम, "भारत का प्राचीन भूगोल", पृ० १११)। इस स्थान का उल्लेख "तबकाते नासरी" में भी है।

पृष्ठ १२—दुर्लभ। एक मुलतान-निवासी। इसका केवल दो बार उल्लेख हुआ है। यहाँ ग्रन्थकर्त्ता शक संवत् को गिनने की और पृ० ७२ पर अहर्गण को गिनने की उसकी बताई हुई विधि उद्धृत करता है। उसके अनुसार भारतीय वर्ष मार्गशीर्ष मास से आरम्भ

होता था, परन्तु मुलतान के ज्योतिषियों के अनुसार यह चैत्र से शुरू होता था।

पृष्ठ १२ बर्हतकीन—यह नाम केवल इस एक ही जगह पर मिलता है। यदि यह भारतीय नाम होता तो मैं इसे बृहत्कीन (या बृहत्केतु برهتكين) जैसा कोई शब्द समझता। यदि यह तुर्की शब्द है तो यह संयुक्त है, जिसका दूसरा अंश तगीन है (जैसा कि तुगरलतगीन और दूसरे नामों में)। क्योंकि ग्रन्थकार इस कुल को तिब्बती बताता है, इसलिए प्रश्न पैदा होता है कि क्या इस नाम की व्याख्या तिब्बती मानकर की जाय।

पृष्ठ १३ कनिक—केवल तीन व्यंजनों, क न क, का निश्चय है। हम इसे कनिक या कनिक्कु पढ़ सकते हैं। कनिक्कु संस्कृत के कनिष्क का मध्य भारतीय रूप कनिक्खु होगा। इसी प्रकार तुर्क शब्द का उच्चारण मध्य-भारतीय बोली में तुरुक्खु और संस्कृत तुरुस्ख हो गया था।

यह ज़ोपाईरस-कथा मुहम्मद अनफी ने उद्धृत की थी। मिलान कीजिए इलियट, "भारतवर्ष का इतिहास"।

पृष्ठ १६ लगतुर्मान—इस शब्द की अपरूप रचना इसे अभारतीय मूल (तिब्बती) का दिखलाती प्रतीत होती है। मैंने पहले इसको तिब्बती राजा, लङ्गतरमा, के नाम के साथ जोड़ने का विचार किया था। क्योंकि हमारा लगतूरमान अन्तिम बौद्ध राजा था, और दोनों नाम भी बहुत कुछ आपस में मिलते हैं। राजा लङ्गतरमान ने बुद्ध-धर्म्म का (सन् ८९९ ई०) नाश किया था (देखो Prinsep, "Useful Tables," ii. 289) परन्तु यह जोड़ भ्रमात्मक जान पड़ता है।

कल्लर नाम को كلر कल्ल्र लिखा गया है। क्या यह नाम कुलुष (कलुष ?) के साथ मिलाया जा सकता है? मराठा राजा सम्भाजी के एक ब्राह्मण मन्त्री का यह नाम मिलता है।

पृष्ठ १९ ब्राह्मण राजा—सामन्त शब्द का अर्थ माण्डलिक राजा है।

कमलु राजा अमर इब्न लैतह का समकालीन था। इब्न लैतह की मृत्यु सन् ९११ में हुई थी। देखो, इलियट, "भारतवर्ष का इतिहास" ii, 172. यह नाम कमलवर्धन ऐसे किसी नाम का रूपान्तर तो नहीं?

आनन्दपाल, भीमपाल, और त्रिलोचनपाल का अर्थ है वह व्यक्ति जिसका रक्षक शिव है। इसलिए यदि ये राजा इण्डो-सिदियन राजाओं (देखो Drouin, *Revue Numitmatique*, 1888, 48.) की तरह शैव थे, तो हमें जयपाल नाम की व्याख्या कदाचित् जयापाल, अर्थात् वह व्यक्ति जिसकी रक्षिका (शिव-पत्नी) दुर्गा है, के तौर पर करनी चाहिए। देखिए इलियट के 'भारतवर्ष का इतिहास' में काबुल के हिन्दू-राजाओं का वर्णन।

पृष्ठ १९—शेषोक्त मारा गया था—अरबी हस्तलेख में قتل है। यह قيل और قتل दोनों पढ़ा जा सकता है। मैं यह नहीं मालूम कर सका कि प्रस्तुत वर्ष त्रिलोचनपाल के राजतिलक का था या मृत्यु का। परन्तु मैं रीनौड के साथ इसे قتل (उसका वध किया गया था) पढ़ने में सहमत हूँ। قيل यहाँ बिलकुल बे मौक़ा जान पड़ता है।

पृष्ठ २०—पाठ में यह बात स्पष्ट रूप से नहीं कही गई कि कैन्द्रिक परिभ्रमण से तात्पर्य है, परन्तु जो संख्याएँ अलबेरूनी ने उद्धृत की हैं वे इस विषय में कोई भी सन्देह नहीं रहने देतीं। कल्प के दिन १, ५७७; ९१६, ४५०, ००० हैं। इनको यदि संख्या ५७, २६५, १९४, १४२ पर भाग दिया जाय तो एक परिभ्रमण के लिए $२७\frac{३१७५६२०८१६६}{५७२६५१९४१४२}$ दिन, या २७ दिन १३ घण्टे १८ कला ३३ विपल निकलते हैं, और चन्द्रमा का कैन्द्रिक परिभ्रमण २७ दिन, १३ घण्टे,

१८ कला ३७ विपल के बराबर है। इन दोनों संख्याओं का एक दूसरे से इतना निकट का तुल्यत्व है कि यह सन्देह कि यहाँ कैन्द्रिक परिभ्रमण के सिवा किसी दूसरी चीज़ से तात्पर्य है पूर्ण रूप से दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त उच्चस्थान (apsis) के परिभ्रमणों की संख्या ४८८, १०५, ८५८ में ५७, २६५, १९४, १४२ बढ़ाने से संख्या ५७, ७५३, ३००, ००० के बराबर होती है जो कि नक्षत्र-सम्बन्धी परिभ्रमणों की संख्या है। वास्तव में, उच्चस्थान के परिभ्रमण योग कैन्द्रिक परिभ्रमण नक्षत्र-सम्बन्धी परिभ्रमणों के बराबर होने चाहिएँ (Schram)।

पृष्ठ २४—अहवाज़ के अबुलहसन का उल्लेख केवल इसी स्थान में हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह अलफ़ज़ारी और याकूब इब्न तारिक का समकालीन था।

पृष्ठ २६—विलम्बित-संवत् देखो ग्रन्थकार की "Chronology" (English edition) p. 73. मलमास, हिन्दुस्तानी में मल्मास। देखो डासन की "हिन्दुस्तानी ग्रामर"।

पृष्ठ २७ पं० २५—एक चतुर्युग या ४,३२०,००० सौर वर्षों के ५३, ४३३, ३०० चान्द्र मास या १, ६०२, ९९९, ००० चान्द्र दिन होते हैं। इसलिए एक सौर वर्ष में ३७१$\frac{३१}{४८०}$ चान्द्र दिन हुए, और एक वर्ष के सौर और चान्द्र दिनों के बीच ११ $\frac{३१}{४८०}$ का अन्तर है। ३६० चान्द्र दिन : ११$\frac{३१}{४८०}$ दिन = च चान्द्र दिन : ३० दिन, इस समानुपात से च के लिए ९७६ $\frac{४६४}{५३११}$ संख्या निकलती है, और यह ९७६$\frac{४१७६}{४७७९९}$ के बराबर है (Schram)।

पृष्ठ २९ पं० ४—२३‴ के स्थान पर २२‴ पढ़िए।

पृष्ठ ३०—पदमास—यह एक पुरानी भूल प्रतीत होती है जो किसी प्रकार अलफ़ज़ारी और याकूब के ग्रन्थों की हस्तलिखित अरबी प्रतियों में घुस आई है। तुलना कीजिए ग्रन्थकार की "कालगणना" पर पुस्तक (अँगरेज़ी संस्करण) के साथ।

पृष्ठ ३५—इस पृष्ठ की पहली पङ्क्तियों में दिया हुआ नियम बिलकुल ग़लत है, और फलतः इस नियम के अनुसार जिस उदाहरण की गणना की गई है वह भी ग़लत है। दुरुस्त रीति यह होगी—"पूर्ण वर्षों को १२ से गुणा किया जाता है; गुणन-फल में वर्तमान वर्ष के व्यतीत हुए मास जोड़ दिये जाते हैं। इनका योग-फल आंशिक सौर मासों को दिखलाता है। आप इस संख्या को दो स्थानों में लिखते हैं; एक स्थान में आप इसे ५३११ से अर्थात् सार्वत्रिक अधिमासों को दिखलानेवाली संख्या से गुणा करते हैं। गुणन-फल को आप १७२, ८०० पर अर्थात् सार्वत्रिक सौर मासों को दिखलानेवाली संख्या पर भाग देते हैं। इससे जो भाग-फल आपको मिलता है उसे, जहां तक उसमें पूर्ण मास हैं, दूसरे स्थान में लिखी हुई संख्या में जोड़ दिया जाता है; और इस प्रकार प्राप्त हुए योग-फल को ३० से गुणा किया जाता है; गुणन-फल में वे दिन जोड़ दिये जाते हैं जो कि वर्तमान मास के बीत चुके हैं। योग-फल चान्द्राहर्गण अर्थात् आंशिक चान्द्र दिनों के समाहार को दिखलाता है।" यदि हम अपूर्णाङ्कों को न छोड़ दें, तो ये दोनों क्रियाएँ अभिन्न होंगी; परन्तु अधिमास का अन्तर्निवेश केवल उसी समय होता है जब वह पूर्ण हो, इसलिए यह आवश्यक है कि हम पहले अधिमासों की संख्या का निश्चय कर लें, और, अपूर्णाङ्कों को छोड़कर, उनको दिनों में बदल दें; जब हम पहले ३० से गुणा करते हैं तो अधिमास के अपूर्णाङ्क भी गुणित हो जाते हैं, जो कि शुद्ध नहीं।

यह बात उस उदाहरण में स्पष्ट देख पड़ती है, जिसे वह इस नियम के अनुसार हल करता है। हमें आश्चर्य है कि अलबेरूनी ने इस भूल को क्यों नहीं देखा। वह वर्ष के आरम्भ के लिए, और फलतः मास के आरम्भ के लिए भी, अहर्गणों की गणना कर रहा है, और, इस पर भी, उसे (पृष्ठ ३९) मास के २८ दिन और ५१ कला देखकर, जो पहले ही बीत चुके हैं, आश्चर्य नहीं हुआ।

अधिमास महीनों के बनाये हुए दिनों के सिवा अधिमास दिन और कोई चीज़ नहीं। क्योंकि अधिमासों की संख्या अवश्य पूर्ण होती है, इसलिए अधिमास दिनों की संख्या ३० पर विभाज्य होनी चाहिए। इसके अनुसार, पृष्ठ ३८ पंक्ति १३ पर उद्धृत संख्या ३० पर विभाज्य न होने से, एकदम भूल देख पड़ती है, और जब वह निम्नलिखित पंक्तियों में कहता है कि "यदि, गुणन और विभाजन में, हमने अधिमास महीनों का उपयोग किया था, तो अधिमास महीने निकलने चाहिएँ और इनको ३० से गुणा करने से वे यहाँ उल्लिखित अधिमास दिनों की संख्या के बराबर होंगे", तो हमें बड़ा आश्चर्य होता है। इस दशा में संख्या अवश्य ही ३० पर विभाज्य होनी चाहिए। कदाचित् उसे इस दोष का पता लग जाता, यदि, विचित्र दैवयोग से, ठीक और ग़लत संख्या के बीच का अन्तर ठीक २८ दिन या चार पूर्ण सप्ताह न होता, इसलिए यद्यपि विचारित संख्या ग़लत है, तथापि वह पृष्ठ ३९ पंक्ति ३ में सप्ताह का ठीक दिन पा लेता है।

अलबेरूनी पृष्ठ ३७ पंक्ति १६ कल्प के आरम्भ से लेकर सातवें मन्वन्तर तक दिनों की संख्या ६७६, ६१०, ५७३, ७६० पाता है। फिर पंक्ति १९ सातवें मन्वन्तर के आरम्भ से लेकर वर्तमान चतुर्युग के आरम्भ तक वह ४२, ६०३, ७४४, १५० दिन, और, पंक्ति २३, कलियुग के

आरम्भ तक वर्तमान चतुर्युग के १,४२०, १२४, ८०५ दिन व्यतीत हुए पाता है। इन संख्याओं का योग करने से हम देखते हैं कि कल्प के आरम्भ से लेकर चतुर्युग के आरम्भ तक बीते हुए दिनों की संख्या ७२०, ६३४,४४२,७१५ है; परन्तु पृष्ठ ३८ पंक्ति २४, वह उसी युग से मान-तिथि तक ७२०, ६३५,९५१, ९६३ दिन बीते हुए पाता है। इसलिए मान-तिथि कलियुग के आरम्भ के १,५०९, २४८ दिन बाद होगी। अब हमें मालूम है कि मान-तिथि २५वीं फ़रवरी सन् १०३१ या जूलियन काल का दिन २, ०९७, ६८६ है, और, जैसा कि सभी लोग जानते हैं, कलियुग का पहला दिन ईसा पूर्व १८ वीं फ़रवरी सन् ३१०२ के साथ या जूलियन काल के दिन ५८८, ४६६ के साथ मिलता है, इसलिए दोनों तिथियों का अन्तर १,५०९,२२० है, १, ५०९, २४८ दिन नहीं।

इस टिप्पणी के आरम्भ में दी हुई विधि के अनुसार अलबेरूनी के उदाहरण को हल करते समय हम भी इसी परिणाम पर आयेंगे। तब पृष्ठ ३८ पंक्ति २ के स्थान पर हम पायँगे कि उस वर्ष तक कल्प के बीते हुए वर्षों की संख्या १, ९७२, ९४८, १३२ है। इनको १२ से गुणा करने से हमें उनके मासों की संख्या २३, ६७५, ३७७, ५८४ मिलती है। जिस तिथि को हमने मान-तिथि के रूप में ग्रहण किया है, उसमें कोई मास नहीं, केवल पूर्ण वर्ष ही हैं। इस-लिए हमें इस संख्या में कुछ भी और बढ़ाना नहीं। यह आंशिक सौर मासों को दिखलाती है। हम इसको ५३११ से गुणा करते हैं और गुणनफल को १७२,८०० पर भाग देते हैं। भागफल ७२७, ६६१,६३३ $\frac{३४६३}{३६००}$ अधिमासों को दिखलाता है। अपूर्णाङ्कों को छोड़कर, हम आंशिक सौर मासों २३, ६७५, ३७७, ५८४ में ७२७, ६६१, ६३३

का योग करके २४, ४०३, ०३९, २१७ आंशिक चान्द्र मास पाते हैं। क्योंकि नियमित तिथि में कोई दिन नहीं, इसलिए इस संख्या में बढ़ाने के लिए हमारे पास कोई दिन नहीं। इसको ५५, ७३९ से गुणा करने, और गुणन-फल को ३,५९२,२२० पर भाग देने से इसको आंशिक ऊनरात्र दिन, अर्थात् ११, ४५५, २२४, ५७५ $\frac{१९३४३९}{३२९२२२}$ मिल जाते हैं। दिनों की इस संख्या को, अपूर्णाङ्क छोड़कर, आंशिक चान्द्र दिनों में से घटाया जाता है, और शेष ७२०,६३५,९५१,९३५ हमारी मान-तिथि के नागरिक दिनों की संख्या को दिखलाता है। इसको ७ पर भाग देने से ४ अवशेष रहता है। इसका अर्थ यह है कि इनका अन्तिम दिन बुधवार है। इसलिए भारतीय वर्ष मङ्गलवार के साथ आरम्भ होता है।

७२०, ६३५, ९५१, ९३५ और कलियुग के आरम्भ ७२०, ६३४, ४४२, ७१५ के बीच का अन्तर, जैसा कि चाहिए १, ५०९, २२० दिन है। (Schram)

अरबी पुस्तक में ५२ वें परिच्छेद के आरम्भ में ايام और الايام की जगह شهور और الشهور लिखना आवश्यक प्रतीत होता है।

पृष्ठ ३९ पंक्ति ३ बृहस्पतिवार—अरबी हस्तलिखित प्रति में मङ्गलवार है।

पृष्ठ ३९ पं० ४ यह इस प्रकार होना चाहिए—अधिमास मासों के लिए हमने ऊपर ७२७, ६६१, ६३३ $\frac{३४६३}{३६००}$ पाये हैं; पूर्णाङ्क बीते हुए अधिमासों की संख्या, अर्थात् ७२७, ६६१, ६३३ को दिखलाते हैं, और अपूर्णाङ्क वह समय है जो कि वर्तमान अधिमास महीने का पहले ही बीत चुका है। इस अपूर्णाङ्क को ३० से गुणा करने से हम इसे दिनों में प्रकट कर देते हैं, अर्थात् २८ दिन ५१ कला ३०

विपल । इसलिए वर्तमान अधिमास को पूरा मास बनने के लिए १ दिन ८ कला ३० विपल और चाहिए (Schram) ।

पृष्ठ ४० पं० १६—संख्या १, २०३, ७८३, २७० को पाने के लिए १, १६७, ८८७, ५२० सौर दिनों में ३० × १, १६६, ५२५ या ३५, ८६५, ७५० अधिमास दिन बढ़ाने पड़ते हैं। (Schram)

पृष्ठ ४० पं० २४ चतुर्युग के आरम्भ से लेकर मान-तिथि तक दिनों की संख्या पुलिस की विधि से यहाँ १, १८४, ६४७, ५७० पाई गई है, परन्तु पृष्ठ ४३ पंक्ति ६ में चतुर्युग के आदि से लेकर कलियुग के आदि तक दिनों की संख्या १, १८३, ४३८, ३५० पाई गई है। दोनों संख्याओं के बीच का अन्तर (जैसा कि होना चाहिए) १,५०६,२२० दिन है (Schram) ।

पृष्ठ ४३ आर्यभट्ट की विधि वही है जो कि पहले दी जा चुकी है। जिन संख्याओं के साथ हमें गुणा करना और भाग देना है, केवल वही, उसकी शैली के अनुसार, भिन्न हैं। उसकी शैली कल्प में परिभ्रमणों की एक भिन्न संख्या मान लेती है। बड़े आर्य-भट्ट के अनुसार चतुर्युग में १, ५७७, ६१७, ५०० दिन होते हैं। सूर्य और चन्द्र के परिभ्रमण वही जान पड़ते हैं जो पुलिस ने दिये हैं। इसमें तालिकाएँ, पृष्ठ २० तथा २१, बिलकुल दुरुस्त नहीं हैं, क्योंकि, उदाहरणार्थ, वे चन्द्रमा के पात और उच्चस्थान के परिभ्रमणों के लिए एक कल्प में उनके परिभ्रमणों का १००० वाँ अंश देते हैं, जब कि दूसरे भाग में कहा गया है कि पुलिस और आर्यभट्ट के अनुसार कल्प में १००८ चतुर्युग होते हैं। परन्तु पृष्ठ २५ पंक्ति ४ में सूर्य के लिए ४,३२०,००० और चन्द्रमा के लिए ५७, ७५३, ३३६ की संख्याएँ सम्भवतः आर्यभट्ट के सिद्धान्त के सम्बन्ध की दी गई हैं। बॅण्टले ने भी अपनी "हिस्टारीकल व्यू ऑव दि हिन्दू आस्ट्रानोमी" (लंडन १८२५

पृ० १७९) नामक पुस्तक में काल्पनिक कहे जानेवाले आर्य सिद्धान्त की प्रणाली के सम्बन्ध में इन्हीं संख्याओं को उद्धृत किया है। निस्सन्देह यह वही प्रणाली है, क्योंकि यदि हम कल्प के आरम्भ और कलियुग के आरम्भ के बीच के दिनों की संख्या की, जिसको बॅण्टले उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १८१, में ७२५, ४४७, ५७०, ६२५ बताता है, अलबेरूनी द्वारा उद्धृत उसी संख्या, पृष्ठ ४३ पंक्ति १८ के साथ तुलना करें, तो दोनों प्रणालियों के तादात्म्य में कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता, विशेषत: जब कि यह संख्या ७२५, ४४७, ५७०, ६२५ विचित्र है, क्योंकि यह कल्प का प्रथम दिन गुरुवार बताती है और दूसरी प्रणालियाँ इस तिथि के लिए रविवार देती हैं। इस पुस्तक के विषय में बॅण्टले कहता है, पृष्ठ १८३—"इसके विषयों की जाँच करने में अधिक समय नष्ट करने का प्रयोजन नहीं, जो कुछ दिखलाया जा चुका है वह किसी भी सहज बुद्धिवाले मनुष्य को इसके सर्वथा आधुनिक कपट-लेख होने का विश्वास कराने के लिए पूर्ण रूप से यथेष्ट होगा"; और पृष्ठ १९०, "कृत्रिम ब्रह्मसिद्धान्त और साथ ही कृत्रिम आर्यसिद्धान्त निस्सन्देह दूर से दूर गत शताब्दी की रचनाएँ हैं।" यदि उसे मालूम होता कि "गत शताब्दी की इस रचना" को अलबेरूनी पहले ही उद्धृत कर चुका है, तो कदाचित् वह इससे अधिक नियंत्रित शब्दों का प्रयोग करता।

जब हम चतुर्युग के लिए इन संख्याओं को ग्रहण करते हैं, अर्थात् १, ५७७, ९१७, ५०० नागरिक दिन, ४, ३२०, ००० सूर्य के परिभ्रमण, और ५७, ७५३, ३३६ चन्द्रमा के परिभ्रमण, और फलतः ५३, ४३३, ३३६ चान्द्रमास, तो हम उपर्युक्त संख्याओं को चार पर भाग देने से युग-सम्बन्धी संख्याएँ मालूम कर लेते हैं, क्योंकि इस प्रणाली में चारों युग एक समान लम्बे हैं। इस प्रकार

एक युग के लिए हम ३९४, ४७०, ३७५ नागरिक दिन, १,०८०,००० सौर वर्ष, और फलतः १२,९६०,००० सौर मास, और ३८८,८००, ००० सौर दिन, १३, ३५८, ३३४ चान्द्र मास, ४००, ७५०,०२० चान्द्र दिन, ३९८,३३४ अधिमास महीने, और ६,२७०, ६४५ ऊनरात्र दिन पाते हैं। कल्प के आरम्भ और मान-तिथि के बीच के दिनों की संख्या के रूप में, पृष्ठ ४३ पंक्ति २० में कही संख्या ७२५, ४४९, ०७९, ८४५ को पाने के लिए हमें इस प्रकार क्रिया करनी होगी—"कलियुग के आरम्भ से लेकर हमारी मान-तिथि तक ४१३२ वर्ष बीत चुके हैं। इनको १२ से गुणा करने से ४९, ५८४ आंशिक सौर मास निकलते हैं। इस संख्या को सार्वत्रिक अधिमास महीनों ३९८, ३३४ से गुणित करने, और सार्वत्रिक सौर मासों १२, ९६०, ००० पर भाग देने से १५२३ $\frac{४४८३७}{४५०००}$ अधिमास महीनों की संख्या निकलती है। अपूर्णाङ्क को छोड़कर इस संख्या को सौर मासों ४९,५८४ में बढ़ा देने से आंशिक चान्द्र मासों की संख्या ५१,१०७ निकल आती है, फिर इसको ३० से गुणा करने से १,५३३,२१० आंशिक चान्द्र दिन निकलते हैं। इस संख्या को सार्वत्रिक ऊनरात्र दिनों ६,२७०,६४५ से गुणित करने, और सार्वत्रिक चान्द्र दिनों ४००,७५०,०२० पर भाग देने से २३,९९० $\frac{२४७३७८५}{४४५२७७८}$ आंशिक ऊनरात्र दिन निकलते हैं, और आंशिक चान्द्र दिनों १,५३३,२१० में से २३,९९० घटा देने से मान-तिथि तक कलियुग के बीते हुए नागरिक दिन १,५०९,२२० निकलते हैं और ये पृष्ठ ३५ की टीका में दी हुई संख्या से अभिन्न हैं। इन १,५०९,२२० दिनों को ७२५,४४७,५७०,६२५ दिनों में बढ़ा देने से, जो कल्प के आरम्भ और कलियुग को अलग करते हैं, ७२५,४४९,०७९,८४५

दिन (पृष्ठ ४३ पंक्ति २० में उद्धृत) निकलते हैं। अन्ततः वर्तमान कल्प से पूर्व ब्रह्मा की आयु के बीते हुए दिनों की संख्या कल्प के दिनों की संख्या अर्थात् १,५९०,५४०,८४०,००० को वर्तमान कल्प से पूर्व बीते हुए कल्पों की संख्या, ६०६८, से गुणा करने से प्राप्त होती है (Schram)।

पृष्ठ ४५ पं० ४—यहाँ भी वही दोष है जिसके कारण अलबेरूनी असत्य परिणाम पर पहुँचा था। पृष्ठ ३५। ३० से गुणन अधि-मास महीनों के अपूर्णाङ्क को छोड़ने के पश्चात् होना चाहिए, न कि पूर्व (Schram)।

पृष्ठ ४६—कीड़ों के खाये हुए स्थान में इस प्रकार का कोई वाक्यांश होगा—"तीन भिन्न-भिन्न स्थानों में; सबसे निचले स्थान की संख्या को वे ७७ से गुणा करके गुणन-फल का ६९,१२० पर भाग देते हैं।" अगले पृष्ठ पर जो व्याख्या दी गई है उससे यह बात स्पष्ट है (Schram)।

पृष्ठ ४६ पं० २३—सौर के स्थान में चान्द्र, अरबी में (١٢٢, ٧, अन्तिम शब्द) الشمسية। के स्थान में القمرية। पढ़ो।

पृष्ठ ४६ पं० २४—शब्दरचना बहुत ही संक्षिप्त है, इसलिए यह स्पष्ट नहीं कि "मध्यवर्ती संख्या" से अभिप्राय क्या है। इसको इस प्रकार समझना चाहिए; आंशिक चान्द्र दिनों की यह संख्या दो भिन्न-भिन्न स्थानों में एक दूसरे के नीचे, लिखी जाती है। इनमें से एक "सबसे ऊपर के स्थान में" में है, वे निचली संख्या को ११ से गुणा करते हैं और गुणन-फल को इसके नीचे लिख देते हैं। तब वे इसको अर्थात् गुणन-फल को ४०३, ९६३ पर भाग देते, और भाग-फल को मध्यवर्ती संख्या में, अर्थात् आंशिक चान्द्र दिनों के ग्यारह गुना घात में, बढ़ा देते हैं (Schram)।

पृष्ठ ४७ पंक्ति १४—मासों की एक विशेष संख्या अ को ६५ $\frac{११५५}{१५९३३}$ पर भाग देना है। यदि हम केवल ६५ पर भाग देने से वह परिणाम लेना चाहते तो हमारे लिए आवश्यक है कि अ में से एक विशेष संख्या च को घटाएँ, इस संख्या का निश्चय समीकरण $\frac{अ}{६५\frac{११५५}{१५९३३}} = \frac{अ-च}{६५}$ से होगा। यह समीकरण च का मूल्य $च = अ\left\{\frac{\frac{११५५}{१५९३३}}{६५\frac{११५५}{१५९३३}}\right\}$ या, $च = अ\left\{\frac{११५५}{१०३६८००}\right\}$ या अन्ततः $च = अ\left\{\frac{७७}{६९१२०}\right\}$ देता है। समीकरण $च = अ\left\{\frac{\frac{११५५}{१५९३३}}{६५\frac{११५५}{१५९३३}}\right\}$ इस रूप में $६५\frac{११५५}{१५९३३} : \frac{११५५}{१५९३३} = अ : च$ में भी लिखा जा सकता है; अर्थात्, जैसा कि अलबेरूनी इसको बताता है "सारे भाजक का इसके अपूर्णाङ्कों के साथ वही सम्बन्ध है जो विभाजित संख्या का घटाये हुए अंश के साथ" (Schram)।

पृष्ठ ४७ पं० २३—अलबेरूनी ने ऊपर दी हुई गणना साधारण रीति से नहीं, वरन् एक विशेष अवस्था के लिए, मान-तिथि के लिए की है। वह अपूर्णाङ्क $\frac{७७}{६९१२०}$ पाता है। इसे वह किसी भी दूसरी तिथि के लिए पायगा, क्योंकि यह अपूर्णाङ्क संख्या अ से स्वतन्त्र है (Schram)।

पृष्ठ ४९ पं० १०—यहाँ भी फिर ऊनरात्र दिनों की एक विशेष संख्या अ को ६३ [illegible] पर भाग दिया जायगा। यदि हम केवल $६३\frac{१०}{११}$ पर या, जो कि वही बात है, $\frac{७०३}{११}$ पर भाग देने से वही फल लेना

चाहते हैं, तो यह आवश्यक है कि अ में एक विशेष संख्या च बढ़ा दी जाय। यह संख्या आगे दिये समीकरण से निश्चित की जाती है।

$$\frac{\text{अ} + \text{च}}{\frac{७०३}{११}} = \frac{\text{अ}}{६३\frac{५०६६३}{५५७३९}} \text{ या } \text{अ} + \text{च} = \text{अ}\left\{\frac{७०३}{११ \times ६३\frac{५०६६३}{५५७३९}}\right\}$$

$$\text{या च} = \text{अ}\left\{\frac{७०३ - ११ \times ६३\frac{५०६६३}{५५७३०}}{११ \times ६३\frac{५०६६३}{५५७३९}}\right\} = \text{अ}\left\{\frac{७०३ - ७०२\frac{५५६४२}{५५७३९}}{७०२\frac{५५६४२}{५५७३९}}\right\}$$

$$\text{या च} = \text{अ}\left\{\frac{\frac{९७}{५५७३९}}{\frac{३९१८४४२०}{५५७३९}}\right\} = \text{अ}\left\{\frac{९७}{३९१८४४२०}\right\}$$

या अन्त को गणक और भाजक को ९७ पर भाग देने से हम $\text{च} = \frac{\text{अ}}{४०३९६३\frac{९}{९७}}$ पाते हैं। $\frac{९}{९७}$ उपेक्षित कर दिये जाते हैं (देखो पृष्ठ ४९ पंक्ति २२) (Schram)।

पृष्ठ ५० पंक्ति १५—अरबी हस्तलिखित प्रति में ७७३९ की जगह ७७,१३९ है, जैसा कि डाक्टर श्रम (Schram) की माँग है।

पृष्ठ ५१ पंक्ति १९—यहाँ वह मानता है कि २८ दिन जो हम ७२७, ६६१, ६३३ मासों से ऊपर पाते हैं चैत्र मास के आरम्भ के पश्चात गिने जाते हैं, अतएव निकला हुआ परिणाम, पृष्ठ ३७ पंक्ति १५ पहली के साथ नहीं वरन् २८ वीं चैत्र के साथ मिलता है (Schram)।

पृष्ठ ५४ पं० १८—यह वैसी ही बात है जैसी कि पृष्ठ ४७ पर है, केवल संख्याएँ थोड़ी भिन्न हैं। यदि अ उन मासों की संख्या है जिनको $३२\frac{३५५५२}{६३३८९}$ पर भाग देना है, और हम अ में से एक संख्या घटाना

चाहते हैं ताकि अन्तर को केवल ३२ पर भाग देने से वह परिणाम प्राप्त हो, तो समीकरण यह है—

$$\frac{अ}{३२\frac{३५५५२}{६६३८९}} = \frac{अ - च}{३२}$$

इससे च का मूल्य यह निकलता है—

$$अ\left\{\frac{\frac{३५५५२}{६६३८९}}{३२\frac{३५५५२}{६६३८९}}\right\} \text{ या } च = अ\left\{\frac{३५५५२}{२१६००००}\right\} \text{ या } च = अ\left\{\frac{११११}{६७५००}\right\}$$

अलबेरूनी ने यहाँ भी फिर एक विशेष अवस्था, मान-तिथि, के लिए गणना की है, और वही पूर्णाङ्क प्राप्त किया है (Schram)।

पृष्ठ ५४ पं० १९—"दिनों की यह संख्या", अर्थात् दी हुई तिथि के अनुरूप सौर दिनों की संख्या (Schram)।

पृष्ठ ५५ पं० ७—हस्तलिखित प्रति में ९७६ के स्थान में ९७४ है।

पृष्ठ ५५ पं० १२—अधिमास महीनों की संख्या १,५९३,३३६ की जगह सौर दिनों की संख्या १.५५५,२२२,००० को भाजक के रूप में ग्रहण किया गया है। अपूर्णाङ्क यह होना चाहिए $९७६\frac{१०४०६४}{१५९३३३६} =$ $९७६\frac{४३३६}{६६३८९}$, सामान्य भाजक २४ (Schram)।

पृष्ठ ५५ पं० १५ – ऐसा जान पड़ता है कि अलबेरूनी पुलिस की गणना को नहीं समझा। यह गणना दुरुस्त है, यद्यपि इसकी व्याख्या में किसी जगह से कोई अक्षर कीड़ा खा गया प्रतीत होता है। पुलिस के सिद्धान्त के अनुसार एक चतुर्युग में १,५५५,२००,००० सौर दिन और १,५९३,३३६ अधिमास महीने होते हैं। पहली संख्या को दूसरी पर भाग देने से हम उस समय के रूप में जिसमें एक अधिमास पूरा होता है $९७६\frac{१०४०६४}{१५९३३३६}$ दिन पाते हैं। अतएव सौर

दिनों की दी हुई संख्या को संख्या $\text{९७६}\frac{\text{१०४०६४}}{\text{१५९३,३३६}}$ पर भाग देने से अधिमासों की संख्या प्राप्त हो जाती है; परन्तु पुलिस अपूर्णाङ्क को न गिनना ही अच्छा समझता है। इसलिए वह दिये हुए दिनों की संख्या में से एक विशेष राशि कम करके केवल ९७६ पर ही भाग देता है। दिये हुए दिनों में से जो संख्या कम की जायगी वह निम्नलिखित समीकरण से सुगमतापूर्वक मालूम हो जाती है--

मान लीजिए कि दिये हुए सौर दिनों की संख्या द है; तब

$$\frac{\text{द}}{\text{९७६}\frac{\text{१०४०६४}}{\text{१५९३३३६}}} = \frac{\text{द—च}}{\text{९७६}} \text{ या } \text{च} = \text{द}\left\{\frac{\frac{\text{१०४०६४}}{\text{१५९३३३६}}}{\text{९७६}\frac{\text{१०४०६४}}{\text{१५९३३३६}}}\right\} \text{ या}$$

$$\text{च} = \text{द}\left\{\frac{\frac{\text{१०४०६४}}{\text{१५९३३३६}}}{\frac{\text{१५५५२००००००}}{\text{१५९३३३६}}}\right\} \text{ या } \text{च} = \text{द}\left\{\frac{\text{१०४०६४}}{\text{१५५५२००००००}}\right\}$$

अब १०४,०६४ और हार १,५५५,२००,००० के लिए ३८४ एक सामान्य भाजक है। इसलिए पुलिस की भाँति हम भी $\text{च} = \text{द}\ \frac{\text{२७१}}{\text{४०५००००}}$ पाते हैं (Schram)।

पृष्ठ ५६ पं० ६—न केवल यह "सर्वथा असम्भव ही नहीं कि इस संख्या का, गणना के इस भाग में, भाजक के रूप में प्रयोग किया जाय", वरन् इसका भाजक के रूप में अवश्य प्रयोग होना चाहिए। जब हम विशेष संख्याओं के साथ गणना करने के स्थान में बीज-गणित की रीति से करते हैं, तो यह बात तत्काल स्पष्ट दीखने लगती है। मान लीजिए कि एक चतुर्युग में सौर दिनों की संख्या स है, और अ चतुर्युग में अधिमास महीनों की संख्या है। तब उन दिनों की संख्या जिनमें एक अधिमास महीना पूरा होता है स को

अ पर भाग देने से मालूम हो जायगी। इस विभाजन से हमें पूर्णाङ्क और एक अपूर्णाङ्क मिलेगा; मान लीजिए कि क पूर्णाङ्कों को और र अपूर्णाङ्क के गुणाकार को दिखलाता है। तब $\frac{स}{अ} = क + \frac{र}{अ}$ या स = अ क + र। अब यदि सौर दिनों की दी हुई संख्या द हो, तो अधिमासों की संख्या प्राप्त करने के लिए हमें द को क + $\frac{र}{अ}$ पर भाग देना है, परन्तु क्योंकि हम केवल क पर ही भाग देना चाहते हैं, इसलिए हमें द में से एक संख्या च अवश्य घटानी चाहिए। यह संख्या इस समीकरण से मालूम होगी—

$$\frac{द}{क + \frac{र}{अ}} = \frac{द - च}{क} \text{ या } च = द \frac{\frac{र}{अ}}{क + \frac{र}{अ}} \text{ या } च = द \frac{र}{अ\,क + र}$$

क्योंकि अ क + र बराबर है स के, इसलिए च = द $\frac{र}{स}$। यहाँ स एक चतुर्युग में सौर दिनों की संख्या है। यह गणना के इस भाग में आवश्यक रूप से भागहार होनी चाहिए। (Schram)

पृष्ठ ५६ पङ्क्ति १५—क्योंकि एक ऊनरात्र दिन ६३$\frac{५०६६३}{५५७३९}$ चान्द्र दिनों में पूरा होता है (देखो पृष्ठ ४८ पङ्क्ति १८) इसलिए समीकरण फिर इस प्रकार है—

$$\frac{ल}{६३\frac{५०६६३}{५५७३९}} = \frac{ल - च}{६३} \text{ या } च = ल \left\{ \frac{\frac{५०६६३}{५५७३९}}{६३\frac{५०६६३}{५५७३९}} \right\} \text{ या } च = ल \left\{ \frac{५०६६३}{३५६२२२०} \right\}$$

यहाँ ल दिये हुए चान्द्र दिनों की संख्या को दिखलाता है।

पृष्ठ ५८ पङ्क्ति ६—जैसा कि हम पृष्ठ ३५ की टीका में देख चुके हैं, संख्या ७२०,६३५,९५१,९६३ ठीक नहीं है। २८ दिनों की अधि-

कता से यह बहुत बड़ी है। परन्तु अधिमास दिनों की संख्या २१,८२९,८४९,०१८ (पङ्क्ति १६) भी २८ दिन बहुत बड़ी है। अतएव अन्तर फिर भी ठीक है। यहाँ भी वही दोष है जो पृष्ठ ३५ पर है। गणना इस प्रकार होनी चाहिए—जो आंशिक नागरिक दिन हमारी मान-तिथि तक बीत चुके हैं वे ७२०,६३५,९५१.९३५ हैं। यह संख्या दी गई है, और जो कुछ बात हम मालूम करना चाहते हैं वह यह है कि कितने भारतीय वर्ष और मास दिनों की इस संख्या के बराबर हैं। पहले हम इस संख्या को ५५,७३९ से गुणा करते और गुणन-फल को ३,५०६,४८१ पर भाग देते हैं; भाग-फल ११,४५५,२२४,५७५$\frac{१६३४३०६}{३५०६४८१}$ ऊनरात्र दिन होता है। हम नागरिक दिनों में ११,४५५,२२४,५७५ बढ़ाते हैं, तो योग-फल ७३२,०९१,१७६,५१० चान्द्र दिन होते हैं। इस संख्या को ३० पर भाग देने से भाग-फल के रूप में २४,४०३,०३९,२१७ चान्द्र मास निकलते हैं (और कोई अपूर्णाङ्क नहीं; इसलिए हम देखते हैं कि प्रस्तुत तिथि में केवल मासों की एक संख्या ही है, या, जो कि वही बात है, यह तिथि मास के आरम्भ के अनुरूप है)। चान्द्र मासों को ५३११ से गुणा करने और गुणन-फल को १७८,१११ पर भाग देने से हम ७२७,६६१,६३३$\frac{१६६२२४}{१७८१११}$ अधिमास प्राप्त करते हैं; २४,४०३,०३९,२१७ चान्द्रमासों में से ७२७,६६१,६३३ अधिमास घटाने से २३,६७५,३७७,५८४ सौर मास निकलते हैं। इनको १२ पर भाग देने से १,९७२,९४८,१३२ वर्ष निकलते हैं और कोई अपूर्णाङ्क नहीं रहता। अतएव हम दी हुई तिथि को न केवल मास के वरन् वर्ष के आरम्भ के भी अनुरूप पाते हैं। हम वर्षों की वही संख्या पाते हैं जिनसे कि मान-तिथि बनी है (देखो पृष्ठ ३८ पङ्क्ति २) (Schram)।

पृष्ठ ६० पङ्क्ति १—वास्तव में इस नियम का आधार अवश्य ही कोई पूर्ण भ्रम है, क्योंकि यह, जैसा कि अलबेरूनी ठीक ही कहता है, सर्वथा सत्येतर है (Schram)।

पृष्ठ ६१ पङ्क्ति १—यदि हम कल्प या चतुर्युग के आरम्भ से गणना करें, तो इस काल विशेष में न तो अधिमासों के और न ऊनरात्र दिनों के अपूर्णाङ्क हैं; परन्तु क्योंकि ऐसी दीर्घ अवधियों में दिनों की बहुत बड़ी संख्या का सन्निवेश होता है जिससे गणना श्रमकर हो जाती है, इसलिए इस परिच्छेद में बताई हुई विधियाँ न तो कल्प के आरम्भ से और न चतुर्युग के आरम्भ से परन्तु उन यथारुचि चुनी हुई तिथियों से शुरू होती हैं, जो उस समय के निकट हों जिनके लिए उनका प्रयोग किया जायगा। क्योंकि ऐसी कालावधियाँ अधिमासों और ऊनरात्र दिनों के अपूर्णाङ्कों से खाली नहीं, इसलिए इन अपूर्णाङ्कों को हिसाब में ज़रूर गिनना चाहिए (Schram)।

पृष्ठ ६२ पङ्क्ति ८—जिन संख्याओं का प्रयोग यहाँ हुआ है उनका सम्बन्ध पुलिस की प्रणाली से है, ब्रह्मगुप्त की प्रणाली से नहीं। जिस वर्ष को शाक के रूप में ग्रहण किया गया है वह संवत् ५८७ शककाल है। हम, पृष्ठ ४० पङ्क्ति ११ में देख चुके हैं कि हमारी मान-तिथि के आरम्भ या संवत् शककाल ९५३ के क्षण में, चतुर्युग के ३,२४४,१३२ वर्ष बीत चुके हैं, इसलिए सवत् ५८७ शककाल के आरम्भ तक अवश्य ही चतुर्युग के ३, २४३, ७६६ वर्ष बीत चुके होंगे। अब हमें पहले इस काल-विशेष के लिए अधिमासों तथा ऊनरात्र दिनों की गिनती करनी चाहिए। पुलिस की रीत्यनुसार—३, २४३,७६६ वर्ष बराबर हैं ३८, ९२५, १९२ सौर मासों या १, १६७, ७५५, ७६० सौर दिनों के। इस संख्या को २७१ से गुणा करने

और ४, ०५०, ००० पर भाग देने से ७८, १३८$\frac{४०४३}{५६२५}$ प्राप्त होते हैं। क्योंकि यहाँ निकटतम संख्या लेनी है, इसलिए हम ७८, १३९ पाते हैं, जिनको १, १६५, ७५५, ७६० में से घटाने से १, १६७, ६७७, ६२१ प्राप्त होते हैं। इस पिछली संख्या को ९७६ पर भाग देने से अधिमासों की संख्या के रूप में १, १९६, ३९१ $\frac{५}{९७६}$ मिलते हैं। अब १. १९६. ३९१ अधिमास महीने ३५, ८९१, ७३० अधिमास दिनों के बराबर हैं, जिनको १, १६७, ७५५,७६० सौर दिनों में बढ़ाने से १,२०३,६४७,४९० चान्द्र दिन प्राप्त होते हैं। पुलिस के सिद्धान्त के अनुसार (पृष्ठ ३३ पंक्ति २३) एक चतुर्युग में १, ६०३, ०००, ०८० चान्द्र और २५,०८२,२८० ऊनरात्र दिन होते हैं; इसलिए एक ऊनरात्र दिन ६३ $\frac{६३३७९}{६६६७३}$ चान्द्र दिनों में पूरा होता है। इसलिए हमें चान्द्र दिनों की दी हुई संख्या ल को ६३$\frac{६३३७९}{६६६७३}$ पर भाग देना चाहिए था, परन्तु हम ल में से एक विशेष संख्या च को घटाना और शेष को ६३ $\frac{१०}{११}$ या $\frac{७०३}{११}$ पर भाग देना अच्छा समझते हैं। संख्या च को यह समीकरण देगा

$$\frac{ल}{६३\frac{६३३७९}{६६६७३}} = \frac{ल—च}{\frac{७०३}{११}} = \frac{११ल—११च}{७०३}$$

यह समीकरण च के लिए यह मूल्य देता है—

$$च = \left\{ \frac{\frac{४३९}{६६६७३}}{७०३\frac{४३९}{६६६७३}} \right\} ल \text{ या } च = \left\{ \frac{४३९}{४८६८०५५८} \right\} ल$$

या $\text{च} = \left\{ \dfrac{\text{१}}{\text{१११५७३}\frac{\text{११}}{\text{४३६}}} \right\} \text{ल}$, या लगभग ११ च $= \dfrac{\text{११ ल}}{\text{१११५७३}}$

अब क्योंकि ल बराबर है १,२०३,६४७, ४६० चान्द्र दिनों के, इसलिए ११ ल बराबर होगा १३, २४०, १२२, ३६० चान्द्र दिनों के; इस संख्या को १११,५७३ पर भाग देने से ११८,६६७ $\frac{\text{८६११६}}{\text{१११५७३}}$ प्राप्त होते हैं। निकटतम संख्या को लेकर, हम ११८,६६८ को १३, २४०, १२२, ३६० में से घटाकर १३,२४०,००३,७२२ प्राप्त करते हैं जिनको ७०३ पर भाग देने से ऊनरात्र दिनों की संख्या के रूप में १८,८३३,५७५ $\frac{\text{४६७}}{\text{७०३}}$ प्राप्त होते हैं। इनको १,२०३,६४७,४६० चान्द्र दिनों में बढ़ाने से हमारे गणनारम्भ की तिथि के लिए नागरिक दिनों की संख्या १,१८४,८१३,६१५ प्राप्त होती है।

इस संख्या को ७ पर भाग देने से ५ अवशेष रहता है। अब वर्तमान चतुर्युग के पहले अन्तिम दिन सोमवार (देखो पृष्ठ ४३ पंक्ति ३) था, इसलिए हमारे गणनारम्भ के पूर्व अन्तिम दिन शनिवार है और उस गणनारम्भ से वीते हुए दिनों की किसी भी संख्या को यदि ७ पर भाग दिया जाय तो वह रविवार को १ मानकर गिनने से सप्ताह-दिवस को अवशेष से प्रकट करेगी, जैसा कि कहा जा चुका है (पृष्ठ ६३ पंक्ति १)। अब इस सारी रीति को सर्वथा ठीक मानने में कुछ भी कठिनाई नहीं रहती। आंशिक सौर दिनों को $\frac{\text{२७१}}{\text{४०५००००}}$, से गुणा करने के बदले हम उनको $\frac{\text{१}}{\text{१४६४५}}$, से गुणा करते हैं, जो कि पर्याप्त रूप से शुद्ध है, क्योंकि $\frac{\text{२७१}}{\text{४०५००००}}$ बराबर है $\dfrac{\text{१}}{\text{१४६४४}\frac{\text{१७६}}{\text{२७१}}}$

के। क्योंकि पूर्ण अधिमास महीनों के अतिरिक्त $\frac{५}{९७६}$ अधिमास महीनों का अपूर्णाङ्क अभी हमारे गणनारम्भ में है, इसलिए ९७६ पर भाग देने से पूर्व हम ५ बढ़ा देते हैं। ऊनरात्र दिनों की गणना की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है; परन्तु क्योंकि हमारे गणनारम्भ में पूर्ण ऊनरात्र दिनों के अतिरिक्त $\frac{४१७}{७०३}$ ऊनरात्र दिनों का अपूर्णाङ्क रहता है, इसलिए ७०३ पर भाग देने के पूर्व हमें ४९७ अवश्य बढ़ा देने चाहिएँ। सारी क्रिया की इस प्रकार व्याख्या हो जाती है (Schram)।

पृष्ठ ६४ पंक्ति ६—हमारी मान-तिथि से पूर्व बीते हुए पूर्ण वर्षों के लिए गणना की गई है। अतएव हम मान-तिथि के प्रथम चैत्र के पूर्व अन्तिम दिन का सप्ताह-दिन पाते हैं, और यदि यह बुधवार हो, तो प्रथम चैत्र स्वयं गुरुवार है; तुलना कीजिए पृष्ठ ३९ पंक्ति ३।

इस गणनारम्भ का प्रथम दिन जूलियन काल के दिन १, ९६४, ०३१ के अनुरूप है। १, ९६४, ०३१ में १३३, ६५५ बढ़ाने से प्रथम चैत्र के लिए ९५३ निकलते हैं, जो कि जूलियन काल का दिन २, ०९७, ६८६ है, और ऐसा ही होना चाहिए था (Schram)।

पृष्ठ ६४ पंक्ति १४—यज़्दजिर्द ३९९ की १८ वीं इसफन्दारमज़ वास्तव में बुधवार, २४ वीं फ़रवरी १०३१ के अनुरूप है, जो कि पहली चैत्र ९५३ शककाल के पूर्व का दिन है (Schram)।

पृष्ठ ६५ पंक्ति २४ छः वर्ष—अरबी हस्तलिखित प्रति में छः के स्थान में सात है।

पृष्ठ ६६ पंक्ति ११—जिस रीति का प्रयोग यहाँ किया गया है उसका आधार पुलिस का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार अधि-

मासों की प्राप्ति के लिए सौर दिनों को ९७६ $\frac{४३३६}{६६३८९}$ पर भाग देना आवश्यक है। अब ९७६ $\frac{४३३६}{६६३८९}$ काफ़ी दुरुस्त तौर पर ९७६· $\frac{२}{३०}$ या $\frac{२९२८२}{३०}$ के बराबर है।

यदि स सौर मासों की संख्या को दिखलाता हो, तो सौर दिन या ३० स को $\frac{२९२८२}{३०}$ पर भाग दिया जायगा, या जो कि वही बात है, ९०० स को २९२८२ पर अवश्य भाग देना चाहिए।

ऊनरात्र दिन मालूम करने के लिए, चान्द्र दिनों का ६३ $\frac{६३३७९}{६९६७३}$ पर भाग दिया जाना आवश्यक है (देखो पृष्ठ ६२ पंक्ति ८ की टिप्पणी)।

अब ६३ $\frac{६३३७९}{६९६७३}$ बराबर है $\frac{७०३\frac{४३९}{६९६७३}}{११}$ या काफ़ी दुरुस्ती के साथ, $\frac{७०३\frac{२}{३००}}{११}$ के या कम से कम $\frac{२१०९०२}{३३००}$ के बराबर। इस प्रकार इस रीति के गुणनों और विभाजनों की व्याख्या हो गई।

जो ध्रुव संख्याएँ जोड़ी जायँगी वे इस गणनारम्भ में अन्तर्निरूढ़ हैं। संवत् ८८८ शककाल चतुर्युग के संवत् ३, २४४, ०६७ के अनुरूप हैं; ३,२४४,०६७ वर्ष बराबर हैं ३८, ९२८, ८०४ सौर मासों, या १, १६७, ८६४, १२० सौर दिनों के। इन सौर मासों को ६६,३८९ से गुणा करने और २,१६०,००० पर भाग देने से १, १९६, ५०२ $\frac{४०६३}{१८००००}$ अधिमास महीने या ३५, ८९५, ०६० अधिमास दिन प्राप्त होते हैं। इसको १, १६७, ८६४, १२० सौर दिनों में जोड़ देने से १, २०३, ७५९, १८० चान्द्र दिन प्राप्त होते

हैं। इस संख्या का ग्यारह गुना बराबर है १३,२४१,३५०,६८० के; यह पिछली संख्या १११, ५७३ पर भाग देने से ११८६७८ $\frac{६०४८६}{१११५७३}$, या निकटतम संख्या ११८, ६७६ देती है। इसको १३, २४१, ३५०, ६८० में से घटाने से अवशेष १३, २४१, २३२, ३०१ रहता है, जो ७०३ पर भाग दिये जाने से १८, ८३५, ३०३ $\frac{२३२}{७०३}$ ऊनरात्र दिन देता है; इन दिनों को चान्द्र दिनों में से घटाने से नागरिक दिनों की संख्या १,१८४,६२३,८५७ निकलती है। इस अन्तिम संख्या को ७ पर भाग देने से ५ अवशेष रहता है; और क्योंकि वर्तमान युग के पहले अन्तिम दिन सोमवार था (देखो पृष्ठ ४३ पंक्ति ३) इसलिए यहाँ ग्रहण किया हुआ गणनारम्भ से पूर्व अन्तिम दिन शनिवार है, इसलिए उस गणनारम्भ से लेकर बीती हुई दिनों की कोई भी संख्या, ७ पर भाग दिये जाने पर, रविवार को १ मानकर गिनने से सप्ताह के दिन को अवशेष से दिखलायगी। इस गणनारम्भ का पहला दिन जूलियन काल के दिन २, ०७३, ६७३ के अनुरूप है। हमने अपने गणनारम्भ में अधिमास महीने का अपूर्णाङ्क $\frac{४०६३}{१८.०००}$ पाया

है, जो कि $\frac{६६० \frac{१७२७६६}{१८६०००}}{२६२८२}$ या बहुत लगभग $\frac{६६१}{२६२८२}$ अधिमास के बराबर है, इसलिए हमें २६२८२ पर भाग देने से पहले ६६१ अवश्य बढ़ा देने चाहिएँ।

ऊनरात्र दिनों का अपूर्णाङ्क $\frac{२३२}{७०३}$ बराबर है $\frac{६६, ६०० \frac{४६१}{७०३}}{२१०६०२}$ या

लगभग $\frac{६६६०१}{२१०६०२}$ के। इसलिए २१०, ६०२ पर भाग देने के पहले

६६, ६०१ का बढ़ाना आवश्यक है। अलबेरूनी ने इस संख्या ६,६६०१ के बदले संख्या ६४,१०६, का और ६ की जगह ४ का प्रयोग किया है, और पिछली तीन संख्याओं को उलट दिया है (Schram)।

पृष्ठ ६७ पंक्ति १६—हमारे पास ७८० मास थे; उनमें २३ अधिमास महीने जोड़ने से ८०३ मास हो जाते हैं, जिनको ३० से गुणा करने से २४०६० नहीं वरन् २४०६० दिन होते हैं। इसके बाद के सभी दोषों का कारण यही दोष है (Schram)।

पृष्ठ ६७ पंक्ति २१—यह इस प्रकार चाहिए "उसमें ६६, ६०१ जोड़ने से, ७६,५६६,६०१ योगफल होता है। इसको २१०, ६०२ पर भाग देने से, भाग-फल ३७७, अर्थात् ऊनरात्र दिन, और अवशेष $\frac{५६६४७}{२१०६०२}$, अर्थात् अवमस निकलते हैं।" (अरबी प्रति पृष्ठ ११४, १७, में हस्तलेख का पाठ बदलना नहीं चाहिए था।) ठीक परिणाम २३, ७१३ नागरिक दिन हैं। यदि हम इस संख्या को ७ पर भाग दें, तो अवशेष ४ मिलता है, जो कि फिर यही दिखलाता है कि हमारी मान-तिथि के पहले अन्तिम दिन बुधवार है। २३, ७१३ को २,०७३, ६७३ में बढ़ाने से हम पहली चैत्र के लिए ६५३ पाते हैं जो कि जूलियन काल का दिन २, ०६७, ६८६ है, और यही होना चाहिए था (Schram)।

पृष्ठ ६७ पंक्ति २३—३०७ के स्थान में ३७७ पढ़िए।

पृष्ठ ६८ पंक्ति ४—यह रीति पहली रीतियों की अपेक्षा कम ठीक संख्याओं के साथ काम करती है। यह मान लिया गया है कि एक अधिमास महीना ३२$\frac{४}{७}$ सौर मासों में पूरा होता है। इसलिए सौर मासों को ३२$\frac{४}{७}$ पर या $\frac{२२८}{७}$ पर भाग दिया जाता है, या, जो कि एक

ही बात है, उनको $\frac{७}{२२८}$ से गुणा किया जाता है। क्योंकि ऊनरात्र दिन के बनने का समय यहाँ केवल ६३ $\frac{१०}{११}$ माना गया है, और चान्द्र दिनों का ६३ $\frac{१०}{११}$ या $\frac{७०३}{११}$ पर भाग किया जाता है, या, जो कि एक ही बात है, उनको $\frac{११}{७०३}$ से गुणा किया जाता है। गणनारम्भ संवत् ४:७ शककाल या चतुर्युग के संवत् ३, २८३, ६०६ के अनुरूप है। वर्षों की यह संख्या ३८,९२३,२७२ सौर मासों के बराबर है जिनको ६६,३८९ से गुणा करने और २,१६०,००० पर भाग देने से १,१९६,३३१ $\frac{२९७८९}{३००००}$ अधिमास निकलते हैं। ग्रन्थकर्त्ता ने १,१९६,३३२ अधिमास महीने लेकर छोटे से अपूर्णाङ्क $\frac{२११}{३००००}$ की उपेक्षा कर दी है, इसलिए उसके पास अधिमासों का कोई अपूर्णाङ्क नहीं। इन १,१९६,३३२ अधिमासों को ३८,९२३,२७२ सौर मासों में बढ़ाने से ४०,११९,६०४ चान्द्र मास, या १,२०३,५८८,१२० चान्द्र दिन बनते हैं। ११ से गुणा करने से १३,२३९,४६९,३२० होते हैं; इनको १११,५७३ पर भाग देने से ११८,६६१ $\frac{१०५५६७}{१११५७३}$ या ११८,६६२ प्राप्त होते हैं। इनको १३,२३९,४६९, ३२० में से घटाने से १३,२३९,३५०,६५८ रहते हैं, जिनको ७०३ पर भाग देने से ऊनरात्र-दिनों की संख्या १८,८३२, ६४६ $\frac{५२०}{७०३}$ निकलती है। अतएव ऊनरात्र दिनों का अपूर्णाङ्क $\frac{५२०}{७०३}$ है, जो कि इस रीति के कर्त्ता द्वारा गृहीत, अर्थात् $\frac{५१४}{७०३}$ के बहुत निकट है। चान्द्र दिनों में से ऊनरात्र दिन घटाने से नागरिक दिनों की संख्या के रूप में हमें १,१८४, ७५५,४७४ मिलते हैं जो कि ७ पर विभाज्य हैं। अतएव, क्योंकि

चतुर्युग के पहले अन्तिम दिन सोमवार था, इसलिए इस गणनारम्भ के पहले अन्तिम दिन भी सोमवार है, और इस गणनारम्भ के बाद से बीते हुए दिनों की संख्या को ७ पर भाग देने से एक ऐसा अवशेष निकलता है जो, मङ्गलवार को १ गिन कर, सप्ताह-दिन को दिखलाता है। इस गणनारम्भ का प्रथम दिन जूलियन काल के दिन १, ९०५,५९० के अनुरूप है (Schram)।

पृष्ठ ६८ पंक्ति १७—यह बात आसानी से समझ में आ जाती है कि यह रीति यवन-सिद्धान्त क्यों कहलाती है। यह मान लिया गया है कि एक अधिमास ३२ $\frac{४}{७}$ या $\frac{२२८}{७}$ सौर मासों में पूरा होता है। अब $\frac{२२८}{७}$ सौर मास $\frac{१९}{७}$ सौर वर्षों के बराबर हैं। इसलिए यह रीति यवनों (यूनानियों) के उन्तीस वर्षों के कालचक्र का प्रयोग भासती है।

पृष्ठ ६९ पङ्क्ति ५—३२ मास १७ दिन ८ घटी और ३४ चषक और कुछ नहीं, केवल ३२ $\frac{४}{७}$ मासों को कहने का एक दूसरा ढँग है।

पृष्ठ ६९ पंक्ति ११—नागरिक दिनों की संख्या १९२०९६ है; ७ पर भाग देने से २ अवशेष रहता है। क्योंकि इस रीति में (देखो पृष्ठ ६८ पङ्क्ति ४ पर टीका) मङ्गलवार को १ गिना जाता है, इसलिए यह हमारी मान-तिथि के पूर्व अन्तिम दिन बुधवार ठहरा देती है। १९२,०९६ को १,९०५,५९० में जोड़ने से पहली चैत्र के तौर पर हम ९५३ पाते हैं, जो कि, जैसा कि होना ही चाहिए, जूलियन काल का दिन २,०९७,६८६ है (Schram)।

पृष्ठ ६९ पंक्ति १९—अल-हरकन—इस पुस्तक का उल्लेख केवल इसी वाक्य में हुआ है। ग्रन्थकार इसे पञ्चाङ्ग, (ژیچ) अर्थात् नक्षत्र-विद्या,

फलित-ज्योतिष, और काल-गणना-सम्बन्धी तालिकाओं और गणनाओं का संग्रह कहता है। यह कोई मौलिक अरबी पुस्तक थी, या संस्कृत से अनूदित थी, या इसका मूल क्या था, इसका हमें ग्रन्थकर्त्ता से कुछ भी पता नहीं चलता। यह शब्द अहर्गण का अरबी रूपान्तर प्रतीत होता है। अलबेरूनी इस पुस्तक से एक संवत् का परिसंख्यान उद्धृत करता है जिसका गणनारम्भ फ़ारसी संवत् के गणनारम्भ से ४०, ०८१ दिन पीछे होता है, और इसकी तुलना मान-तिथि के साथ करता है (पृष्ठ ७०)।

पृष्ठ ६९ पंक्ति २३—यदि यह गणनारम्भ संवत् यज़्दजिर्द के गणनारम्भ से ४०, ०८१ दिन बाद आया तो यह संवत् ६६४ शककाल की पहली चैत्र को आयगा; परन्तु बात ऐसी नहीं। सन् १९७ के शाबान मास की पहली वैशाख ७३५ के आरम्भ के अनुरूप है। क्योंकि ७२ वर्षों को घटाना है, इसलिए हम वैशाख ६६३ पर, आयँगे, और वर्ष के आदि से आरम्भ करने के लिए, गणनारम्भ को चैत्र ६६४ तक स्थगित कर देना आवश्यक है। परन्तु इसका कुछ महत्व नहीं, क्योंकि हम दिखायँगे कि अलबेरूनी यहाँ फिर इस रीति को ठीक तौर पर नहीं समझा (Schram)।

पृष्ठ ७० पंक्ति २—ये दोनों तिथियाँ दिनों तक नहीं मिलतीं। पहली फ़रवेरदिन माह यज़्दजिर्द १६ वीं जून ६३२ के अनुरूप है; ४०,०८१ दिन पीछे सोमवार, १२ वीं मार्च ७४२ था। इधर यज़्दजिर्द के सन् ११० की २१वीं दैमाह रविवार, ११ वीं मार्च ७४२ के अनुरूप है। परन्तु स्वयं तिथि के अशुद्ध होने के कारण इसका कुछ महत्व नहीं (Schram)।

पृष्ठ ७० पंक्ति ४—क्योंकि इस रीति में गुणन और विभाजन बनानेवाली संख्याएँ पञ्चसिद्धान्तिका (पृष्ठ ६८) की संख्याओं से अभिन्न

हैं, इसलिए हम वहाँ दिये हुए आदेशों के अनुसार स्थिरों का हिसाब लगा सकते हैं। अल-हरकन की विधि का गणनारम्भ सन् १६७ के शाबान मास का आरम्भ है। परन्तु यह तिथि वैशाख ७३५ शककाल के आरम्भ के अनुरूप है। अतएव इस तिथि के लिए हमें निम्न-लिखित गणना चाहिए—४२७ को ७३५ वर्ष और १ मास में से घटाने से, ३०८ वर्ष १ मास, या ३६९७ मास प्राप्त होते हैं; ३६९७ को ७ से गुणा करने और २२८ पर भाग देने से अधिमास मासों की संख्या ११३$\frac{११५}{२२८}$ मिलती है; ११३ अधिमास महीनों का ३६९७ सौर मासों में योग करने से ३८१० चान्द्र मास, या ११४, ३०० चान्द्र दिन निकलते हैं। इस संख्या को ११ से गुणा करने से १, २५७, ३०० होता है; हम ५१४ का योग करते हैं जिससे १, २५७, ८१४ हो जाते हैं; इसको ७०३ पर भाग देने से ऊनरात्र दिनों की संख्या१७८९$\frac{१४७}{७०३}$ निकलती है। यदि, वास्तव में, यह गणनारम्भ सच्चा गणनारम्भ हो, तो हमारे गणनारम्भ के लिए जिन संख्याओं का प्रयोजन है वे सब हमें मिल जानी चाहिएँ। परंतु हमें अन्तर में ८६४ मास बढ़ाना है। इसलिए ये ८६४ मास, जिनका बढ़ाना सदैव आवश्यक है, गणनारम्भ में से पहले अवश्य घटा देने चाहिएँ जिससे यह शेषोक्त ७२ वर्ष पीछे जा पड़ता है। अब ७२ वर्ष या ८६४ सौर मासों को ७ से गुणा करने और २२८ पर भाग देने से २६$\frac{१२०}{२२८}$ अधिमास महीनों की संख्या प्राप्त होती है। ये ८६४ सौर मासों के साथ मिलकर ८९० चान्द्र मास या २६,७०० चान्द्र दिन होते हैं, जो ११ से गुणा करने और ७०३ पर भाग देने से ४१७$\frac{५४९}{७०३}$ ऊनरात्र दिन देते हैं। अतएव हमें पहले मालूम की

हुई संख्याओं में से २६$\frac{१२०}{२२८}$ अधिमास महीने और ४१७$\frac{५४६}{७०३}$ ऊनरात्र दिन घटाना है। तब हमारे सच्चे गणनारम्भ में अन्तर्निरूढ़ अधिमास महीनों की संख्या ११३$\frac{११५}{२२८}$—२६$\frac{१३०}{२२८}$ = ८६$\frac{२२३}{२२८}$ या काफ़ी दुरुस्ती के साथ अपूर्णाङ्क के बिना ८७ और ऊनरात्र दिनों की संख्या १७८९$\frac{१४७}{७०३}$—४१७$\frac{५४६}{७०३}$ = १३७१$\frac{३०१}{७०३}$ होगी। इसलिए अधिमास महीनों में कोई अपूर्णाङ्क नहीं बढ़ाना, किन्तु ऊनरात्र दिनों में $\frac{३०१}{७०३}$ या लगभग $\frac{११ \times २८}{७०३}$ अवश्य बढ़ाना चाहिए। इसलिए $\frac{११}{७०३}$ से गुणा करने के पहले हमें अवश्य २८ (३८ नहीं) बढ़ाने चाहिएँ। पहले गणनारम्भ के ११४, ३०० चान्द्र दिनों में से ७२ वर्षों के २६, ७०० चान्द्र दिन कम कर देने से ८७, ६०० चान्द्र दिन रह जाते हैं। इसलिए १३७१ ऊनरात्र दिन घटाने से ८६, २२९ नागरिक दिन रहते हैं। इनको ७ पर भाग देने से ३ अवशेष बचता है। अतएव इस गणनारम्भ के पूर्व अन्तिम दिन गुरुवार है, और इस रीति के गणनारम्भ से लेकर वीते हुए दिनों की संख्या, यदि उसे ७ पर भाग दिया जाय तो, शुक्रवार को १ मानकर गिनने से, सप्ताह-दिवस को दिखानेवाला अवशेष देती है। इस गणनारम्भ का पहला दिन जूलियन काल के दिन १,९९१,८१९ के अनुरूप है (Schram)।

पृष्ठ ७० पंक्ति १३—यह २८ होना चाहिए, ३८ नहीं (पूर्ववर्ती टीका देखिए) (Schram)।

पृष्ठ ७० पंक्ति १७—यदि हम तिथि से पूर्व अन्तिम दिन का सप्ताह-दिन नहीं, वरन् स्वयं तिथि का सप्ताह-दिन मालूम करना चाहते हैं तो हमें अवश्य १ बढ़ाना चाहिए।

पृष्ठ ७० पंक्ति १८—यहाँ शुक्रवार को सप्ताह का प्रथम दिन समझा

गया है, भारतीय पुस्तकों के सदृश. रविवार को नहीं। इसका सङ्केत अवश्य हो जाना चाहिए था (Schram)।

पृष्ठ ७० पंक्ति २०—अलहरकन की इस रीति पर अलबेरूनी की टिप्पणियाँ कदाचित् उसकी रचना का निर्बलतम भाग हैं। उसकी पहली ही टिप्पणी से प्रकट होता है कि समग्र गणना को समझने में उसे पूर्ण भ्रान्ति हुई है। यह रीति बिलकुल ठीक है. क्योंकि जिन बहत्तर वर्षों के साथ इसका आरम्भ होता है वे सौर हैं। यदि वे, जैसा कि अलबेरूनी ने मान लिया है, चान्द्र हों, और शेष मास भी, जैसा कि उसने समझा है, चान्द्र हों, तो गणना सर्वथा निरर्थक हो जायगी; क्योंकि अधिमास महीनों का मालुम करना उस संख्या को मालूम करने के सिवा और कुछ नहीं जिसका जोड़ना सौर मासों को चान्द्र मासों में बदलने के लिए आवश्यक है। परन्तु जब मास पहले ही चान्द्र हैं, तो फिर उनको दुबारा चान्द्र बनाने के लिए उनमें कोई चीज़ कैसे जोड़ी जा सकती है ? (Schram)।

पृष्ठ ७० पंक्ति २४—स्वयं रीति के विषय में उसकी टिप्पणी भी वैसी ही भ्रान्त है जैसा कि उसका दृष्टान्त : जो भी व्यक्ति पृष्ठ ६९ पर दी हुई रीति की परीक्षा करेगा उसे यह अवश्य स्पष्ट हो जायगा कि इन शब्दों (पंक्ति ५) "इनमें वे मास जोड़ दो जो सन् १०७ के शाबान की १ली और उस मास की १ली के बीच व्यतीत हुए हैं जिसमें तुम दैवयोग से हो" से केवल सौर मास ही अभिप्रेत हो सकते हैं। ग्रन्थकर्त्ता ने "पहली वैशाख ७३५" कहकर आद्य गणनारम्भ को भारतीय पञ्चाङ्ग में स्थिर करने के बदले "१ शाबान १९७" कहकर इसको अपने पञ्चाङ्ग में स्थिर किया। इस अकिञ्चित्कर आकस्मिक अवस्था के कारण ही अल-बेरूनी ने यह समझ लिया कि उसे चान्द्र मासों में अन्तर लेना है,

क्योंकि अरबी पञ्चाङ्ग में केवल चान्द्र मास होते हैं। उसने यह नहीं देखा कि गणना के इस भाग में चान्द्र मास सर्वथा असम्भव हैं। वास्तव में, उदाहरण में, वह अन्तर को चान्द्र मासों में लेता है, क्योंकि पहली शाबान १९७ और पहली रब्बी १. ४२२ के बीच २९९५ चान्द्र मास हैं, और इन २९९५ चान्द्रमासों में वह ८९४ मास जोड़ता है जिनको वह जानता है कि वे सौर हैं। तब वह इन सब मिश्रित मासों को, जिनका अधिकतम अंश पहले ही चान्द्र है, चान्द्रमासों में बदलता है, मानों वे सब सौर हों, और अन्त को उसे परिणाम को निरर्थक देखकर आश्चर्य होता है, और वह इस रीति का संशोधन करने का यत्न करता है। इस बात में एक मात्र दोष यह है कि वह रीति को नहीं समझा।

यदि हम अपनी मान-तिथि, अर्थात् पहली चैत्र ९५३ शककाल की अवस्था में, अलहरकन की पद्धति का निदर्शन करना चाहें, तो हमें इस प्रकार क्रिया करनी चाहिए—९५३ वर्षों में से ७३५ वर्ष १ मास घटाने से हमें अन्तर के रूप में २१७ वर्ष ११ मास या २६१५ सौर मास मिलते हैं; इनमें ८९४ सौर मास जोड़ने से ३४७९ सौर मास बनते हैं। इनको ७ से गुणा करने और २२८ पर भाग देने से अधिमासों की संख्या के रूप में १०६ $\frac{१८९}{२२८}$ प्राप्त होते हैं; १०६ अधिमासों को ३४७९ सौर मासों में जोड़ने से, ३५८५ चान्द्र मास, या १०७, ५५० चान्द्र दिन प्राप्त होते हैं। हम २८ जोड़ते और १०७, ५७८ को ११ से गुणा करके १, १८३, ३५८ प्राप्त करते हैं। इस पिछली संख्या को ७०३ पर भाग देने से ऊनरात्र दिनों की संख्या १६८३ $\frac{२०९}{७०३}$ निकलती है। १६८३ ऊनरात्र दिनों को १०७, ५५० चान्द्र दिनों में से घटाने से, १०५, ८६७ नागरिक दिन प्राप्त

होते हैं। पहली चैत्र ९५३ का सप्ताह-दिन मालूम करने के लिए हम १ जोड़ते हैं, और ७ पर भाग देने से ७ अवशेष रहता है। क्योंकि यहाँ शुक्रवार को १ माना गया है, इसलिए ७ गुरुवार के अनुरूप है, और पहली चैत्र ९५३ गुरुवार पाई गई है। १०५, ८६७ को १, ९९१, ८१९ में जोड़ने से पहली चैत्र संवत् ९५३ के लिए, जैसा कि चाहिए, जूलियन काल का दिन २, ०९७, ६८६ होता है (Schram)।

पृष्ठ ७१ पंक्ति १६—संशोधन भी वैसा ही सत्येतर है जैसा कि स्वयं उदाहरण था। २५, ९५८ दिन यज़्दजिर्द के गणनारम्भ के ४०, ०८१ दिन बाद पड़नेवाले गणनारम्भ से लेकर पहली शाबान १९७ तक गिने जाते हैं। किन्तु २५, ९५८ दिन बराबर हैं ८७९ अरबी मास, या ७३ वर्ष और ३ मास के। फिर, वह दुबारा अन्तर को चान्द्र मासों में लेता है, जिससे अब संशोधित पद्धति में उसके पास सिवा चान्द्र मासों के और कुछ नहीं, इनको वह फिर चान्द्र मासों में बदलता है, मानों वे पहले सौर थे। अतएव वह एक ऐसी संख्या प्राप्त करता है जो कि पूर्णतः सत्येतर है, परन्तु वह उसे सत्य समझता है, क्योंकि पिछले उदाहरण में वह १ जोड़ने के स्थान में १ घटाकर एक नवीन दोष करता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न दोषों के आकस्मिक रूप से इकट्ठा हो जाने से वह दैवयोग से एक ऐसा सप्ताह-दिन पा लेता है जो हमारी मान-तिथि के पूर्व के दिन के अनुरूप है (Schram)।

पृष्ठ ७२ पंक्ति ५—क्योंकि इस रीति के गुणनों और विभाजनों का समाधान पृष्ठ ४६, ४७, ४८ और ४९ की टीकाओं में किया जा चुका है, इसलिए हमें यहाँ उन ध्रुव संख्याओं को ही जताना है जो इस गणनारम्भ में अन्तर्निरूढ़ हैं। गणनारम्भ ८५४ शककाल है, जो कि कल्प

के संवत् १, ६७२, ६४८, ०३३ के अनुरूप है। १, ६७२, ६४८, ०३३ को १२ से गुणा करने से, हमें २३, ६७५, ३७६, ३६६ सौर मास प्राप्त होते हैं, जिनको कल्प के अधिमासों, १, ५६३, ३००, ०००, से गुणा करने, और कल्प के सौर मासों, ५१, ८४०, ०००, ००० पर भाग देने से अधिमासों की संख्या के रूप में ७२७, ६६१, ५६७ $\frac{६४६३}{१४४००}$ भाग-फल प्राप्त होता है। ७२७, ६६१, ५६७ अधिमासों को २३, ६७५, ३७६, ३६६ सौर मासों में जोड़ने से २४, ४०३, ०३७; ६६३ चान्द्र मास या ७३२, ०६१, १३६, ७६० चान्द्र दिन होते हैं। इस पिछली संख्या को कल्प के ऊनरात्र दिनों, २५, ०८२, ५५०, ००० के साथ गुणा करने, और कल्प के चान्द्र दिनों, १, ६०२, ६६६, ०००, ००० पर भाग देने से ऊनरात्र दिनों की संख्या ११, ४५५, २२४, ००० $\frac{३४७४८१}{३५६२२२}$ निकलती है। ११, ४५५, २२४, ००० ऊनरात्र दिनों को ७३२, ०६१, १३६, ७६० चान्द्र दिनों में से घटाने से कल्प के आरम्भ से लेकर इस गणनारम्भ तक व्यतीत हुए नागरिक दिनों की संख्या ७२०, ६३५, ६१५, ७६० निकलती है, और इस संख्या को ७ पर भाग देने से अवशेष के रूप में ० रह जाता है। इसलिए, क्योंकि कल्प के पूर्व अन्तिम दिन शनिवार था (देखो पृष्ठ ३७ पंक्ति ८); इसलिए इस कल्प के पहले भी अन्तिम दिन शनिवार है, और इस गणनारम्भ से लेकर बीते हुए दिनों की कोई संख्या, यदि उसे ७ पर भाग दिया जाय, अपने अवशेष से, रविवार को १ मानकर गिने हुए, सप्ताह-दिन को दिखाती है। इस गणनारम्भ में अन्तर्निरूढ़ अधिमासों का अपूर्णाङ्क $\frac{६४६३}{१४४००}$ पाया जा चुका है। अब $\frac{६४६३}{१४४००}$ बराबर है $\frac{२६\frac{२४५६}{१४४००}}{६५}$

या बहुत लगभग $\frac{२६}{६५}$ के; इसलिए ६५ पर भाग देने से पहले हम २६ जोड़ देते हैं। ऊनरात्र दिनों का अपूर्णांक $\frac{३४७४८१}{३५६२२२}$ है। अब

फिर $\frac{३४७४८१}{३५६२२२}$ बराबर है $\frac{६८५\frac{२६७०७३}{३५६२२२}}{७०३}$ या लगभग $\frac{६८६}{७०३}$ के; इसलिए ७०३ पर भाग देने से पूर्व हम ६८६ जोड़ते हैं।

इस गणनारम्भ का पहला दिन जूलियन काल के दिन २,०६१,५४१ से मिलता है।

पृष्ठ ७३ पंक्ति ७—इस पद्धति में पहले सूर्य और चन्द्र के मध्यम याम्योत्तर वृत्त का अन्तर मालूम किया जाता है। संख्याएँ पुलिस की हैं। एक चतुर्युग में ४, ३२०, ००० परिभ्रमण सूर्य के, और ५७, ७५३, ३३६ परिभ्रमण चन्द्रमा के होते हैं। अन्तर, ५३, ४३३, ३३६ चान्द्र मासों की संख्या है। प्रत्येक चान्द्र मास में चन्द्रमा सूर्य से एक परिभ्रमण या ३६० अंश (डिग्री) बढ़ जाता है। ५३, ४३३, ३३६ को सौर वर्ष ४, ३२०, ००० पर भाग देने से हम एक सौर वर्ष के चान्द्र मासों की संख्या १२$\frac{१३२७७८}{३६००००}$ पाते हैं। इसलिए प्रत्येक सौर वर्ष में चाँद सूरज से १२$\frac{१३२७७८}{३६००००}$ परिभ्रमण बढ़ जाता है।

पूर्ण परिभ्रमणों को छोड़कर, जिनमें कोई स्वार्थ नहीं, चन्द्रमा सूर्य से $\frac{१३२७७८}{३६००००}$ परिभ्रमण, या, जो कि एक ही बात है, १३२ $\frac{७७८}{१०००}$ अंश बढ़ जाता है। अब $\frac{७७८}{१०००}$ अंश बराबर हैं ४६ $\frac{६८}{१००}$ या ४६ $\frac{३४}{५०}$ कला के। इसलिए प्रत्येक सौर वर्ष में चन्द्रमा सूर्य से १३२

अंश ४६ $\frac{३४}{५०}$ कला बढ़ जाता है। वर्षों की संख्या को १३२ अंश ४६ $\frac{३४}{५०}$ कला से गुणा करने से हमें उन अंशों की संख्या मिल जाती है जो निर्दिष्ट अन्तर में चन्द्रमा सूर्य से अधिक बढ़ गया है। अब यदि इस गणनारम्भ के आदि में सूर्य और चन्द्र इकट्ठे होते, तो यह सूर्य और चन्द्र के मध्यम याम्योत्तर रेखांश का अन्तर होगा। परन्तु क्योंकि यह बात केवल चतुर्युग के आरम्भ ही में थी, और हमारे गणनारम्भ के क्षण में नहीं, इसलिए सूर्य और चन्द्र के रेखांशों के बीच आद्य अन्तर है, जिसको अवश्य जोड़ना चाहिए। हमारा गणनारम्भ, या संवत् ८२१ शककाल, चतुर्युग के संवत् ३,२४४,००० के अनुरूप है। ३, २४४,००० को चान्द्र मासों की संख्या ५३,४३३,३३६ से गुणा करने, और सौर वर्षों की संख्या ४,३२०,००० पर भाग देने से, हम देखते हैं कि इन ३,२४४,००० वर्षों में चन्द्र ने सूर्य से ४०,१२४,४७७ $\frac{११२}{३६०}$ परिभ्रमण अधिक किये। फिर पूर्ण परिभ्रमणों को छोड़कर हम देखते हैं कि हमारे गणनारम्भ के क्षण में चन्द्रमा सूर्य से $\frac{३६०}{११२}$ परिभ्रमण या ११२ अंश आगे था। इस-लिए ये ११२ अंश अवश्य जोड़े जाने चाहिएँ, और इस रीति की सभी संख्याओं का समाधान इसमें मिल जाता है। हमारी मान-तिथि के लिए परिणाम, ३५८°२४१′ ४६″, उन अंशों, कलाओं और विपलों की संख्या है जो कि चन्द्रमा सौर संवत् ८२१ के आरम्भ के समय, अर्थात् उस समय जब कि सूर्य मेषराशि में प्रवेश करता है, सूर्य से आगे है। क्योंकि चान्द्र-सौर वर्ष के आरम्भ में सूर्य और चन्द्र की अवश्य ग्रहयुति हुई होगी, इसलिए चान्द्र-सौर वर्ष के आरम्भ से उतना अन्तर पहले है जो चन्द्रमा के लिए सूर्य से ३५८°

४१' ४६" बढ़ जाने के लिए ठीक पर्याप्त था । चन्द्रमा प्रत्येक चान्द्र मास या ३० चान्द्र दिनों में ३६० अंश प्राप्त करता है, इसलिए वह प्रत्येक चान्द्र दिन में ३०° प्राप्त करता है । अतएव ३५८° ४१' ४६" को १२ पर भाग देने से हमें उतने चान्द्र दिन और अपूर्णाङ्क मिलते हैं जितने कि चान्द्र-सौर वर्ष सौर वर्ष के पहले आरम्भ हुआ था । चान्द्र दिनों के अपूर्णाङ्कों को घटियों और चषकों में बदल दिया जाता है । इससे हम पाते हैं कि चान्द्र-सौर वर्ष सूर्य के मेषराशि में प्रविष्ट होने के २९ दिन, ५३ घटी, २९ चषक पहले आरम्भ हुआ था। यह पृष्ठ ४० पङ्क्ति ४१ पर पाये हुए अधिमास के अपूर्णाङ्क के अनुरूप है । क्योंकि $\frac{४४८३७}{४५०००}$ अधिमास भी २९ दिन ५३ घटी २९ चषक के बराबर है । संख्या २७ दिन २३ घटी २९ चषक जो वह देता है, पृष्ठ ७४ पङ्क्ति २ वह ३५८° १४' ४६" को नहीं, वरन् ३२८° ४१' ४६" को १२ पर भाग देने से प्राप्त होती है ।

पृष्ठ ७३ पङ्क्ति १९—अरबी हस्तलेख में ३५८ के स्थान में ३२८ है ।

पृष्ठ ७४ पङ्क्ति ९—यह संख्या १३२° ४६ $\frac{३४}{५०}$ है, और १३२° ४६' ३४" नहीं (जैसा कि अरबी हस्तलिखित प्रति में है) । इसलिए वर्षांश (portio anni) ११° ३' ५२" ५०‴ नहीं, वरन् ११ दिन ३ घटी ५३ चषक २४" है : और मासांश (portio mensis) ०° ५५' १९" २४‴ नहीं, वरन् ० दिन ५५ घटी १९ चषक २७" है ।

इस गणना का कारण यह है—एक वर्ष या १२ सौर मासों में चन्द्रमा सूर्य से १३२° ४६ $\frac{३४}{५०}$ बढ़ जाता है । क्योंकि वह प्रत्येक चान्द्र दिन में १२ अंश प्राप्त करता है, इसलिए इन अंशों का बारहवाँ भाग उन चान्द्र दिनों और उनके अपूर्णाङ्कों के योगफल,

अर्थात्, अधिमास दिनों और उनके अपूर्णाङ्कों के योगफल, को दिखायगा जो सौर वर्ष में ३६० से अधिक हैं। एक सौर मास में ० अधिमास दिन ५५ घटी १९ चषक २७″ होने से, सौर मासों की वह संख्या जिसमें एक अधिमास महीना या ३० चान्द्र दिन पूरे होते हैं ३० दिनों को ० दिन ५५ घटी १९ चषक २७″ पर भाग देने से पाई जायगी। इससे २ वर्ष ८ मास १६ दिन ३ घटी ५५ चषक निकलते हैं।

पृष्ठ ७४ पङ्क्ति १४—यहाँ अवश्य बहुत से अक्षरों को कीड़ा खा गया है, क्योंकि इस पृष्ठ की पहली पंक्तियों का कुछ भी अर्थ नहीं निकलता। जिस स्रोत से अर्थात् करणसार के अरबी अनुवाद से, ग्रन्थकार ने यह जानकारी ली है, मैं समझता हूँ उसी का बहुत सा भाग कीड़े खा गये थे।

पृष्ठ ७४ पंक्ति १२—यह गणना निम्नलिखित ढँग से होनी चाहिए—कलियुग के दिनों की संख्या को कल्प के नक्षत्र-चक्रों से गुणा करके कल्प के नागरिक दिनों, अर्थात् १,५७७,९१६,४५०,०००,पर भाग दिया जाता है। इससे हमें कलियुग के आरम्भ से लेकर जो समय व्यतीत हुआ है उसमें किसी नक्षत्र ने जितने परिभ्रमण और परिभ्रमण का अंश पूरा किया है मालूम हो जाता है। परन्तु कलियुग के आरम्भ में सभी ग्रहों की युति नहीं थी; यह बात केवल कल्प के आरम्भ में ही थी। इसलिए कलियुग के आरम्भ से परिभ्रमणों के जो अपूर्णाङ्क ग्रह ने बनाये थे उनमें स्वयं इस आरम्भ पर उसकी स्थिति, अर्थात् उस परिभ्रमण का अपूर्णाङ्क जो प्रत्येक ग्रह कलियुग के आरम्भ में रखता था, अवश्य जोड़ना चाहिए और पूर्ण परिभ्रमणों को उनसे कोई लाभ न होने के कारण, छोड़ देना चाहिए। परन्तु ब्रह्मगुप्त कल्प के नागरिक दिनों पर भाग देने से पहले इन संख्याओं का

योग करता है, और यह बिलकुल स्वाभाविक है। इस क्रिया में दोनों अपूर्णाङ्कों का भागहार एक ही है। इसलिए जिसे वह आधार कहता है वह कलियुग के आरम्भ में प्रत्येक ग्रह का अपूर्णाङ्क गुणित कल्प के नागरिक दिन होना चाहिए; परन्तु उसने भारी भूल की है। अपूर्णाङ्कों को कल्प के नागरिक दिनों अर्थात् १, ५७७, ६१६, ४५०,००० से गुणा करने के स्थान में उसने उनको कल्प के वर्षों अर्थात् ४,३२०,०००,००० से गुणा कर दिया है। इसलिए पृष्ठ ७८ और ७९ पर आधारों के रूप में दी हुई सभी संख्याएँ सर्वथा भ्रान्त हैं। प्रत्येक ग्रह के लिए अपूर्णाङ्क और आधार मालूम करने के लिए हमारे पास यह गणना है—कल्प के आरम्भ से लेकर कलियुग के आरम्भ तक १, ९७२, ९४४, ००० वर्ष व्यतीत हुए हैं; इसलिए कलियुग के आरम्भ में ग्रहों की स्थितियाँ मालूम करने के लिए हमें प्रत्येक ग्रह के परिभ्रमणों को १, ९७२. ९४४, ००० से गुणा करना, और उनको कल्प के वर्षों ४,३२०,०००,००० पर भाग देना चाहिए। क्योंकि इन दोनों संख्याओं का सामान्य हार ४३२,००० है, इसलिए हम प्रत्येक ग्रह के परिभ्रमणों को ४५६७ से गुणा करते, और उनको १०,००० पर भाग देते हैं। इससे हमें कलियुग के आरम्भ में ग्रह की स्थिति मालूम हो जायगी। अकहरे ग्रहों के लिए हमारी गणना इस प्रकार है—मङ्गल के लिए, २,२९६,८२८,५२२ परिभ्रमणों को ४५६७ से गुणा और १०,००० पर भाग देने से १,०४८,९६१, ५८५ $\frac{६६७४}{१००००}$ परिभ्रमण प्राप्त होते हैं; इसलिए कलियुग के आरम्भ में मङ्गल का स्थान परिभ्रमण का $\frac{६६७४}{१००००}$ है।

बुध के लिए, १७,९३६,९९८,९८४ परिभ्रमणों को ४५६७ से गुणा करने, और १०,००० पर भाग देने से ८,१९१, ८२७,४३५

$\frac{९९२८}{१००००}$ परिभ्रमण निकलते हैं; इसलिए बुध का स्थान $\frac{९९२८}{१००००}$ परिभ्रमण है।

बृहस्पति के लिए, ३६४,२२६,४५५ परिभ्रमणों को ४५७६ से गुणा करने और १०,००० पर भाग देने से १६६, ३४२, २२१ $\frac{९९८९}{१००००}$ परिभ्रमण निकलते हैं, इसलिए उसका स्थान $\frac{९९८९}{१००००}$ परिभ्रमण है।

शुक्र के लिए, ७,०२२, ३८६, ४६२ परिभ्रमणों को ४५६७ से गुणा करने और १०,००० पर भाग देने से ३,२०७,१२५,२८० $\frac{९९६४}{१००००}$ प्राप्त होते हैं; इसलिए उसकी स्थिति $\frac{९९६४}{१००००}$ परिभ्रमण है।

शनि के लिए, १४६, ५६७, २९८ परिभ्रमणों को ४५६७ से गुणा करने और १०,००० पर भाग देने से ६६,९३७, २८४ $\frac{९९६६}{१००००}$ परिभ्रमण प्राप्त होते हैं; और उसका स्थान $\frac{९९६६}{१००००}$ परिभ्रमण है।

सूर्य के उच्चस्थान (apsis) के लिए, ४८० परिभ्रमणों को ४५६७ से गुणा करने और १०,००० पर भाग देने से २१९ $\frac{२१६०}{१००००}$ परिभ्रमण प्राप्त होते हैं; और उसकी स्थिति $\frac{२१६०}{१००००}$ परिभ्रमण है।

चन्द्रमा के 'उच्चस्थान' के लिए, ४८८,१०५,८५८ परिभ्रमणों को ४५६७ से गुणा करने और १०,००० पर भाग देने से २२२, ९१७, ९४५ $\frac{३४८६}{१००००}$ परिभ्रमण प्राप्त होते हैं; और इसका स्थान $\frac{३४८६}{१००००}$ परिभ्रमण है। चन्द्रमा के पात (nod) के लिए, २३२,३११, १६८ परिभ्रमणों को ४५६७ से गुणा करने और १०,००० पर भाग

देने से १०६,०६६,५१० $\frac{४२५६}{१००००}$ परिभ्रमण प्राप्त होते हैं; और इसकी स्थिति $\frac{४२५६}{१००००}$ परिभ्रमण है।

अब प्रत्येक ग्रह की स्थिति को १,५७७,६१६,४५०,००० से गुणा करने से हमें अकहरे ग्रहों के लिए निम्नलिखित आधार प्राप्त होते हैं—

सङ्गल के लिए, १,५७३,८१२,८६७,२३०।
बुध " १,५६६,५५५,४५१,५६०।
बृहस्पति " १,५७५,५४६,५७५,३२५।
शुक्र " १,५७२,२३५,६५०,७८०।
शनि " १,५७२,५५१,५३४,०७०।
सूर्य के उच्चस्थान के लिए ३४०,८२६,६५३,२००।
चन्द्रमा के उच्च स्थान " ५५०,०६१,६७४,४७०।
राहु " " " ६७१,५६१.२४१,१२० (Schram)।

पृष्ठ ८८ पंक्ति २—सन् १६१ हिजरी—पृष्ठ १५ के अनुसार सन् १५४ हिजरी था।

पृष्ठ ६४—ग्रहों के भ्रमण-पथों के साथ तुलना करो सूर्यसिद्धान्त १२. ६० टिप्पणी।

पृष्ठ ६८—इन पृष्ठों की अरबी परिभाषा के सम्बन्ध में, यह बात ध्यान देने योग्य है—

(१) القطر المعدل का अर्थ है सच्चा अन्तर = संस्कृत मन्दकर्ण।

(२) القطر المقوم का अर्थ है छाया के सिरे की सच्ची दूरी; और

(३) Sinus totus جيب الكل = संस्कृत त्रिजीवा या त्रिज्या का अर्थ है तीन राशियां या ६०° अंशों की त्रिज्या, अर्थात् व्यासार्ध।

पृष्ठ ६६ पंक्ति ३—त च = ٹچ के स्थान में अरबी हस्तलेख में क च کچ है, जिसका डाक्टर श्रम (Schram) ने संशोधन कर दिया है।

पृष्ठ १०१ पंक्ति ४—कीड़े के खाये हुए स्थान में अवश्य इस प्रकार का पाठ होगा—

"क्योंकि क च को स्मृति में रक्खे हुए हार पर भाग देना चाहिए।" (Schram)।

पृष्ठ १०४ पंक्ति ७—यह और इसके बाद के दो वचन स्पष्ट नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि अलबेरूनी विषय को नहीं समझा, क्योंकि छाया न तो सबसे बड़ी, न मध्यम, वरन् सच्ची छाया है; और जिस छाया में से घटाना है, अर्थात् १५८१, वह पृथ्वी के व्यास के सिवा और कुछ नहीं। यह व्यास भी न मध्यम, न महत्तम, वरन् सदा एक सा है (Schram)।

पृष्ठ १०५—अलख़्वारिज़्मी का यहाँ और दूसरे भाग में (ग्रहणों के विविध वर्णों के सम्बन्ध में) उल्लेख हुआ है। फ़िहरिस्त पृष्ठ १४० के अनुसार उसने सिन्दहिन्द (ब्रह्मसिद्धान्त) का एक संक्षेप रचा था। वह बीजगणित पर एक पुस्तक के कर्त्ता के रूप में प्रसिद्ध है। इस पुस्तक का सम्पादन श्रो० रोज़न (लण्डन, १८३१) ने किया है। तुलना करो L. Rodet, L 'Algebre d' Alkhwarizmi et les Methodes Indienne et Grecque "Journal Asiatique", 101 (1878) pp. 5 seq.

पृष्ठ १०६—दो सूर्य, दो चन्द्र, इत्यादि— यह सिद्धान्त तथा शब्द मछली, (ध्रुव तारे के लिए एक नाम) जैन-मूलक है। Cf. Colebrooke Essays, ii, 201.)

पृष्ठ १११—नक्षत्रों की इस तालिका के साथ तुलना कीजिए डाक्टर थीबो (Thibaut) के "ब्रह्मगुप्त इत्यादि के अनुसार विभिन्न नक्षत्रों

को बनानेवाली तारकाओं की संख्या" पर निबन्ध, "दि इण्डियन एण्टिक्वेरी", १८८५, पृ० ४३; के साथ; एवं कोलब्रुक, "एसेज़", ii, २८४, तथा सूर्यसिद्धान्त, पृ० ३२१।

पृष्ठ ११७ पंक्ति २०—अरबी पाठ में, पृष्ठ ۱۳۰ १५, الفين की जगह الفي पढ़िए। वर्षों की संख्या २८०० नहीं, १८०० है।

पृष्ठ ११८ कालांशक—इस परिभाषा (तथा कालांश) की व्याख्या सूर्यसिद्धान्त, ६. ५ की टिप्पणी में की गई है।

ग़ुर्रा तुलज़ोजात नामक पुस्तक का उल्लेख एक ही बार हुआ है। यह, कदाचित्, किताबुल ग़ुर्रा से अभिन्न है, जिसका अवतरण अल-बेरूनी अपनी "कालगणना" (मेरा अनुवाद पृष्ठ १५ et passim) में देता है। इसका रचयिता अबूमुहम्मद अलनाइब अलामुली था। इसने याक़ूब इब्न तारिक़ के ग्रन्थ का उपयोग किया है।

पृष्ठ ११८ पंक्ति १६—खण्डखाद्यक का संशोधन (एवं पृष्ठ ११९ पर), अर्थात् उत्तर खण्ड करणतिलक के कर्त्ता विजयनन्दिन् (पंक्ति ४) पर तुलना करो दूसरा भाग टीका।

पृष्ठ १३२—यहाँ पर्वतों की परिगणना मत्स्य पुराण से ली गई है। इसकी पड़ताल विष्णु पुराण, ii १४१, टीका २, और ii.१९१ seq. की सहायता से की जा सकती है। अन्तिम नाम अरबी में वहाशीर लिखा है, जिसको मैं किसी भारतीय नाम के साथ नहीं मिला सका। कदाचित् महाशीर को भूल से ऐसा लिख दिया गया हो। महाशीर महाशैल का अपभ्रंश हो सकता है। देखो विष्णु पुराण, II. iv. p. 197

पृष्ठ १३२—और्व के उपाख्यान पर तुलना कीजिए विष्णु पुराण, III. viii. p. 81. note.

पृष्ठ १३३—प्रजापति की पुत्रियों (राशियों) के पति सोम की कथा का बीज पहले ही वैदिक काल में पाया जाता है। तुलना कीजिए H. Zimmer, Altindisches Leben, pp. 355 375.

पृष्ठ १३७—जुआर और भाटा के हिन्दू-सिद्धान्त पर तुलना कीजिए, विष्णु पुराण i, २०३, २०४ दो नाम, जिनके भारतीय पर्याय मुझे नहीं मिले, अरबी में बहर्न और ड़हर लिखे गये हैं।

पृष्ठ १३८—विष्णु पुराण कहता है—ऐसा जान पड़ता है कि ग्रन्थकार का संकेत विष्णु पुराण, II. iv. p. 204 की ओर है; "भिन्न-भिन्न समुद्रों के पानियों का उतार और चढ़ाव पाँच सौ और दस (१५०० नहीं) इञ्च (या अंगुल—चौड़ाई) है।"

पृष्ठ १३८—दीबजात के मूल के सम्बन्ध में ग्रन्थकार के सिद्धान्त का उल्लेख पहले ही दूसरे भाग के पृष्ठ १६९ पर हो चुका है।

पृष्ठ १४४—ब्रह्मगुप्त की सरलता पर ग्रन्थकार ने आक्षेप किये हैं। परन्तु जिन वचनों पर अलबेरूनी का कोप उमड़ा है वे ब्रह्मगुप्त के विचारों को प्रकट नहीं करते, किन्तु उसने केवल उनको दूसरे पुराने ग्रन्थों से लिया था—वास्तव में वे पूर्व शास्त्रानुसारेण लिखे गये थे। तुलना कीजिए, श्रीयुत कर्नकृत बृहत्संहिता का अनुवाद, परिच्छेद ३ श्लोक ५ (पृष्ठ ४४५) की टीका।

पृष्ठ १४९ पंक्ति ११—ग्रहणों के प्रकार—इसके स्थान में ग्रहणों के वर्ण पढ़िए। जिसको ग्रन्थकार यहाँ हिन्दुओं का मत कहता है वह अक्षरशः सूर्यसिद्धान्त, ६, २३ से मिलता है।

पृष्ठ १५०—अरबी सिन्दहिन्द के संस्करण मूल खण्डखाद्यक पर, देखिए दूसरे भाग के पृष्ठ ६५, ६६ की टीका (पृष्ठ ३९२ दूसरा भाग)।

पृष्ठ १५४—वराहमिहिर के बृहज्जातकम् पर देखो पहले भाग के पृष्ठ ६७ पर टीका।

पृष्ठ १५६—दिन, मास और वर्ष के अधिपति मालूम करने के नियम सूर्यसिद्धान्त i, 51, 52; xii 78, 79 में दिये गये हैं।

पृष्ठ १५७—महादेव के सूधव (?) को उत्पल की इसी नाम की पुस्तक के साथ गड़बड़ नहीं कर देना चाहिए। देखो दूसरे भाग के पृष्ठ ७० पर टीका।

पृष्ठ १५७—नागों की तालिका—इस तालिका के नामों का मिलान विष्णु-पुराण, ii 74, 285 के नामों के साथ करना चाहिए। ऐसा जान पड़ता है कि अरबी प्रतिलिपि करनेवाले ने भूल से वासुकि और चक्रहस्त को सुक्रु और चत्रहस्त लिख दिया है।

पृष्ठ १५८—ग्रहों के अधिपतियों के नाम मुझे संस्कृत मूल से ज्ञात नहीं, इसलिए उनमें से कुछ का उच्चारण अनिश्चित है।

पृष्ठ १५९—नक्षत्रों के अधिपतियों के नाम ए० वीवर महाशय ने Ueber den Vedakalender Namens Jyotisham, पृष्ठ ९४ पर दिये हैं। सूर्यसिद्धान्त, viii 9 pp. 327 seq, और विष्णु पुराण- II, vii p. 276 277 पर टीका भी देखो।

अनुराधा के अधिपति मित्र के स्थान में शायद मैत्र, और अरबी में میتر (विष्णु पुराण, ii p, 277) लिखना अच्छा होगा।

इस तालिका का पिछला भाग अरबी पाठ में गड़बड़ से ख़ाली नहीं।

उत्तरभाद्रपदा के अधिपति को पूर्वभाद्रपदा के पास रख दिया गया है, और पूर्व भाद्रपदा का अधिपति दिया ही नहीं, यद्यपि इसका अधिपति अज एकपात है (सूर्यसिद्धान्त, p. 343)। इस अक्षर का एकांश अश्विनी के वर्ग में विद्यमान जान पड़ता है, जहाँ कि اشوکبار लिखा है। कदाचित् इसको अश्विन् अजैकपाद, اشواجیکباد पढ़ना चाहिए। इस दशा में अरबी नक़ल करनेवालों ने दो

भूलें की हैं—एक तो अजैकपाद शब्द का एक अंश छोड़ देना और दूसरे उसे ग़लत वर्ग में रखना।

पृष्ठ १६०—षष्ट्यब्दों पर देखो सूर्यसिद्धान्त 55 and xiv. 17; वराहमिहिर, बृहत्संहिता, viii २०—२३

पृष्ठ १६ —संवत्सर, परिवत्सर, इत्यादि नामों के लिए देखिए बृहत्संहिता, viii.24; सूर्य-सिद्धान्त, xiv 17, नोट; Weber, Ueber den Vedakalender genannt Jyotisham, p. 33-36.

पृष्ठ १६४—अकहरे पञ्चाब्दों के अधिपति बृहत्संहिता, परिच्छेद ८, २३ में दिये गये हैं।

अकहरे वर्षों के नाम संस्कृत पाठ से कुछ भिन्नताएँ दिखलाते हैं (बृहत्संहिता, viii 27-52)।

संख्या ८. भाव के स्थान में سابهاو पाठ के शब्दों की ग़लत बाँट के कारण हो गया है—

श्रीमुखभावसाह्वौ अर्थात् श्रीमुख-भाव-साह्वौ।

संख्या ९. جو = युवन् के स्थान में جي कदाचित् अरबी पाठ की प्रतिलिपि करनेवाले की भूल है।

संख्या १५, بش विष (कर्न के संस्करण में वृष) अशुद्धि नहीं; वरन पाठ-भेद है। कोष्ठों के भीतर का शब्द (वृषभ) काट डालना चाहिए।

संख्या १८, نت, नतु, यह पार्थिव के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। यह नतं के अनुरूप है। देखो परिच्छेद ८. ३५ के कर्न के विविध पाठ।

संख्या ३०. جتر तीसवें वर्ष का नाम दुर्मुख है। कदाचित् جتر पाठ का कारण इन शब्दों की अशुद्ध बाँट है। (viii—३४)—

मन्मथोऽस्य परतश्च दुर्मुखः

यहाँ च दुर—घटकों को दिखलाते हुए कदाचित् جتر हो गया है।

संख्या ३४, شروِر (शर्वं) शर्वरि या सर्वरिन् का अशुद्ध रूप जान पड़ता है।

संख्या ४०. कुछ हस्तलेखों में परभाव का परावसु पाठ है।

संख्या ४८. कर्न इस वर्ष को आनन्द कहता है, परन्तु अलबेरूनी का पाठ, विक्रम, कई संस्कृत हस्तलेखों में भी मिलता है। देखो viii. 45 के विविध पाठ।

संख्या ५६. ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिलिपि करनेवाले ने भूल से दुन्दुभि को ندبى लिख दिया है (viii. 50.)।

संख्या ५७. उद्‌गारि (viii.50) के स्थान में अङ्गार या अंगारि, जो कि विशेष हस्तलेखों का पाठ है।

संख्या ५८ और ६०, (کتاکر के स्थान में) کتاکر और ورکر = रक्ताक्ष और क्षय प और र के बीच ध्वनि-सम्बन्धी परिवर्तन के उदाहरण जान पड़ते हैं।

नामों की यही सूची सूर्यसिद्धान्त i. 55 note दी गई है।

पृष्ठ १६८—ब्राह्मण के जीवन के चार भागों पर इस परिच्छेद की तुलना विष्णु पुराण खण्ड ३ अध्याय ९ के साथ कीजिए।

पृष्ठ १७०—बश्शार का पूरा दोहा यह है—

"पृथ्वी काली है, परन्तु अग्नि उज्ज्वल,
और जब से अग्नि है, तब से अग्नि की पूजा होती है।"

यह उस मनुष्य का कथन है जिसके माता-पिता उपरि-आक्सस नदी पर अवस्थित तुखारिस्तान से युद्ध के बंदियों के रूप में आये थे, परन्तु उसका जन्म बसरा में हुआ था, और वह ख़लीफ़ा अलमहदी के अधीन बग़दाद में रहता था क्योंकि उस पर नास्तिक (ज़र्दुश्त का अनुयायी या मनीची) होने का अपराध लगाया गया था, या, एक दूसरे वर्णन के अनुसार, क्योंकि उसने ख़लीफ़ा के सम्बन्ध में विद्रूपात्मक

कविता बनाई थी, इसलिए आयु बड़ी होने पर भी, इसको पीटने का दण्ड मिला, जिससे वह सन् १६७ हिजरी = ७८४ ईसवी में मर गया। तुलना कीजिए इब्न खल्लिकान, जिल्द नं० ११२।

पृष्ठ १७३ पङ्क्ति ६—अनिष्ट का प्रदर्शन करनेवाली दिशा के रूप में दक्षिण का उल्लेख पहले ही एक बार लङ्का और वड़वामुख के सम्बन्ध में हो चुका है। देखो दूसरा भाग पृष्ठ २६२।

पृष्ठ १७४—आर्यावर्त के इस वर्णन के साथ तुलना कीजिए मनु, अ० २, श्लोक १७; वासिष्ठ; अ० १, श्लोक १२; और बैधायन, i. 1, 9—12 (Sacred Laws of the Aryas, translated by G. Buhler, Oxford, 1879-82)

पृष्ठ १७५—अभक्ष्य तरकारियों पर देखो मनु v. 5, और वासिष्ठ xiv. 33. नालो संस्कृत की नालिका जान पड़ती है।

पृष्ठ १७६—इस परिच्छेद की बातों का विष्णु पुराण, तृतीय खण्ड, परिच्छेद ८ से बहुत निकट का सम्बन्ध है।

पृष्ठ १७७—राजा राम, ब्राह्मण, और चण्डाल की कथा रामायण से ली गई है, देखो विल्किन्स की "हिन्दू माईथालोजी" (कलकत्ता, १८८२) पृष्ठ ३१९।

पृष्ठ १७८—भगवद्गीता के जो दो अवतरण अलबेरूनी ने दिये हैं उनका गीता के वर्तमान रूप में कहीं भी पता नहीं चलता।

पृष्ठ १८०—अश्वमेध या घोड़े की वलि पर देखो कोलब्रुक के "एस्से" ५५, ५६।

पृष्ठ १८१—विष्णु-धर्म्म के प्रमाण से दिये हुए इस उपाख्यान का संस्कृत-मूल मुझे नहीं मिला।

पृष्ठ १८४—क्योंकि पुराणों से इस अवतरण का मूल मुझे मालूम नहीं, इसलिए कुछ शब्दों का उच्चारण अनिश्चित है।

पृष्ठ १८५—सगर, भगीरथ, और गङ्गा की कथा के लिए रामायण का प्रथम काण्ड और विल्किन्स की "हिन्दू माईथालोजी", पृ० ३८५ देखिए।

पृष्ठ १८८—मैं वराहमिहिर-संहिता में इस उद्धरण का मूल नहीं ढूँढ़ सका।

पृष्ठ १८८—यहाँ जो शब्द शौनक के ठहराये गये हैं, वे सम्भवतः विष्णु-धर्म्म से लिये गये हैं।

पृष्ठ १९०—ब्रह्मा के सिर की कथा असुर जलन्धर के साथ शिव के युद्ध का एक भाग है। देखो "Kennedy's Researches," p. 456.

पृष्ठ १९२—इस और इसके आगे के परिच्छेदों में जिन विषयों का वर्णन है उन पर मनु, आपस्तम्ब, गौतम आदि प्रत्येक भारतीय स्मृति में विचार किया गया है। परन्तु यह नहीं जान पड़ता कि अलबेरूनी ने सीधा इन पुस्तकों से लिया वरन् उसने अपने अनुभव से, जो कुछ उसके पण्डितों ने उसे बताया था उससे, और जो कुछ उसने अपने भारतीय प्रवास-काल में स्वयं देखा था उससे लिया है।

पृष्ठ १९६—अलहज्जाज उमैया ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक (६८४-७०४) के नीचे बीस वर्ष तक और उसके पुत्र अलवलीद (७०४-७१४) के अधीन बेबीलोनिया का शासक था।

पृष्ठ १९७—कि ब्राह्मण और चण्डाल उसके लिए एक समान होते हैं—देखो पराशर के पुत्र, व्यास, का कथन; यहाँ पहला भाग पृष्ठ ५४।

पृष्ठ २००—विवाह के लिए निषिद्ध पीढ़ियों के सम्बन्ध में देखिए मनु, अ० ३, श्लोक ५।

पृष्ठ २०१—गर्भाधान, सीमन्तोन्नयनम् इत्यादि के सम्बन्ध में देखिए गौतम का धर्म्म-शास्त्र, viii. 14; एवं आश्वलायन के गृह्यसूत्र i, 13. 14.

पृष्ठ २०२—इस प्रकार, जब काबुल को विजय किया, इत्यादि—ग्रन्थ-कर्त्ता के शब्दों के अर्थों को दिखलाने के लिए कोष्ठों के भीतर बढ़ाया हुआ वाक्य, इस प्रकार होना चाहिए (जिससे सिद्ध होता है कि वह गोभक्षण और अस्वाभाविक मैथुन से घृणा करता था, परन्तु वह वेश्यावृत्ति को हानिकारक और अधर्म्म नहीं समझता था)।

काबुल के इतिहास के जिस ब्योरे की ओर यहाँ सङ्केत है उसका दूसरे स्रोतों, उदाहरणार्थ बलादहूरी, से पता नहीं चलता। दमिश्क के उमैया ख़लीफ़ों के समय में काबुल और सिजिस्तान दोनों मुसलमानों के विरुद्ध बड़ी वीरता से लड़े थे। विशेष वर्षों में वे अभिभूत हो गये थे, और उन्हें कर देना पड़ा था, परन्तु काबुल सदा पालवंश के हिन्दू (ब्राह्मण) राजाओं के शासनाधीन रहा। यह अब्बासिया मामूँ के काल में ख़लीफ़ा के साम्राज्य में मिलाया गया; इसे एक मुसलमान शासक का स्वागत अवश्य करना पड़ा, परन्तु इसने अपनी ओर से एक हिन्दू शाह बहाल रक्खा। ऐसा ही द्विचक्री शासन ख़्वारिज़्म में था।

लगभग सन् ९५०—९७५ ईसवी में काबुल नगर पहले ही मुसलिम था, और नगरोपांत में हिन्दू (और यहूदी) बसते थे। होहनज़ोलनों के लिए प्रशिया में कोनिग्सबर्ग के सदृश, पालवंश के लिए काबुल राज्याभिषेक का नगर था। काबुल में रहना बन्द कर देने के पश्चात् भी उन्हें वहीं अभिषेक करना पड़ता था।

अलबेरूनी ने जिस इसपाहबाद का उल्लेख किया है, मैं समझता हूँ वह पाल राजा की ओर से काबुल नगर का शासक था। हमारा ग्रन्थकार सीसानियन साम्राज्य की उपाधि का प्रयोग एक हिन्दू-साम्राज्य के अधिकारी पर करता है।

जिस व्यवहार की ओर अलबेरूनी का संकेत है वह किस संवत् में हुआ, इसका कुछ पता नहीं। कदाचित् मामूँ के शासन-काल में, जब कि नगर निश्चित रूप से मुसलिम विजेताओं को सौंप दिया गया।

मुसलमानों में यह लोक-मत जान पड़ता है कि हिन्दू व्यभिचार को धर्म समझते हैं, जैसा कि इब्न ख़ुर्दादबिह कहता है (इलियट, "भारतवर्ष का इतिहास", १, १३), और, अलबेरूनी के अनुसार, वे इसे अधर्म्य समझते थे, परन्तु इसके लिए दण्ड देने में शिथिल थे।

पृष्ठ २०२—बूइया राजा अ.जुदुद्दौला, जिसने फ़ारस पर राज्य किया, सन् ३७२ हिजरी(=सन् ९८२ ईसवी) में मर गया। जिस काल में अलबेरूनी ने पुस्तक-प्रणयन का कार्य किया था उसके थोड़ी ही देर पहले, उनका राज्य ग़ज़नी के महमूद के साम्राज्य में मिल चुका था।

पृष्ठ २०३—इयास इब्न मुआविया उमैया ख़लीफ़ा उमर इब्न अब्दुलअज़ीज़ के अधीन बसरा में न्यायाधीश था। उसकी मृत्यु वहीं सन् १२२ हिजरी (=सन् ७४० ईसवी) में हुई।

पृष्ठ २०४—ग्रन्थकार के दिये हुए परीक्षाओं के वर्णन के साथ तुलना कीजिए मनु, अ० ८, श्लोक ११४, और "जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसायटी ऑव बङ्गाल", १८६७, खण्ड ३५, पृष्ठ१४ और उसके अगले में "व्यवहार मयूख" के 'परीक्षाओं पर परिच्छेद', का जी० बूहलर का किया हुआ अनुवाद, Zeitschrift der Deutschen Morgenlandischen Gesellchaft, iv.p. 661 में Stenzler, Die Indischen Gottesurtheile. अन्तिमोल्लिखित प्रकार की परीक्षा का वर्णन इलियट के "भारतवर्ष का इतिहास", १.३२९ (सिंधी अग्नि-परीक्षा) में भी है।

पृष्ठ २०९—मनु-पुस्तक के एक वचन के अनुसार—मिलान करो मनु, अ० ९, श्लो० ११८।

पृष्ठ २११—फीडो का अवतरण पाया गया है ११५ सी—116A :—

Θάπτωμεν δέ σε τίνα τρόπον; ὅπως ἄν, ἔφη, βούλησθε, ἐάνπερ γε λάβητέ με καὶ μὴ ἐκφύγω ὑμᾶς, κ.τ.λ.

ἐγγυήσασθε οὖν με πρὸς Κρίτωνα, ἔφη, τὴν ἐναντίαν ἐγγύην ἢ ἣν οὗτος πρὸς δικαστὰς ἠγγυᾶτο, οὗτος μὲν γὰρ ἦ μὴν παραμενεῖν. ὑμεῖς δὲ ἦ μὴν μὴ παραμενεῖν ἐγγυήσασθε, ἐπειδὰν ἀποθάνω, ἀλλὰ οἰχήσεσθαι ἀπιόντα, ἵνα Κρίτων ῥᾷον φέρῃ, καὶ μὴ ὁρῶν μου τὸ σῶμα ἢ καιόμενον ἢ κατορυττόμενον ἀγανακτῇ ὑπὲρ ἐμοῦ ὡς δεινὰ πάσχοντος μηδὲ λέγῃ ἐν τῇ ταφῇ, ὡς ἢ προτίθεται Σωκράτη ἢ ἐκφέρει ἢ κατορύττει, κ.τ.λ.

ἀλλὰ θαρρεῖν τε χρὴ καὶ φάναι τοὐμὸν σῶμα θάπτειν καὶ θάπτειν οὕτως, ὅπως ἄν σοι φίλον ᾖ καὶ μάλιστα ἡγῇ νόμιμον εἶναι.

पृष्ठ २१४—जालीनूस—इस उद्धरण का ग्रीक मूल मुझे मालूम नहीं।

पृष्ठ २१६—वासुदेव के शब्द भगवद्‌गीता, अ० ८, श्लोक २४ से लिये गये हैं।

पृष्ठ २२३—विष्णु पुराण के लिए देखिए पहले भाग के पृष्ठ ६७ की टीका। पाठ दुवी निश्चित नहीं, क्योंकि अरबी पुस्तक में केवल دوي लिखा है।

दिलीप, दुष्यन्त, और ययाति नामों की विष्णु पुराण की अनुक्रमणिका के द्वारा सही की गई है।

पृष्ठ २२४—वासुदेव कृष्ण के जन्म के पर्व (कृष्ण-जन्माष्टमी) पर तुलना कीजिए, वीबर, "इण्डियन एण्टिक्वेरी", १८७४, पृ०२१; १८७७, पृष्ठ १६१; Zeitschriftder Deutschen Morgenlandischen Gesellschaft, vi. p. 92.

पृष्ठ २२५ पङ्क्ति २५—देवसीनी—इस शब्द के पिछले अर्धभाग की व्युत्पत्ति स्वप्=सोना धातु से दीख पड़ती है। प्राकृत में सोना=सिविणो (संस्कृत स्वप्न)। देखो वररुचि, १. ३

पृष्ठ २२७ पङ्क्ति ४—देवोत्थीनी, देवोत्थान और डिठूवन भी कहलाती है। तुलना कीजिए एच० एच० विल्सनकृत "ग्लासरी ऑव टॅकनीकल टर्म्ज़," पृष्ठ १३३, १३४, १४३, और "मीमॉयर्स ऑन दि हिस्टरी, फ़ोकलोर, एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन ऑव दि रेसज़ ऑव् दि नॉर्थ-वॅस्टर्न प्रॉविन्सिज़ ऑफ़ इण्डिया"। एच० इलियट लिखित, और जे० बीम्ज़ द्वारा सम्पादित, पृष्ठ १.२४५.

पृष्ठ २२७—यहाँ लिखा भीष्म-पञ्चरात्रि विल्सन द्वारा उल्लिखित भीष्म-पञ्चकम्, "एस्सेज़ एण्ड लेक्चर्ज़" २. २०३ से अभिन्न प्रतीत होती है।

पृष्ठ २२७—नाम गौर-त-र, ,,,, पृष्ठ २२६ पर भी आया है, और देसी बोली में गौरी-तृतीया का रूप जान पड़ता है। मिलान कीजिए Wilson, l.l. p. 185.

पृष्ठ २२८—पर्वों के इस पञ्चाङ्ग के साथ तुलना की जाय उसके "एस्सेज़ एण्ड लेक्चर्ज़' दूसरा खण्ड. पृष्ठ, १५१, में एच० एच० विलसन लिखित "हिन्दुओं के धार्मिक पर्व", और Garcin de Tassy, "Notice sur les Fetes populaires des Hindous, Paris, 1834. इस, एवं इससे पहले परिच्छेद पर ज्योतिर्विद्याभरणम्, अध्याय २१, से कदाचित् बहुत प्रकाश पड़ेगा। तुलना कीजिए वीबर, "जर्नल ऑव दि जर्मन ओरियण्टल सोसायटी", खण्ड २२, पृष्ठ ७१९ और खण्ड २४, पृष्ठ ३९९।

अबू सईद गर्देज़ी ने इस परिच्छेद का फ़ारसी-अनुवाद (ऑक्सफ़ोर्ड, औसले २४०, में बोडलियन-लायब्रेरी का हस्तलेख) किया है।

पृष्ठ २२८—अगदूस—अरबी में केवल كدوس। है, जो अज्य-दिवस के सदृश कोई शब्द होगा।

पृष्ठ २२८—मुत्तै مت यह उच्चारण हस्तलेख ने दिया है। इस नाम को अरबी नाम मत्ता (Matthoeus) के साथ गड़बड़ नहीं कर देना चाहिए। मुत्तै कदाचित् सिविस्तान के एक राजा के नाम से अभिन्न है। इस राजा का उल्लेख इलियट ने अपने "भारतवर्ष का इतिहास" पहला खण्ड, पृष्ठ १४५—१५३ में किया है।

हिण्डोली चैत्र—मिलान कीजिए विलसन (पृष्ठ २२३) की डोल-यात्रा या होली के साथ।

बहन्द—देखो Wilson,l.c. और वसन्त यहाँ पृष्ठ २८।

पृष्ठ २३२—गइहत (?) इत्यादि—अरबी पाठ में يطعم के पहले शब्द ما अवश्य बढ़ा देना चाहिए।

अगली पङ्क्ति में कुछ अक्षरों को कीड़ा खा गया है। अपने अनुवाद में मैंने इस रिक्त स्थान को गर्देज़ी के फ़ारसी अनुवाद की सहायता से भर दिया है। फ़ारसी अनुवाद इस प्रकार है—
واين روز ششم بود كه اندل، اين روز زندانيان (सब जगह ऐसा ही लिखा है) طعام دهند كا همت بود ।، एक दूसरे स्थान में गर्देज़ी كجا همت लिखता है।

पृष्ठ २३३—जीवशर्मन् पर तुलना कीजिए दूसरे भाग के पृष्ठ ८० की टीका।

पृष्ठ २३४—क़ीरी (?)—कदाचित् अरबी के प्रतिलिपिकार ने كندي कन्दी (गन्दी रिबात-अलअमीर) को भूल से कीरी लिख दिया है। तुलना कीजिए, बैहकी, मार्ले द्वारा सम्पादित, पृ० २७४. यह वही स्थान है जहाँ राजा मसऊद का वध किया गया था।

पृष्ठ २३४—दीवाली = दीपावलि (दीपों की पंक्ति)—तुलना करो, विलसन कृत "ग्लासरी आव टॅकनीकल टर्म्ज़", पृष्ठ ११४. गर्देज़ो में दीवाली ديوالي है।

पृष्ठ २३५—शाकातम = शाकाष्टमी।

पृष्ठ २३६—जान पड़ता है कि चामाह = चतुर्दशी माघ, मांसर्तगु = मांसाष्टक, पूरार्तकु = पूराष्टक, और माहातन = माघाष्टमी। तुलना कीजिए, Wilson Essays, ii. 183, 184, 181.

पृष्ठ २३६—धोल नामक त्योहार होली, होलिका, या दोल-यात्रा से अभिन्न प्रतीत होता है। तुलना कीजिए, Wilson p. 147,210. धोल की जगह गर्देज़ो के फ़ारसी अनुवाद में هولي होली है।

पृष्ठ २३६—शिवरात्रि—तुलना कीजिए विल्सन, पृष्ठ २१०।

पृष्ठ २३६—पूयत्तानु कदाचित् पूपाष्टमी है। तुलना कीजिए पूपाष्टक।

पृष्ठ २३९—१५ माघ पर, कलियुग के आरम्भ के रूप में, मिलान कीजिए. विल्सन, "एस्सेज़ एण्ड लेक्चर्ज़" दूसरा खंड, पृष्ठ २०८. अलबेरूनी ने युगाद्या, या युग के आरम्भ के सम्बन्ध में विष्णु पुराण, तृतीयांश, परिच्छेद १४, पृष्ठ १९८ (अँगरेज़ी) से जानकारी ली प्रतीत होती है।

पृष्ठ २४० पङ्क्ति १६—चान्द्र दिनों की संख्या, १,६०३,०००, ०१० डाक्टर श्रम (Schram) के अनुसार, बदलकर १,६०३,०००, ०८० कर देनी चाहिए।

पृष्ठ २४१ विषुव—ज्योतिष में इस परिभाषा के उपयोग पर, तुलना कीजिए सूर्य-सिद्धान्त, iii 6, note.

पृष्ठ २४४ पङ्क्ति ६—सौर वर्ष ३६५ दिन १५′ ३०″ २२‴ ३०⁗ है, न कि ३६५ दिन ३०′ २२″ ३०‴ ०⁗। तदनुसार अन्तिम पङ्क्ति

इस प्रकार होनी चाहिए, (अर्थात् १ दिन १५′ ३०″ २२‴ ३०⁗ बराबर हैं $\frac{४०२७}{३२००}$) (Schram)।

पृष्ठ २४४—भागहार ५७२ नहीं, जैसा कि हस्तलेख में है, वरन् ५७६ है, और अपूर्णाङ्क $\frac{७२५}{५७६}$ है (Schram)।

पृष्ठ २४४—औलिअत्त (?) यह नाम इस प्रकार लिखा हुआ है اولت بن بهاري। इसका अधिक शब्दानुवाद यह है "और जो कुछ स के पुत्र अ ने उसी (विषय) पर बताया है, उसका आधार पुलिससिद्धान्त है। यह ग्रन्थकार एवं 'समय' अलबेरूनी के समकालीन जान पड़ते हैं।

पृष्ठ २४५—परिभाषा षडशीतिमुख की व्याख्या सूर्य-सिद्धान्त, xiv. 6, note में की गई है।

पृष्ठ २४६—पर्वन् पर, तुलना कीजिए परिच्छेद ६०।

पृष्ठ २४८—संहिता—ग्रन्थकार यहाँ बृहत्संहिता, अ० ३२, श्लोक २४—२६ का उद्धरण देता है।

पृष्ठ २४८—सूधव पुस्तक पर तुलना कीजिए, दूसरे भाग के पृष्ठ ७० की टीका। क्या यह शब्द = सर्वधर है ?

पृष्ठ २४९—करणों के सिद्धान्त के साथ तुलना कीजिए सूर्यसिद्धान्त, ii. 67-69.

पृष्ठ २५० परिभाषा भुक्ति की व्याख्या के लिए, तुलना कीजिए सूर्यसिद्धान्त, i. 27, note.

पृष्ठ २५३—सामान्य करणों के नाम सूर्य-सिद्धान्त, ii. 69, note में पाये जाते हैं।

दूसरे नाम किसी देसी बोली की छाप वाले भारतीय अङ्क हैं। इनके अनुरूप सिन्धी रूप बखुं(?), बिओ, त्रिओ, चोथो, पंजो, छहो,

सतो, अठो, नाओ, दहो, यारहो, बारहो, तेरहो, चोढो हैं। तुलना कीजिए, ट्रम्प कृत "सिंधी व्याकरण", पृष्ठ १५८,१७४. रूप पञ्चाहो जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, देसी बोलियों में कोई सादृश्य नहीं रखता।

पृष्ठ २५४—संक्रान्ति का अर्थ है सूर्य का किसी राशि में प्रवेश करना। तुलना कीजिए, सूर्य-सिद्धान्त, xiv. 10. note.

पृष्ठ २५५—अलकिन्दी—इस विद्वान् ने जिस ढङ्ग से हिन्दुओं के करणों के सिद्धान्त का रूपान्तरित किया है वह बड़ा शिक्षाप्रद है, क्योंकि उससे पता लगता है कि अलबेरूनी से पूर्व, अरब के बड़े-बड़े विद्वान् और प्रबुद्ध लोग भी किस प्रकार भारतीय विषयों का वर्णन किया करते थे। इन बातों का प्रथम ज्ञान अरबों को सम्भवतः ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मसिद्धान्त (सिन्दहिन्द) और खण्डखाद्यक (अरकन्द) के अनुवाद से हुआ था। अलकिन्दो पर, तुलना कीजिए, G. Flugel, Alkindi, genannt der Philosoph der Araber, Leipzig, 1857 (in vol. i. of the Abhandlungen fur die Kunde des Morgenlandes)।

पृष्ठ २५७—विष्टियों के नाम, जैसा कि वे (महादेव के) सूधव से लिये गये हैं, मुझे संस्कृत मूल से ज्ञात नहीं। फिर भी, वड़वा-मुख, घोर, और कालरात्रि निश्चित जान पड़ते हैं। शब्द بلو और جوال शायद प्लव और ज्वाल हों, परन्तु كرزال ?

अलकिन्दी के अनुसार, विष्टियों के नामों का दूसरा अनुक्रम, जो भूल से अरबी पाठ में छूट गया है, इस प्रकार लिखा जा सकता है—

(१) शूल्पी (शूलपदी ?)
(२) जमदूद (याम्योदधि ?)
(३) घोर।
(४) नस्तरीनिश।

(५) दारूनी (धारिणी ?)

(६) कथाली ।

(७) बहयामनि ।

(८) बिकृत (व्यक्त ?)

पृष्ठ २६१—योगों पर—इस परिच्छेद की बातें सूर्य-सिद्धान्त अध्याय ११ की बातों से बहुत मिलती हैं। उसी पुस्तक के दूसरे खण्ड के श्लोक ६५,६६ से भी तुलना करो। पारिभाषिक शब्द पात का शब्दार्थ गिरावट है, पर इसका अरबी में अनुवाद سقوط अर्थात् गिरता हुआ, (पृष्ठ ۱۳, ११, २४) किया गया है। अरबी पाठ में पृष्ठ २११, ७, पर يدله की जगह ندل पढ़ो और शब्द وبيدرت, के साथ यह अवश्य लगा देना चाहिए कि हस्तलेख में بيدران है।

पृष्ठ २६४—विजयानन्दिन् करणतिलक पर, तुलना कीजिए दूसरे भाग के पृष्ठ ६९ की टीका से।

पृष्ठ २६६—स्यावबल (?) काश्मीर का एक हिन्दू जान पड़ता है जो कि मुसलमान हो गया था, और, एक अरबी पुस्तक के द्वारा, हिन्दुओं की फलित-ज्योतिष के विशेष परिच्छेदों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना चाहता था। उच्चारण स्यावबल निश्चित नहीं। अरबी हस्तलेख में सियावपल है।

पृष्ठ २६६—ब्राह्मण भट्टिल पर, मिलान कीजिए दूसरे भाग के पृष्ठ ७० की टीका। योगों के जिन नामों का उल्लेख वह करता है वे अन्य स्रोतों से मुझे ज्ञात नहीं। नाम गण्डान्त, कालदण्ड, और वैधृत निश्चित हैं, और वहं सम्भवतः वर्ष है।

पृष्ठ २६८—श्रीपाल पर देखो, दूसरे भाग के पृष्ठ ८० की टीका।

पृष्ठ २६९—इस तालिका के नामों के साथ तुलना करो सूर्य-सिद्धान्त ii. 63, note, (also p. 432) अरबी पाठ में تحكم,

विष्कम्भ को अरबी पाठ में भूल से بشكر लिखा जान पड़ता है; संख्या १५, كند,गण्ड को भूल से كند. लिख दिया है ।

(तीसरे योग के नाम) आयुष्मन्त की जगह अरबी में ازكم, (राजकम ?) है; व्यतिपात की जगह इसमें كنات (गतिपात ?) है ।

पृष्ठ २७०—फलित-ज्योतिष सम्बन्धी इस परिच्छेद की बातें मुख्यतः वराहमिहिर कृत लघुजातकम् से ली गई हैं। इस पुस्तक के पहले और दूसरे परिच्छेदों का अनुवाद ए० वीबर ने (Indische Studien 2, 277 seq.), और शेष का एच० जकोवी ने (De Astrologicæ Indicæ hora appellatæ originibus. Accedunt Laghujataki Capita inedita iii—xii Bonn. 1872. किया है। संस्कृत-पाठ में अनुच्छेदों का जो क्रम है उसी पर अलबेरूनी सदा नहीं लगा रहता। विशेष भागों के लिए उसने किसी टीका से लिया जान पड़ता है।

परिभाषा तारों की कलाओं ثواني النجوم का ठीक अर्थ मुझे ज्ञात नहीं ।

पृष्ठ २७२—ग्रहों की तालिका लघुजातकम् के अध्याय २.३.४ से ली गई है ।

परिभाषा नैसर्गिक, विमिश्र, और षडाय के पाठ के लिए मैं कील के अध्यापक एच० जकोवी का आभारी हूँ ।

उनके परिमाण का अनुक्रम शीर्षक वाले स्तम्भ में संख्या २५, ४५, भूल जान पड़ती है। यह ३,८ होनी चाहिए थी ।

पृष्ठ २७८—राशिचक्र की तालिका लघुजातकम्, परिच्छेद १ से ली गई है ।

पृष्ठ २८२—भवनों की यह तालिका लघुजातकम् परिच्छेद १. १५ से ली गई है ।

पृष्ठ २९९—धूमकेतुओं और दूसरी उल्काविषयक बातों पर टीकाएँ वराहमिहिर की बृहत्संहिता से ली गई हैं।

पृष्ठ ३०३—धूमकेतुओं की यह तालिका बृहत्संहिता अध्याय ११. १०—२८ से ली गई है।

अग्नि की सन्तान संस्कृत में हुताशसुता: और अरबी اولاد بلشان कहलाती है। इसका मैं समाधान नहीं कर सकता।

पृष्ठ ३०९—धूमकेतुओं की यह तालिका बृहत्संहिता, परिच्छेद ११. २९—५१ से ली गई है।

पद्मकेतु के स्थान में بنمكت, पाठ प्रतिलिपि करनेवाले की भूल जान पड़ती है। यह بذمكيت होना चाहिए था।

पृष्ठ ३१५—हाथियों की चिकित्सा की पुस्तक—और इस और इसके सदृश दूसरे साहित्य पर, देखिए A Weber, Vorlesungen uber ndische Literatur geschichte, p. 289.

अनुक्रमणिका

ग

फ

भ

ल

ष

स

ह